महाभारत
नवनीत
सुभाष विद्यालंकार

अनुपम रत्नों के सागर महाभारत–महाकाव्य के हृदयस्पर्शी और मार्गदर्शक प्रसंगों का संक्षिप्त सार महाभारत नवनीत में प्रस्तुत किया गया है। पाठक इसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर महाभारत युद्ध की समाप्ति तक के घटनाचक्र की झांकी पा सकेंगे। महाभारत के रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास, भीष्म और पाण्डवों का जन्म कैसे हुआ? महाभारत युद्ध की पृष्ठभूमि क्या थी? एक अक्षौहिणी सेना में कितने सैनिक, हाथी, घोड़े और रथ आदि होते थे? द्रौपदी का चीर हरण और पाण्डवों का वनवास किन परिस्थितियों में हुआ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर 'महाभारत नवनीत' में मिलेंगे। इनके अतिरिक्त यक्ष प्रश्न, ययाति उपदेश, राजा जनक और अष्टावक्र का सम्वाद, विदुर नीति, सनतसुजात पर्व और गीता के उपदेश जैसे सारगर्भित प्रसंगों का सार भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा करते हुए मूल कथा का तार कहीं नहीं टूटने पाया है।

ISBN : 81-7702-130-3 Rs. 750.00

समर्पण

संस्कृत साहित्य, व्याकरण और भाषाशास्त्र के

मनीषी कविवर

पद्मश्री महामहोपाध्याय **पण्डित सत्यव्रत शास्त्री**

को

आदर और अभिवादन सहित

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

नारायणस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण उनके सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करने वाली) भगवती सरस्वती और (उनकी लीलाओं का संकलन करने वाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये।

भूमिका

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन पितृणां च मन्मभिः।।

(यजुर्वेद-3/53)

अर्थात् नर का आशंसन करने वाले गानों से और अपने पूर्वपुरुषों के महत् ज्ञान का चिन्तन करने से हम अपने मन का निर्माण करते हैं।

किसी राष्ट्र के मन को प्रदीप्त करने के ये दो ही उपाय हैं। पूर्वजों के संचित ज्ञान और कर्म का सम्यक् कीर्त्तन, अनुशीलन और आचरण राष्ट्र का पुनीत कर्त्तव्य है।

हिमालय से जैसे हज़ारों झरने और वेगवती जलधाराएँ बहती हुई गंगा की धारा में आ मिलती हैं वैसे ही वैदिक चरणों (महाविद्यालयों) में और लोक में उत्पन्न अनेक आख्यान और कथाएँ क्रमशः बढ़ती हुई भारत-इतिहास के वाङ्मय में आ मिलीं और उसी से महाभारत का पल्लवित, पुष्पित और प्रतिमण्डित वह रूप सम्पन्न हुआ जो सूर्य, चन्द्र और तारों की भांति आज भी लोक में विराजमान है। उपाख्यानों से रचित चौबीस हज़ार श्लोकों की चतुर्विंशतिसाहस्त्री संहिता 'भारत' नाम से प्रसिद्ध थी। वही अनेक उपाख्यानों को आत्मसात् करके एक लाख श्लोकों वाली महाभारत की शतसाहस्त्री संहिता बन गई।

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यास ने इतिहासपुराण की परम्परा या प्राचीन अनुश्रुतियों का संकलन और अध्ययन किया। उनके प्रयत्न से महाभारत संहिता बनी। इसमें पुराणों पर आधारित कथाएँ, धार्मिक कथाएँ, और राजर्षियों के चरित जैसे मुख्य विषयों का ताना-बाना कुरु-पाण्डवों के 'जय' नामक इतिहास के चारों ओर बुन दिया गया है। ययाति और परशुराम आदि के बड़े बड़े आख्यान महाभारत में संगृहीत होते गये। राजर्षियों के चरित ही वे नाराशंसी स्तोम हैं जिनका उल्लेख यजुर्वेद और अथर्ववेद में है। उन्हें ही पुराणों में वंशानुचरित कहा गया है। इसी प्रकार गोत्र-संस्थापक

तपस्वी ऋषियों के विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में महान् चरित थे जो इस संहिता में सम्मिलित किये गये।

कुछ समय तक 'भारत' और 'महाभारत' इन दोनों का अलग अस्तित्व बना रहा। पाणिनि की अष्टाध्यायी में दोनों का उल्लेख हुआ है। कुछ समय बाद शायद शुंग काल में पृथक् भारत ग्रन्थ अपने बृहत्तर रूप महाभारत में अन्तर्लीन हो गया। इसी स्थिति का परिचायक महाभारत का यह श्लोक है–

इदं शतसहस्त्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।। आदि॰1/101
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।।
चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।।
आदि॰1/102

धर्म और नीति का जैसा सर्वाङ्गपूर्ण और गम्भीर विवेचन महाभारत में है वैसा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं है। इसीलिये हिन्दू संस्कृति में महाभारत को स्मृति का पद दिया गया और राष्ट्र की दृष्टि में इसे शाश्वत सम्मान प्राप्त हुआ। महाभारत ऐसा ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियाँ और आंकड़े इकट्ठे करके इतिहास लिखा गया हो। यह तो एक भावात्मक रचना है–

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।

यह काव्य महान् कलाकार की अद्‌भुत सर्जना है।

साहित्यिक दृष्टि से महाभारत में किसी अतीत काल की संस्कृत भाषा का अत्यन्त समृद्ध रूप पाया जाता है। भाषा की ऐसी विलक्षण शक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। उपाख्यान शैली, छोटी-छोटी कहानियों की गल्प शैली, प्रश्नोत्तर शैली, केवल प्रश्नात्मक शैली, नीतिकथन शैली, स्तोत्र शैली इत्यादि अनेक प्रकार की साहित्यिक शैलियों का अक्षय भण्डार महाभारत में है।

नार्वे, आइसलैण्ड आदि देशों की प्राचीन गाथाओं के विद्वान्; सीमण्ड और उनके पुत्र स्नोरी की प्रतिभा का गुणगान मुक्तकण्ठ से करते हैं। सीमण्ड और स्नोरी ने आर्यों की ही एक शाखा 'त्यूतन' के लोगों की प्राचीन गाथाओं का संग्रह लगभग 11वीं-12वीं शती में किया था। सीमण्ड ने 'पोइटिक एड्डा' के नाम से सब उपाख्यानों को एकत्र किया। फिर उनके पौत्र स्नोरी स्टर्लेसान ने उन सब गाथाओं का गद्य रूप में उत्कृष्ट संस्करण तैयार किया। यही बात हम व्यास, लोमहर्षण और शुकदेव के लिये भी कह सकते हैं जिन्होंने सीमण्ड और स्नोरी से हज़ारों वर्ष पहले आर्यों के विराट् गाथा वाङ्मय को अपने काव्य में गूंथकर अमर बना दिया। 'एड्डा' और

'सागाओं' के लिये प्रख्यात लेखक कारलाइल ने लिखा है कि ये इतनी महान् कृतियाँ हैं कि इन्हें कुछ घटा देने पर शेक्सपीयर, दांते और गेटे बन जायेंगे। शेक्सपीयर, दांते और गेटे के स्थान पर भास, कालिदास, माघ, भारवि और हर्ष के नाम रख देने से ये ही उद्गार वेदव्यास के लिये ठीक घटित होते हैं। स्वयं महाभारत में कहा है–

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
इदं सर्वं कविवरैराख्यानमुपजीव्यते।।

आदि०–2/237–241

अर्थात् इस उत्तम इतिहास से कवियों की विशाल प्रतिभाएँ जन्म लेती हैं। इस आख्यान का सहारा लिये बिना पृथ्वी पर किसी कथा का अस्तित्व नहीं है। सारे श्रेष्ठ कवि इस आख्यान का आश्रय लेते हैं।

महाभारत इस देश की राष्ट्रीय ज्ञान संहिता है। कृष्णद्वैपायन व्यास ने विशाला बदरी के एकान्त आश्रम में बैठकर भारतीय ज्ञान सागर का अपनी विशाल बुद्धि से मन्थन किया जिससे महाभारत रूपी चन्द्रमा का जन्म हुआ। महाभारत रत्नों की खान है। जो इसमें है वही और ग्रन्थों में मिलेगा, जो महाभारत में नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है। व्यास का वाङ्मयरूपी अमृत भारत राष्ट्र में व्याप्त है। लोकों को पवित्र करने वाले इस महाकवि ने अपनी क्रान्तदर्शिनी प्रतिभा से शाश्वती बुद्धि का जो महान प्रज्ञा स्कन्ध स्थापित किया, वही महाभारत है।

अनन्त वेद वृक्ष की छाया में बैठकर व्यास ने समग्र लोक जीवन के आर पार देखने वाले अपने प्रातिभ चक्षु से वेद और लोक का अपूर्व समन्वय महाभारत में प्रस्तुत किया है। परम ऋषि द्वैपायन का यह आख्यान विलक्षण शब्द भण्डार से भरा है, जिसमें आदि से अन्त तक सौ पर्व हैं। सूक्ष्म अर्थ और न्याय से युक्त, वेदार्थों से अलंकृत, नाना शास्त्रों से उपबृंहित, विलक्षण रचना कौशल से संस्कार सम्पन्न भारत के इतिहास और पुराण की ब्राह्मी संहिता का नाम महाभारत है जो आदि से लेकर अन्त तक धर्म से युक्त है।

युधिष्ठिर रूपी धर्म महावृक्ष था। अर्जुन उसका तना था, भीमसेन उसकी शाखाएँ और माद्री पुत्र नकुल, सहदेव उसके फूल–फल थे। उसको रस से सींचने वाली जड़ का नाम कृष्ण था। वही ब्रह्म है। सनातन भगवान वासुदेव की महिमा का कीर्त्तन ही कृष्णद्वैपायन व्यास विरचित इस पवित्र उपनिषद् का लक्ष्य है। वही सत्य है। उसे ही ऋत कहते हैं। वही शाश्वत ब्रह्म है। वही सनातन ज्योति है। वही इस अनित्य नश्वर जगत् में परम ध्रुव है। उसी देव से सत् और असत्, जन्म और मृत्यु,

एवं पंच महाभूतों से बने इस संसार की प्रवृत्ति है। वही इसके भीतर व्याप्त अध्यात्म है। उसी के ध्यान का बल पाकर मन को योगयुक्त करने वाले अपनी आत्मा में भगवान् के रूप का इस प्रकार दर्शन करते हैं जैसे दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखते हों।

सम्पूर्ण महाभारत का सार धर्म शब्द में है। महाभारत युद्ध की कथा तो निमित्त मात्र है। इसके आधार पर महाभारत के रचयिता ने युद्ध कथा को धर्म संहिता के रूप में बदल दिया है। धर्म की नित्य महिमा को बताने के लिये ग्रन्थ के अन्त में यह श्लोक है-

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखेत्वनित्ये नित्यो जीवः धातुरस्यत्वनित्यः।।

स्वर्गा०-5/63, उद्योग-40/11-12

अर्थात् काम से, भय से, लोभ से और प्राणों के लिये भी धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। धर्म नित्य है। सुख-दुःख आते जाते रहते हैं। जीव नित्य है और शरीर (धातु) अनित्य है।

वेदों में सृष्टि के अखण्ड विश्वव्यापी नियमों को ऋत कहा गया है। ऋत के अनुसार जीवन का व्यवहार मनुष्य के लिये श्रेष्ठ मार्ग है। ऋत के विपरीत जो कर्म और विचार हैं उन्हें वरुण के पाश या बन्धन समझा जाता है। वैदिक युग में जो शब्द सबसे प्रधान था वह धर्म था। धर्म शब्द भारतीय संस्कृति का सार्थक और समर्थ शब्द बन गया। महाभारतकार ने धर्म की व्याख्या इन शब्दों में की है-

धारणाद्धर्म इत्याहु धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः।।

कर्ण-69/58

अर्थात् प्रजा और समाज को धारण करने वाले नियमों का नाम धर्म है। जिस तत्त्व में धारण करने की शक्ति है उसे ही धर्म कहा जाता है।

जीवन का जितना विस्तार है उतना ही व्यापक धर्म का क्षेत्र है। धर्म, जीवन का सक्रिय तत्त्व है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की निजी-स्थिति और लोक की स्थिति सम्भव बन रही है। धर्म, अर्थ, काम की संज्ञा त्रिवर्ग है। इस त्रिवर्ग में भी धर्म ही मुख्य है तथा राज्य का मूल भी धर्म ही है :-

त्रिवर्गोऽयम् धर्ममूलं नरेन्द्र राज्यं चेदं धर्ममूलं वदन्ति।।

वन०-4/4

ब्रह्मवाद और प्रज्ञावाद के सम्मिलन से जीवन का कर्मपरायण और उत्थानशील मार्ग प्राचीन भारत में प्रशस्त किया गया था। इस मार्ग का उपयोगी और रोचक वर्णन महाभारत में पाया जाता है। गृहस्थ जीवन को हेय समझने वाले श्रमणवाद और कर्म का तिरस्कार करने वाले भाग्यवाद का सक्षम उत्तर इस नये धर्मप्रधान दर्शन का उद्देश्य था। भुक्ति-मुक्ति अर्थात् त्रिवर्ग और मोक्ष इन दोनों के समन्वय का आग्रह इस धर्म की विशेषता है। महाभारत में इसी का प्रतिपादन हुआ है।

महाभारत में अनेक प्राचीन भारतीय दर्शनों का उल्लेख और उनके सिद्धान्तों का विवेचन भी किया गया है। भारतीय दर्शन के इतिहास में पांच बड़े मोड़ स्पष्ट हैं। पहला ऋग्वेदकालीन दर्शन था जिसमें सदसद्वाद, रजोवाद, अम्भोवाद, अहोरात्रवाद, अमृत-मृत्युवाद, व्योमवाद आदि दार्शनिक दृष्टिकोण थे जिनका उल्लेख 'नासदीय सूक्त' में है।

दूसरा युग उन दर्शनों का था जो उपनिषद् युग के अन्त में और बुद्ध से कुछ पहले अस्तित्व में आ गये थे। इनका उल्लेख श्वेताश्वतर उपनिषद् में आया है जैसे कालवाद, नियतिवाद, स्वभाववाद, यदृच्छावाद, भूतवाद, योनिवाद आदि।

दार्शनिक विकास का तीसरा मोड़ सांख्य, मीमांसा, वेदान्त आदि षड्दर्शनों के रूप में देखा जा सकता है।

विकास की चौथी सीढ़ी पंचरात्र, भागवत, पाशुपत, शैव आदि दर्शनों के रूप में अभिव्यक्त हुई। इसके बाद पाँचवां मोड़ वह था जिसमें अभिनव शांकर वेदान्त, भक्ति आदि दर्शनों के पारस्परिक प्रभाव, सम्मिलन और ऊहापोह आदि का विस्तार हुआ। इनमें से दार्शनिक विकास की दूसरी कोटि ही मूल महाभारत की पृष्ठभूमि थी। यद्यपि षड्दर्शन नामक तीसरी कोटि और पाशुपत पंचरात्र आदि दर्शनों की चौथी कोटि का भी समय बीतने के साथ महाभारत में सन्निवेश कर लिया गया। मंक्खलि गोसाल के नियतिवाद या भाग्यवाद का और चार्वाक बृहस्पति के लोकायतवाद आदि दार्शनिक मतों का महाभारत में अनुपम वर्णन है। यह सामग्री विशेषरूप से शान्तिपर्व में है। किन्तु अन्य पर्वों में भी इन दार्शनिक विचारों की झांकी मिलती है। जैसे आरण्यक पर्व में द्रौपदी ने बृहस्पति के जिस नीतिशास्त्र को दुहराया है वह लोकायत दर्शन ही है। प्रत्यक्ष जीवन को सुधारने के बारे में लोकायतों का बहुत आग्रह था। यह मत मूलतः कर्मवादी था किन्तु भाग्यवादी निर्वेद को मानते थे और कर्म के प्रति उदासीन थे। इसी प्रकार उद्योगपर्व की विदुरनीति प्रज्ञावाद नामक प्राचीन दर्शन का ही मूल्यवान संग्रह है।

वैदिक साहित्य और चारण साहित्य के भी कई प्रकरण महाभारत में सुरक्षित बच रहे हैं जैसे आरण्यक पर्व का अग्निवंश अध्याय है। वस्तुतः महाभारत को पांचवा वेद ही कहा गया है। जैसे हिमालय और सागर रत्नों की खान हैं वैसे ही महाभारत भी है। जितना स्थावर और जंगम जगत भारतीय दृष्टि में आ सका था वह सब महाभारत में एकत्र है। इसके रचयिता भगवान् द्वैपायन कृष्ण सत्यवादी और सर्वज्ञ थे। वे वैदिक यज्ञविधि और कर्मयोग के पारंगत थे। धर्म और ज्ञान के प्राचीन दर्शनों में निष्णात थे। सांख्य और योग में उनकी पूरी गति थी। वे अनेक शास्त्रों के पण्डित थे।

महाभारत की विशेषताएँ

महाभारत को कार्ष्ण वेद भी कहा जाता है। इसमें कुरुवंशियों का महान् चरित्र कहा गया है। एक ओर चारों वेद और दूसरी ओर महाभारत इन दोनों को देवर्षियों ने तराजू पर रखकर तोला तो महत्त्व और गुरुत्व में महाभारत ही अधिक निकला। तभी से इसका नाम महाभारत पड़ा। ऋषियों से संस्तुत यह पुराण सुनने योग्य वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ है। यह पवित्र अर्थशास्त्र है। यह परम धर्मशास्त्र है। यह उच्चतम मोक्षशास्त्र है। यह वीरों को जन्म देने वाला है। यह महान कल्याणकारी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सार इस ग्रन्थ में है। भावशुद्धि इस ग्रन्थ की प्राणशक्ति है। तप, अध्ययन, और वेद विधि यदि इनके पीछे भावशुद्धि नहीं है तो ये सब व्यर्थ हैं।

इसमें अनादि अनन्त लोक चक्र का वर्णन है। इसमें ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के चरित्रों का वर्णन है। पराशर के पुत्र, कठोर व्रतों का पालन करने वाले विद्वान् ब्रह्मर्षि व्यास ने अपने तप और ब्रह्मचर्य की शक्ति से सविस्तर भूतसृष्टि, श्रुतियों, विविध शास्त्रों, लोकयात्रा विधान और इतिहास आदि सभी कुछ इसमें कह दिया है। ऋषियों के आश्रमों में जो संस्कृति प्रतिपालित हुई, राजर्षियों के पुण्य चरितों द्वारा जिसका विस्तार हुआ, लोक के रोम-रोम में जो व्याप्त हुई, उस सांस्कृतिक गंगा को यदि हिमालय से सागर पर्यन्त एकत्र देखना हो तो यह दर्शन व्यास के महाभारत में सदा सुलभ है।

वासुदेव कृष्ण का महत् तत्व, पाण्डवों का सत्याचरण और धृतराष्ट्र के पुत्रों का दुर्वृत्त व्यास की चौबीस हजार श्लोकों की भारतसंहिता में कहा गया है। उसी भारत संहिता में अनेक उपाख्यानों के मिल जाने से तथा भूगोल, इतिहास, धर्म और दर्शन की विपुल सामग्री के एकत्र हो जाने से एक लाख श्लोकों वाले महाभारत का जन्म हुआ।

महाभारत के कथा प्रवाह का सबसे रोचक अंश उसके देवतुल्य पात्रों का चरित्र-चित्रण है। ये पात्र महान् होते हुए भी मानवीय हैं। वे मनुष्य कें धरातल पर आचरण करते हैं यद्यपि सत्य की शक्ति और जीवन की अप्रतिहत अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनके कर्म और विचार अतिमानवीय लगते हैं। उनके चरित्र की जो उदात्त भावनाएँ हैं या जो दुर्बलताएँ हैं उन्हें महाभारतकार ने स्पष्ट रूप से कहा है। धृतराष्ट्र या द्रौपदी का चरित्र कितना मानवीय है यह पाठकों को मूल शब्दों से ही पता चलेगा। किन्तु भाषान्तर में भी उनके गूंजते हुए स्वर सुने जा सकते हैं।

महाभारत में धृतराष्ट्र को दिष्टवादी या भाग्यवादी चित्रित किया गया है। उनकी आस्था पुरुषार्थ और कर्म में नहीं थी। फिर दुर्योधन का मोह उनके मन में इतना अधिक भरा था जो उनके नये निश्चय पर पानी फेर देता था। जब दुर्योधन ने पाण्डवों को वारणावत भेजने का कुचक्र धृतराष्ट्र को बताया तो धृतराष्ट्र ने पहले तो कुछ पैंतरा बदला परन्तु फिर स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि 'कुछ ऐसी ही बात मेरे मन में है, पर खुलकर नहीं कह सकता'। ऐसे ही अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का समाचार सुनकर पहले तो धृतराष्ट्र ने प्रसन्नता प्रकट की पर दुर्योधन और कर्ण के आपत्ति करने पर कहा, "जैसा तुम कहते हो सोचता तो मैं भी वही हूँ, किन्तु विदुर के सामने अपनी बात खुलकर नहीं कह सकता।"

पाण्डवों के साथ जुआ खेलने की बात आने पर धृतराष्ट्र के मन में सही विचार आये तो किन्तु भाग्यवाद की अफीम ने उन्हें सुला दिया और यही कहा "ब्रह्मा ने जो रच दिया है सारा जगत् वैसी ही चेष्टा में लगा हुआ है।" जब युधिष्ठिर जुए में हारने लगे तो धृतराष्ट्र प्रसन्न होकर बार-बार पूछते हैं "क्या सचमुच जीत लिया?"

जब दुर्योधन ने पाण्डवों को दुबारा जुआ खिलाने का प्रस्ताव किया तब भी धृतराष्ट्र ने इसे रोकने की बजाय यही कहा,

"हाँ हाँ पाण्डव अभी रास्ते में होंगे उन्हें जल्दी लौटा लाओ।"

विदुर की हितकारी बातें धृतराष्ट्र के मन में विष ही उत्पन्न करती थीं। एक बार तो धृतराष्ट्र ने विदुर को अपने यहाँ से निकाल ही दिया था। "मैं पाण्डवों के लिये अपने पुत्रों को कैसे छोड़ दूँ? मैं तो तुम्हारा इतना आदर करता हूँ, पर तुम मुझसे सदा टेढ़ी बातें ही करते हो। विदुर! तुम्हारा जहाँ मन हो वहाँ चले जाओ।" पर बूढ़े धृतराष्ट्र के मन में भी कहीं सच्चाई छिपी हुई थी। विदुर को खरी-खोटी सुनाने के बाद वे बेहोश हो जाते हैं और कहते हैं- "हाय! मेरा भाई विदुर कहाँ चला गया? उसे जल्दी लाओ।"

लेखक ने चरित्र चित्रण में बहुत सच्चाई से रंग भरा है। अवसर पड़ने पर शकुनि जैसे कपटी के मुंह से भी कहलाया है "पाण्डव सत्यवादी हैं। वे शर्तों का पालन करेंगे और धृतराष्ट्र के बुलाने पर भी तेरह वर्ष का वनवास पूरा किये बिना वे नहीं लौटेंगे।"

कथा-प्रवाह में द्रौपदी का चरित्र बरबस अपनी ओर ध्यान खींचता है। उसकी वेदना शब्दों के बन्धन में नहीं आती। जैसे किसी को सहसा काठ मार गया हो वैसे ही द्रौपदी के वचन कृष्ण के सामने प्रकट होते हैं- "पाण्डवों की पत्नी, कृष्ण की सखी, धृष्टद्युम्न की बहिन सभा में लाई गई, कहो कृष्ण यह क्या हुआ? एक वस्त्र पहिने हुए, स्त्रीधर्म से युक्त, मुझ दुखिया को राजसभा में लाया गया देखकर धृतराष्ट्र के पापी पुत्र निष्ठुरता से हंसे-कहो कृष्ण यह क्या हुआ? क्या यह सत्य है कि मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की पुत्रवधू हूँ? वह वेदना भरे शब्दों में कहती है-"मैं धर्म को भला-बुरा नहीं कहती। ईश्वर और ब्रह्मा का निरादर कैसे कर सकती हूँ? इतना ही समझो कि मैं दुखिया हूँ और कुछ प्रलाप कर रही हूँ।"

वेद व्यास ने यह संहिता अपने पुत्र शुकदेव को पढ़ाई थी। उनसे दूसरे शिष्यों को यह प्राप्त हुई और लोक में फैली। नारद, असित और देवल ने नारायणीय पंचरात्र धर्म से इसका संस्कार किया। एक ही तत्त्व, नर और नारायण के नामों से विख्यात है। 'नारायणो नरश्चैव तत्त्वमेकं द्विधाकृतम्।'

एक ही महान् सत्य के ये दो रूप हैं। वह नारायणी महिमा किस प्रकार नर रूप में चरितार्थ होती है इसका सांगोपांग निरूपण महाभारत में है।

वेदव्यास की दृष्टि में मनुष्य ही ज्ञान और विज्ञान का मध्य बिन्दु है -

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि,
न हि मनुष्यात्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।।

शान्ति०-180/12

अर्थात् मैं तुम्हें यह रहस्य बताता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।

ऐतिहासिक और सृष्टि सम्बन्धी अनुश्रुतियों पर विचार करने वाले और उनकी रक्षा करने वाले विद्वानों का उल्लेख अथर्ववेद में आता है। वहाँ इस प्रकार के विद्वान् और मेधावी ऋषियों को पुराणवित् कहा गया है-

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्घातयः इद्विदुः।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्।।

अथर्व०-11/8/7

यह भूमि जैसी पहले थी। इसके जिस स्वरूप का ज्ञान मेधावी ऋषियों को था। इसे जो शब्दों में जानता है, उसे मैं पुराणवित् या पुराण अर्थात् प्राचीन काल का वेत्ता कहता हूँ। महाभारत के आदिपर्व में इतिहास और पुराण दोनों नाम हैं–

द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।। आदि०-1/17
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।

आदिपर्व की पहली पंक्ति में ही लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूत को पौराणिक कहा गया है। उन्होंने कुलपति शौनक के बारह वर्षीय यज्ञ में महाभारत का पारायण सुनाया।

विश्व के सब पदार्थों का अन्तर्भाव नाम और रूप में है। रूप बराबर बदल रहे हैं और देखते-देखते ओझल होते जा रहे हैं। केवल नाम शेष रह जाता है। अतीत काल के उस नाम को जानने वाले पुराणवित् हैं। आज की भाषा में कहें तो वे ही ऐतिहासिक हैं जो उन बीते हुए युगों के सजीव चित्र शब्दों में प्रस्तुत करते हैं।

पुराणवेत्ता अर्थात् प्राचीन काल के वृत्तान्तों का पारायण करने वाले विद्वानों की कल्पना उत्तर वैदिक काल में हो चुकी थी। अथर्ववेद के व्रात्य सूक्त में विद्याओं का परिगणन करते हुए कहा गया है :

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्।।

अथर्व०-15/6/11

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च
नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।।

अथर्व०-15/6/12

इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी ये विद्याएँ व्रात्यसंज्ञक ब्रह्म के साथ फैलती हैं। वह जो इस प्रकार विचार करता है, इस प्रकार की विद्याओं का प्रिय धाम बन जाता है।

Legend या गाथा और नाराशंसी ये दोनों प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के अंग थे। यजुर्वेद में कहा है –

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन पितृणां च मन्मभिः।।

यजुर्वेद-3/53

अर्थात् नर का आशंसन करने वाले गानों से और अपने पूर्व पुरुषों के महत ज्ञान का चिन्तन करने से हम अपने भीतर मन का निर्माण करते हैं।

महाभारत के पाठ विकास की परम्परा में कौन सा अंश मौलिक है और कौन सा मूल अंश का विस्तार है उसे जानने का सुगम उपाय यही है कि जहाँ किसी प्रकरण या आख्यान के अन्त में फलश्रुति का उल्लेख हुआ है वह अंश विस्तार का फल माना जाता है। दूसरे जहाँ किसी कथांश को एक बार संक्षेप में कहकर फिर उसी को विस्तार से सुनने या कहने की प्रार्थना की गई है वह अंश भी प्रायः पाठ विस्तार का ही परिणाम है। प्रायः जनमेजय कहते हैं भगवन् मैं इसे अब विस्तार से सुनना चाहता हूँ -

विस्तरेणैतदिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज। सभा०-46/3

और उत्तर में वैशम्पायन कहते हैं-

शृणु मे विस्तरेणेमां कथां भरतसत्तम।
भूय एव महाराज यदि ते श्रवणे मतिः।।

सभा०-46/5

महाभारत की पाठ परम्परा में इसके कई संस्करण सम्भावित ज्ञात होते हैं। इनमें से एक शुंग काल में और दूसरा गुप्त काल में सम्पन्न हुआ जान पड़ता है। इनमें भी पिछले संस्करण में पंचरात्र भागवतों ने बहुत सी नई सामग्री अपने नये दृष्टिकोण के अनुसार यथास्थान मिला दी थी। जीवन और धर्म के विषय में भागवतों का जो समन्वयात्मक दृष्टिकोण था उससे महाभारत के कथा प्रसंगों में नई शक्ति और सरसता भर गई है। भागवतों का विशेष आग्रह धर्म के उस स्वरूप पर था जिससे गृहस्थाश्रम की महिमा प्रख्यात होती है, क्योंकि गृहास्थाश्रम समाज का आधार है।

वर्तमान महाभारत के 18 पर्वों का विभाग कितना प्राचीन है यह सुनिश्चित नहीं। लेकिन इन पर्वों से पहिले महाभारत का दूसरी तरह का विभाग था जिसमें 100 पर्व गिने जाते थे। पर्वसंग्रह पर्व (आदि-2/33/233) को भारत का संक्षिप्त रूप कहा गया है। वस्तुतः यह महाभारत की अत्यन्त प्राचीन विषय सूची समझी जा सकती है। जब उग्रश्रवा सूत के मुख से सम्पन्न हुए महाभारत का बृहत् रूप अस्तित्व में आ चुका था। आदि पर्व की इस सूची से स्पष्ट होता है कि ये एक सौ पर्व महात्मा

व्यास द्वारा कहे गये थे। किन्तु सूतपुत्र लोमहर्षण ने नैमिषारण्य में 18 पर्वों का ही विभाग कहा।

इस सूची से स्पष्ट होता है कि 18 पर्वों का वर्तमान विभाग मूल महाभारत में विद्यमान नहीं था। उसमें पर्वों की संख्या कथानुसार थी। छोटे-छोटे पर्वों का यह बंटवारा प्रवाह की दृष्टि से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। किन्तु इस समस्या में रोचक तथ्य यह है कि वर्तमान 18 पर्वों के नाम भी 100 पर्वों की सूची में ज्यों के त्यों सम्मिलित हैं।

लगता है जब महाभारत का नवीन संस्करण तैयार हुआ तब 100 पर्वों वाले विभाग के स्थान पर 18 पर्वों वाला विभाग अधिक प्रसिद्ध हो गया। सम्भवतः महाभारत की पाठ परम्परा में ऐसा गुप्तकाल में (चौथी शती) हुआ होगा। गुप्तकाल में कई महत्त्वपूर्ण प्रकरण महाभारत में एवं अन्य पुराणों में भी यथास्थान सन्निविष्ट कर दिये गये।

पर्वसंग्रह पर्व के सौ अध्यायों का परिगणन अवश्य ही शुंग काल में (184 ईस्वी पूर्व) हुआ, क्योंकि उसमें हरिवंश पुराण और अन्तिम भाग भविष्य पर्व इन दोनों को महाभारत का खिल भाग मानकर सौ पर्वों की गिनती पूरी की गई है। हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व में सेनानी पुष्यमित्र शुंग का स्पष्ट उल्लेख आया है :-

औद्भिज्जो भविता कश्चित्सेनानीः काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति।।

भविष्यपर्व-2/40

औद्भिज्ज या शुंग वंश में कश्यप गोत्र-का ब्राह्मण सेनानी पैदा होगा जो कलियुग में फिर अश्वमेघ करेगा।

बाणभट्ट ने महाभारत की कथा के विषय में लिखा है कि वह उस समय तीनों लोकों में व्याप्त हो रही थी :-

किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्।।

हर्षचरित-1/9

प्राचीन काल में महाभारत का आरम्भ आदि पर्व के तीन स्थलों से माना जाता था-किसी के मत में मन्वादि अर्थात् मनु प्रतिपादित हेमाण्ड सृष्टि वर्णन वाले श्लोकों से (आदि 1/29), किसी के मत में आस्तीक पर्व से (आदि 13) और किसी के मत में वसु उपरिचर (आदि 63) की कथा से-

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते।।

आदि०-1/52

वैदिक और संस्कृत साहित्य के मनीषी डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में "शतसहस्र शाखाओं में फैले हुए इस पुराण वटवृक्ष के नीचे अखण्ड समाधि में विराजमान महर्षि वेद व्यास ने धर्मसंज्ञक किसी अपरिमेय एवं अचिन्त्य तत्त्व का स्वयं साक्षात्कार किया तथा अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा द्वारा उसे सब जनों के हितार्थ महाभारत में निबद्ध कर दिया। उनके भगीरथ तप से जो धर्माम्बुवती ज्ञानगंगा प्रवाहित हुई उसकी सरस धारा में राष्ट्र ने सहस्रों वर्षों तक अवगाहन किया है।

जब तक भूमण्डल पर चन्द्र और सूर्य का प्रकाश है, जब तक अग्निषोमीय पुरुष का मानवीय व्यवहार जगत् में चालू है, जब तक गंगा-यमुना के तटों पर आकाशचारी हंस प्रति निर्मल शरद् में उतरते हैं, तब तक भगवान् की अनन्त महिमा को प्रख्यात करने वाला यह 'जय' नामक इतिहास लोक में अमर रहेगा।"

अनुपम रत्नों के सागर महाभारत-महाकाव्य के हृदयस्पर्शी और मार्गदर्शक प्रसंगों का संक्षिप्त सार महाभारत नवनीत में प्रस्तुत किया गया है। पाठक इसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर महाभारत युद्ध की समाप्ति तक के घटनाचक्र की झांकी पा सकेंगे। महाभारत के रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास, भीष्म और पाण्डवों का जन्म कैसे हुआ? महाभारत युद्ध की पृष्ठभूमि क्या थी? एक अक्षौहिणी सेना में कितने सैनिक, हाथी, घोड़े और रथ आदि होते थे? द्रौपदी का चीर हरण और पाण्डवों का वनवास किन परिस्थितियों में हुआ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर 'महाभारत नवनीत' में मिलेंगे। इनके अतिरिक्त यक्ष प्रश्न, ययाति उपदेश, राजा जनक और अष्टावक्र का सम्वाद, विदुर नीति, सनतसुजात पर्व और गीता के उपदेश जैसे सारगर्भित प्रसंगों का सार भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा करते हुए मूल कथा का तार कहीं नहीं टूटने पाया है।

प्रतिभा प्रकाशन के डॉ० राधेश्याम शुक्ल के सहयोग से महाभारत नवीनत का प्रकाशन सम्भव हो सका। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

'रामायण सूक्ति सुधा' और 'कालिदास-सूक्ति सुधा' की भाँति 'महाभारत सूक्ति सुधा' और 'महाभारत कथा' भी जल्दी ही प्रस्तुत करने का विचार है।

मकर संक्रान्ति — सुभाष विद्यालंकार
विक्रम् सम्वत् 2062

विषय-सूची

1
मंगलाचरण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

नारायण, नरों में श्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती और महर्षि व्यास जी को नमस्कार कर 'जय' का प्रारम्भ करना चाहिए।

ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय। ओ३म् नमः पितामहाय।
ओ३म् नमः प्रजापतिभ्यः। ओ३म् नमः कृष्ण द्वैपायनाय।
ओ३म् नमः सर्वविघ्न विनायकेभ्यः।।

विष्णु

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।।

आदि०-1/22

असच्च सदसच्चैव यद् विश्वं सदसत्परम्।
परावराणां स्त्रष्टारं पुराणं परमव्ययम्।। आदि०-1/23

जो सबके आदि कारण और नियन्त्रण करने वाले हैं। यज्ञों में जिनका सबसे पहले आह्वान किया जाता है तथा जिनकी सर्वप्रथम स्तुति की जाती है। जो ऋत-स्वरूप हैं, एकाक्षर अर्थात् प्रणवरूप ब्रह्म हैं। जो व्यक्त अर्थात् प्रकट भी हैं और अव्यक्त अर्थात् गुप्त भी हैं इसीलिये सत् और असत् इन दोनों ही रूपों में सदा से विद्यमान हैं फिर भी जिनका स्वरूप सत् और असत् से भी विलक्षण हैं। सम्पूर्ण विश्व जिनमें समाया हुआ है। जो दृश्य और अदृश्य सभी प्रकार की सृष्टियों को बनाते हैं, जो पुराण पुरुष परमेश्वर हैं। जिनके स्वरूप में कभी कोई वृद्धि या कमी नहीं होती। जिनमें किसी तरह का परिवर्तन या विकार नहीं आता।

ब्रह्मा

अद्‌भुतं चाप्यचिन्त्यम् च सर्वत्र समतां गतम्।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत्तत् सदसदात्मकम्।।

आदि०-1/31

वे बहुत विलक्षण हैं। मन उनके स्वरूप की कल्पना नहीं कर सकता। वे समस्त सृष्टि में समान रूप से व्याप्त हैं। संसार में जो कुछ सत् या असत् रूप से दिखाई देता है उस सबका सूक्ष्म और दिखाई न देने वाला कारण वही हैं।

यत्तद् यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः।
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।।

आदि०-1/260

ध्यानयोग की शक्ति से सम्पन्न जीवन्मुक्त श्रेष्ठ मुनि, दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति अपने हृदय में विराजमान उन्हीं परमात्मा को देखते हैं।

इन्द्र स्तोत्र

त्वमेव परमं त्राणमस्माकममरोत्तम।
ईशो ह्यसि पयः स्त्रष्टुं त्वमनल्पं पुरन्दर।।

आदि०-25/9

हे पुरन्दर! हे सर्वश्रेष्ठ देव!! तुम ही हमारे सबसे बड़े रक्षक हो। तुम ही अत्यधिक जल बनाते हो।

त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वमग्निर्विद्युतोऽम्बरे।
त्वमभ्रगणविक्षेप्ता त्वामेवाहुर्महाघनम्।।

आदि०-25/10

तुम ही मेघ, वायु और आकाश में विद्युत अग्नि हो। तुम बादलों को उड़ाकर तितर-बितर कर देने वाले प्रभंजन हो और तुम्हीं विशाल घन स्वरूप हो।

त्वं वज्रमतुलं घोरं घोषवांस्त्वं बलाहकः।
स्त्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्ता चापराजितः।।

आदि०-25/11

तुम अतुलनीय वज्र और भयंकर गर्जन करने वाले बलाहक हो! तुम्हीं लोकों के स्त्रष्टा और अप्रतिहत संहर्त्ता हो।

त्वं ज्योतिः सर्वभूतानां त्वमादित्यो विभावसुः।
त्वं महद्भूतमाश्चर्यं त्वं राजा त्वं सुरोत्तमः।।

आदि०-25/12

तुम सब भूतों में ज्योति हो। तुम्हीं आदित्य और अग्नि हो। तुम भुवन के मध्य में भरे हुए अद्भुत आश्चर्यजनक यक्ष हो। तुम देवताओं में उत्तम हो। तुम राजा हो।

त्वं विष्णुस्त्वं सहस्राक्षस्त्वं देवस्त्वं परायणम्।
त्वं सर्वममृतं देव त्वं सोमः परमार्चितः।।

आदि०-25/13

तुम्हीं विष्णु, सहस्रलोचन इन्द्र, द्युतिमान देवता और सबके परम आश्रय हो। तुम्हीं सब कुछ हो। तुम ही अमृत हो। तुम ही परम पूजित सोम हो।

त्वं मुहूर्तस्तिथिस्त्वं च त्वं लवस्त्वं पुनः क्षणः।
शुक्लस्त्वं बहुलस्त्वं च कला काष्ठात्रुटिस्तथा।
संवत्सरर्तवो मासा रजन्यश्च दिनानि च।।

आदि०-25/14

मुहुर्त्त, तिथि, लव, क्षण इत्यादि काल के रूप में तुम्हीं हो। शुक्ल और कृष्ण पक्ष, कला, काष्ठा, त्रुटि, संवत्सर, ऋतु, मास, रात और दिन तुम्हारे ही रूप हैं।

त्वमुत्तमा सगिरिवना वसुन्धरा सभास्करं वितिमिरमम्बरं तथा।
महोदधिः सतिमितिमिङ्गिलस्तथा महोर्मिमान् बहुमकरो झषाकुलः।।

आदि०-25/15

शैलकाननवती पृथिवी और सूर्य के प्रकाश से आलोकित आकाश तुम्हीं हो। तिमि और तिमिंगिलों से भरपूर तथा अनेक मगरों और मत्स्यों से भरे हुए, उत्ताल तरंगों से आन्दोलित महासागर तुम्हीं हो।

महायशस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे मनीषिभिर्मुदितमनामहर्षिभिः।
अभिष्टुतः पिबसि सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये।।

आदि०-25/16

तुम्हारा ही नाम महत् यश है। इसीलिये मनीषी और प्रसन्नचित्त महर्षि सदा तुम्हारा वन्दन करते हैं। यज्ञों में तुम सोम पान करते हो। वषट्कार का उच्चारण कर समर्पित हवियाँ तुम्हें ही प्राप्त होती हैं।

त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वतुलबलौघ गीयसे च।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यभिगमयन्ति सर्वयत्नैः।।

आदि०–25/17

ब्राह्मण तुम्हारे लिये ही सदा यज्ञ करते हैं। वेदांगों में भी तुम्हारी अतुल बलशाली महिमा का गान किया जाता है। यज्ञपरायण ऋत्विक् तुम्हारे ही निमित्त सब वेदों से यज्ञाङ्गों का संकलन करते हैं।

2

सृष्टि उत्पत्ति

निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्वतस्तमसावृते।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम्।।

आदि०-1/29

जब सब जगह अंधेरा छाया हुआ था। प्रकाश का कहीं नाम भी नहीं था और किसी भी वस्तु का कुछ पता ही नहीं चलता था तब एक विशाल अण्डा प्रकट हुआ जो सम्पूर्ण प्राणियों का बीज था। यह बीज कभी नष्ट नहीं होता है।

युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते।
यस्मिन् संश्रयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम्।।

आदि०-1/30

सृष्टि के प्रारम्भ में इस महान् दिव्य अण्डे से सम्पूर्ण चर और अचर जगत् बना। इस समस्त जगत् में सत्य स्वरूप, ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त हैं।[1]

यस्मात् पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः।
ब्रह्मासुरगुरुः स्थाणुर्मनुः कः परमेष्ठ्यथ।।

आदि०-1/32

प्राचेतसस्तथा दक्षो दक्षपुत्राश्च सप्त वै।
ततः प्रजानां पतयः प्रभवन्नेकविंशतिः।।

आदि०-1/33

इस अण्डे से उस एकमात्र प्रभु ने देवताओं के गुरु और पितामह ब्रह्मा, रुद्र, मनु, परमेष्ठी, प्रचेताओं के पुत्र दक्ष, तथा दक्ष के पुत्र और इक्कीस प्रजापति उत्पन्न किये। दक्ष के ये सात पुत्र हैं–क्रोध, तम, दम, विक्रीत, अंगिरा, कर्दम और अश्व। इक्कीस प्रजापति हैं–मरीचि आदि सात ऋषि और चौदह मनु।[2]

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा यं सर्वऋषयो विदुः।
विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि।।

आदि०-1/33

उस अप्रमेय आत्मा विष्णु रूप पुरुष को सभी देवर्षि जानते हैं। उन्हीं से या उन्हीं के विभूतिरूप विश्वेदेव, आदित्य, वसु और दो अश्विनी कुमार भी प्रकट हुए।

यक्षाः साध्याः पिशाचाश्च गुह्यकाः पितरस्तथा।
ततः प्रसूता विद्वांसः शिष्टा ब्रह्मर्षिसत्तमाः।।

आदि०-1/35

इनके बाद यक्ष, साध्य, पिशाच, गुह्यक, पितर, तत्त्ववेत्ता विद्वान् और सदाचार परायण साधुशिरोमणि ब्रह्मर्षिगण प्रकट हुए।

राजर्षयः बहवः सर्वे समुदिता गुणैः।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा।।

आदि०-1/36

इसी अण्डे से सर्वगुण सम्पन्न अनेक राजर्षि उत्पन्न हुए। इसी से जल, द्युलोक, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और दिशाएँ भी प्रकट हुईं।

संवत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात्।
यच्चान्यदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिकम्।।

आदि०-1/37

वर्ष, ऋतुएँ, मास, पक्ष, दिन, रात भी इसी अण्डे से क्रमानुसार प्रकट हुए। इन सबके अतिरिक्त इस संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह सब इसी अण्डे से उत्पन्न हुआ।

यदिदं दृश्यते किंचिद् भूतं स्थावरजङ्गमम्।
पुनः संक्षिप्यते सर्वं जगत् प्राप्ते युगक्षये।।

आदि०-1/38

यह जो चल और अचल पदार्थ और प्राणिजगत् दिखाई दे रहा है वह सब प्रलयकाल में अपने कारण ब्रह्म में लीन हो जाता है।

यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु।।

आदि०-1/39

जैसे कोई ऋतु प्रारम्भ होने पर उस ऋतु के फल-फूल आदि दिखाई देने लगते हैं और ऋतु बीत जाने पर समाप्त हो जाते हैं उसी प्रकार कल्प या युग प्रारम्भ होने पर सृष्टि के सभी पदार्थ और जीव-जन्तु दिखाई देने लगते हैं और प्रलय होने पर उनका लय हो जाता है।

एवमेतदनाद्यन्तं भूतसंहारकारकम्।
अनादिनिधनं लोके चक्रं सम्परिवर्तते।।

आदि०-1/40

इस प्रकार यह अनादि और अनन्त काल-चक्र लोक में प्रवाहरूप से नित्य घूमता रहता है। इसकी कभी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता।

संदर्भ

1. तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् (तैत्तिरीयउपनिषद्)।
2. ऋषय: सप्त पूर्वे ये मनवश्च चतुर्दश।
   एते प्रजानां पतय: एभि: कल्प:समाप्यते।। (ब्रह्माण्डपुराण)
   महर्षय: सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
   मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमा: प्रजा:।। गीता 10/6

3
अश्विनी कुमार

आचार्य आयोद धौम्य के तीन शिष्य थे–आरुणि, उपमन्यु और वेद। धौम्य ने इन तीनों की कड़ी परीक्षा ली और ये तीनों ही खरे उतरे। आचार्य ने आरुणि को खेत की मेंड़ बांधने के लिये भेजा ताकि पानी बहने न पाये। उसने बार-बार मेंड़ बांधी किन्तु पानी के वेग से मेंड़ टूट जाती थी। यह देख आरुणि ने स्वयं लेट कर बहते हुए पानी को रोका। यही आरुणि, पंचाल देश के विद्वान् दार्शनिक उद्दालक आरुणि हुए। उपनिषदों में भी इनका उल्लेख आता है।

उपमन्यु को गाय चराने का काम सौंपा गया। उसे कुछ भी भोजन नहीं मिलता था इसलिये वह गौओं के दूध से गुज़ारा करने लगा। किन्तु धौम्य ने उसे दूध पीने से भी रोक दिया। अब वह बछड़ों के मुंह पर लगे दूध के झाग से पेट भरने लगा। गुरु ने इसे भी मना कर दिया। निराश उपमन्यु आक के पत्ते खाने लगा। इन्हें खाने से वह अन्धा हो गया। वह गौएं चराते हुए कुएँ में गिर पड़ा। तब धौम्य ने उसे अश्विनी कुमारों की स्तुति करने को कहा। उसने वैदिक ऋचाओं से देवों के वैद्य अश्विनी कुमारों की स्तुति की। उन्होंने प्रसन्न होकर उपमन्यु की आँखें ठीक कर दीं।

हिरण्मयौ शकुनी साम्परायौ नासत्यदस्रौ सुनसौ वै जयन्तौ।
शुक्लं वयन्तौ तरसा सुवेमावधिव्ययन्तावसितं विवस्वतः।।

आदि०-3/58

आप दोनों भाई सुनहरे पंखों वाले दो पक्षियों की भांति बहुत सुन्दर हैं। आपकी नाक बहु सुन्दर है। नासत्य और दस्र आपके नाम हैं। आप विजय दिलाने वाले हैं। आप पारलौकिक उन्नति के साधन जानते हैं। आप सूर्य के पुत्र हैं। इसीलिये दिन तथा रात रूपी सफेद और काले तन्तुओं से संवत्सर (वर्ष) रूप वस्त्र बुनते रहते हैं।

ग्रस्तां सुपर्णस्य बलेन वर्तिकाममुञ्चतामश्विनौ सौभगाय।
तावत् सुवृत्तावनमन्त मायया वसत्तमा गा अरुणा उदावहन्।।

आदि०-3/59

परमात्मा की कालरूपी शक्ति ने इस जीव पक्षी को अपना ग्रास बनाया हुआ है। आप ही कैवल्यरूप महान् सौभाग्य की प्राप्ति के लिये ज्ञान प्रदान करके जीव को जीवन-मरण के बन्धन से छुड़ाते हैं। माया के सम्पर्क से अज्ञानी बना हुआ जीव जब तक राग-द्वेष आदि विषयों के आकर्षण में फंसकर इन्द्रियों के वश में रहता है तब तक वह इस शरीर में ही फंसा रहता है।

षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्च धेनव एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति।
नानागोष्ठा विहिता एकदोहनास्तावश्विनौ दुहतो धर्ममुक्थ्यम्।।

आदि०-3/60

दिन और रात के रूप में तीन सौ साठ दुधारू गायें सम्वत्सर रूपी एक बछड़े को जन्म देती हैं। जिज्ञासु पुरुष उस बछड़े के द्वारा उन गौओं से विभिन्न फल देने वाली शास्त्र विहित क्रियाएँ दुहते रहते हैं। अश्विनी कुमार इन गौओं को दुहते हैं।

एकां नाभिं सप्तशता अराः श्रिताः प्रधिष्वन्या विंशतिरर्पिता अराः।
अनेमिचक्रं परिवर्ततेऽजरं मायाश्विनौ समनक्ति चर्षणी।।

आदि०-3/61

अश्विनी कुमारो! इस कालचक्र की नाभि एकमात्र संवत्सर ही है जिस पर दिन और रात रूपी सात सौ बीस अरे टिके हुए हैं। ये अरे बारह मास रूपी प्रधियों (अरों को थामने वाले पुट्ठों) से जुड़े हुए हैं। कभी नष्ट या जीर्ण न होने वाला यह कालचक्र नेमि के बिना ही घूम रहा है। मायारूपी यह कालचक्र सभी प्राणियों का नाश करता रहता है।

एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं षण्णाभिमेकाक्षमृतस्य धारणम्।
यस्मिन् देवा अधि विश्वे विषक्तास्तावश्विनौ मुञ्चन्तं मा विषीदतम्।।

आदि०-3/62

इस कालचक्र के बारह अरे अर्थात् मेष आदि बारह राशियाँ हैं और छह ऋतुएँ छह नाभियाँ हैं। संवत्सर रूपी इसका एक धुरा है। यह कालचक्र ऋत (शाश्वत सत्य) को धारण किये रहता है। इसी में समस्त देवता निहित हैं। हे अश्विनी कुमारो! जन्म-मरण के बन्धन से ग्रस्त मुझ दुःखिया को आप इस कालचक्र के बन्धन से मुक्त करायें।

युवां वर्णान् विकुरुथो विश्वरूपांस्तेऽधिक्षियन्ते भुवनानि विश्वा।
ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति।।

आदि०-3/65

हे अश्विनी कुमारो! आप दोनों अनेक रंग-रूपों वाली वस्तुओं से ओषधियाँ बनाते हैं। ये ओषधियाँ सम्पूर्ण संसार का पालन करती हैं। शक्तिसम्पन्न ये ओषधियाँ आपके साथ रहती हैं और देवता तथा मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग और पृथिवी लोकों में रहकर इन ओषधियों का सेवन करते हैं।

मुखेन गर्भं लभेतां युवानौ गतासुरेतत् प्रपदेन सूते।
सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भस्तावश्विनौ मुञ्चथो जीवसे गाः।।

आदि०-3/67

युवक माता-पिता सन्तान उत्पन्न करने के लिये सबसे पहले मुख से गर्भरूप अन्न खाते हैं। यह अन्न पुरुष में वीर्य और स्त्री शरीर में रज बनकर शरीर बन जाता है। इस जड़ शरीर में प्रविष्ट होकर जन्म लेने वाला जीव उत्पन्न होते ही माता का स्तन पीने लगता है। संसार के बन्धन में फंसे इस जीव को हे अश्विनी कुमारो! आप मुक्त करायें।

4
वेदव्यास

इन्द्रप्रीत्या चेदिपतिश्चकारेन्द्रमहं वसुः।
पुत्राश्चास्य महावीर्याः पञ्चासन्नमितौजसः।।

आदि०-63/29

चेदिराज वसु, इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये इन्द्रोत्सव मनाया करते थे। उनके अत्यन्त बलशाली और पराक्रमी पाँच पुत्र थे।

वसोः पत्नी तु गिरिका कामकालं न्यवेदयत्।। आदि०-63/39
ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः।
तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति।। आदि०-63/40

एक दिन वसु की पत्नी ने ऋतुकाल के बाद स्नान कर शुद्ध होकर राजा से पुत्र उत्पन्न होने के अनुकूल समय में समागम के लिये कहा। किन्तु उसी दिन पितरों ने वसु से कहा कि तुम हिंसक पशुओं को मारो।

स पितृणां नियोगं तमनतिक्रम्य पार्थिवः।। आदि०-63/41
चकार मृगयां कामी गिरिकामेव संस्मरन्।।

आदि०-63/42

राजा, पितरों की आज्ञा का उल्लंघन न करके शिकार के लिये चला गया किन्तु उसका मन अपनी पत्नी गिरिका में लगा रहा।

वायुना प्रेर्यमाणस्तु धूम्राय मुदमन्वगात्।
तस्य रेतः प्रचस्कन्द चरतो गहने वने।।

आदि०-63/49

घने वन में घूमते हुए कामोद्दीपक वायु के कारण राजा के मन में रति की इच्छा जाग उठी और उसका वीर्य स्खलित हो गया।

सूक्ष्मधर्मार्थतत्त्वज्ञो गत्वा श्येनं ततोऽब्रवीत्।
मत्प्रियार्थमिदं सौम्य शुक्रं मम गृहं नय।।

आदि०-63/54

धर्म और अर्थ को भलीभांति जानने वाले राजा वसु ने बाज से कहा कि मेरा यह वीर्य ले जाकर मेरी पत्नी को दे दो।

जवं परममास्थाय प्रदुद्राव विहंगमः।
तमपश्यदथायान्तं श्येनं श्येनस्तथापरः।।

आदि०-63/56

जब बाज तेजी से उड़ा जा रहा था तभी दूसरे बाज ने उसे देख लिया।

युध्यतोरपतद् रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि।
तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद् वराप्सराः।।

आदि०-63/58

दोनों बाजों की लड़ाई में वीर्य यमुना के पानी में गिर गया। उन दिनों ब्रह्माजी के शाप से मछली बनी हुई अद्रिका अप्सरा यमुना में रह रही थी।

जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी।
कदाचिदपि मत्सीं तां बबन्धुर्मत्स्यजीविनः।।

आदि०-63/60

मछली बनी अप्सरा अद्रिका उस वीर्य को निगल गई। कुछ समय बाद मछुआरों ने उस मछली को जाल में पकड़ लिया।

मासे च दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम।
उज्जह्रुरुदरात् तस्याः स्त्रीं पुमांसं च मानुषम्।।

आदि०-63/62

दसवें महीने में मछुआरों ने जब उस मछली का पेट चीरा तो उसके गर्भ से एक कन्या और एक पुत्र निकला।

तयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा।
स मत्स्यो नाम राजासीद् धार्मिकः सत्यसंगरः।।

आदि०-63/63

राजा वसु उपरिचर ने मछुआरों से लड़का ले लिया। यही लड़का मत्स्य नाम का धार्मिक और सत्य आचरण करने वाला राजा बना।

सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यगन्धिनी।
राज्ञा दत्ता च दाशाय कन्येयं भवत्विति।।

आदि०-63/67

मछली के पेट में पलने के कारण लड़की के शरीर से मछली की गन्ध आती थी। राजा ने इसे मल्लाह को दे दिया।

रूपसत्त्वसमायुक्ता सर्वैः समुदिता गुणैः।
सा तु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात्।।

आदि०-63/68

वह लड़की रूप और सभी गुणों से सम्पन्न थी तथा सत्य का पालन करती थी। इसलिये मछुआरों में रहने वाली इस कन्या का नाम सत्यवती पड़ा।

तीर्थयात्रां परिक्रामन्नपश्यद् वै पराशरः।
अतीव रूपसम्पन्नां सिद्धानामपि कांक्षिताम्।।

आदि०-63/70

एक दिन तीर्थयात्रा पर निकले पराशर मुनि ने अत्यन्त रूपवती सत्यवती को देखा। सिद्धों के मनों में भी सत्यवती को पाने की इच्छा रहती थी।

पराशरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा।
जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराशर्यः सवीर्यवान्।।

आदि०-63/84

सत्यवती और पराशर के समागम से यमुना के द्वीप पर पराशर के पुत्र का जन्म हुआ।

एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात्।
न्यस्तो द्वीपे स यद् बालस्तस्माद् द्वैपायनः स्मृतः।।

आदि०-63/86

इस प्रकार महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से द्वैपायन व्यास का जन्म हुआ। उन्हें बचपन में द्वीप पर ही छोड़ दिया गया था इसलिये उनका नाम द्वैपायन पड़ा।

पादापसारिणं धर्मं स तु विद्वान् युगे युगे।
आयुः शक्तिं च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च।।

आदि०-63/87

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकांक्षया।
विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः।।

आदि०-63/88

विद्वान् द्वैपायन जी ने देखा कि प्रत्येक युग में धर्म का एक-एक पाद लुप्त होता जा रहा है। मनुष्यों की आयु और शक्ति भी घट गई है। उस युग की यह दुरवस्था देखकर उन्होंने वेदों और ब्राह्मणों पर कृपा करने की इच्छा से वेदों का विस्तार (व्यास) किया। इसीलिये उनका नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ।

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनीं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम्।।

आदि०-63/89

प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः।।

आदि०-63/90

सर्वश्रेष्ठ और वरदाता व्यासजी ने चारों वेदों और पाँचवें वेद महाभारत का अध्ययन सुमन्तु, जैमिनी, पैल, अपने पुत्र शुकदेव तथा मुझ वैशम्पायन को कराया। इन सबने महाभारत की अलग-अलग संहिताएँ प्रकाशित कीं।

पुण्ये हिमवतः पादे मध्ये गिरिगुहालये।
विशोध्य देहं धर्मात्मा दर्भसंस्तरमाश्रितः।।
शुचिः सनियमो व्यासः शान्तात्मा तपसि स्थितः।
भारतस्येतिहासस्य धर्मेणान्वीक्ष्य तां गतिम्।।
प्रविश्य योगं ज्ञानेन सोऽपश्यत् सर्वमन्ततः।।

आदि०-28, दाक्षिणात्य-29

हिमालय की पवित्र तलहटी में पर्वत की गुफा में धर्मात्मा व्यासजी स्नान आदि से शरीर शुद्ध करके पवित्र होकर कुशा के आसन पर बैठे। उन्होंने शान्त चित्त होकर तपस्या की। ध्यानयोग द्वारा उन्होंने महाभारत के सम्पूर्ण इतिहास पर धर्मपूर्वक विचार किया और अपनी ज्ञानदृष्टि से सारे घटनाक्रम को आदि से अन्त तक प्रत्यक्ष की तरह देखा (और इस ग्रन्थ की रचना की)।

5
महाभारत

द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्।।

आदि०-1/17

तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च।।

आदि०-1/18

भारतस्यैतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम्।।

आदि०-1/19

परम ऋषि द्वैपायन का यह श्रेष्ठ आख्यान विलक्षण शब्द भण्डार से भरा है। देवताओं और महर्षियों ने सुनकर जिसकी प्रशंसा की है। सूक्ष्म अर्थ और न्याय से युक्त, वेदार्थों से अलंकृत, अनेक शास्त्रों से समृद्ध, रचना-कौशल से संस्कार-सम्पन्न भारत के इतिहास और पुराण की ब्राह्मी संहिता का नाम महाभारत है जो आदि से लेकर अन्त तक धर्म से युक्त है।

इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम्।।

आदि०-1/50

ऋषि द्वैपायन ने इस ग्रन्थ में व्याख्या सहित इतिहास का तथा वेदों के विविध अर्थों आदि का पूरी तरह से निरूपण किया है। और इस पूर्णता को ही ग्रन्थ की विशेषता बताई है।

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथा परे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते।।

आदि०-1/52

कुछ लोग इस महाकाव्य का आरम्भ 'नारायणं नमस्कृत्य' से अथवा मनु प्रतिपादित हेमाण्ड सृष्टि वर्णन वाले श्लोकों से मानते हैं और कोई आस्तीक पर्व से। कुछ विद्वान् उपरिचर की कथा से इसका विधिपूर्वक पाठ प्रारम्भ करते हैं।

पुराण संहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।
इतिवृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम्।।

आदि०-1/16

इसमें पुराणों की पुण्य कथाएँ हैं जो धर्म और अर्थ के रहस्यों से युक्त हैं। इसमें उदारचरित ऋषियों और सम्राटों के इतिहास हैं।

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः।।

आदि०-1/54

सत्यवती के पुत्र व्यास जी ने अपनी तपस्या और ब्रह्मचर्य की शक्ति से सनातन वेद का विस्तार करके इस लोक पावन इतिहास की रचना की है।

ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तर क्रिया।।

आदि०-1/62

ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्य में वेदों का रहस्य प्रतिपादित किया है। इसमें अन्य सभी शास्त्रों के रहस्य भी प्रकट किये गये हैं। वेदांगों और उपनिषदों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

इतिहास पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम्।।

आदि०-1/63

इस महाकाव्य में इतिहास और पुराणों का प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है तथा भूतकाल, वर्त्तमानकाल और भविष्य की घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है।

जरामृत्यु भयव्याधि भावाभाव विनिश्चयः।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम्।।

आदि०-1/64

इसमें बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग, सांसारिक वस्तुओं की सच्चाई और मिथ्यापन का तथा धर्म के विविध स्वरूपों का और सभी आश्रमों के लक्षणों का वर्णन किया गया है।

चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः।।

आदि०-1/65

ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च।।

आदि०-1/66

इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का तथा पुराणों के समस्त तत्त्व का, तपस्या और ब्रह्मचर्य के स्वरूप और अनुष्ठान का उल्लेख किया गया है। पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन सबके स्वरूप और अवधि का तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अध्यात्मशास्त्र का विस्तृत परिचय दिया गया है।

न्यायशिक्षाचिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा।
हेतुनैव समं जन्म दिव्यमानुषसंज्ञितम्।।

आदि०-1/67

इसमें न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत (अन्तर्यामी की महिमा) का निरूपण किया गया है तथा दिव्य और मनुष्य आदि योनियों में जन्म का कारण क्या होता है यह भी बताया गया है।

तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्त्तनम्।
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च।।

आदि०-1/68

इस महाकाव्य में पवित्र तीर्थों, देशों, नदियों, पर्वतों, वनों और सागर का भी वर्णन किया गया है।

पुराणां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम्।
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः।।

आदि०-1/69

दिव्य नगरों और दुर्गों का निर्माण, युद्ध कौशल, भिन्न-भिन्न भाषाओं और

जातियों की विशेषताओं तथा लोक व्यवहार की सभी आवश्यक बातों का वर्णन इसमें किया गया है।

अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे।
विशेषणे गृहस्थस्य शेषास्त्रय इव आश्रमाः।।

आदि०-1/74

इस महाकाव्य से बढ़कर अन्य कोई महाकाव्य बड़े-बड़े कवि भी नहीं लिख सकेंगे। जिस प्रकार गृहस्थाश्रम शेष तीन ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों से श्रेष्ठ है उसी प्रकार महाभारत काव्य भी अन्य काव्यों से श्रेष्ठ है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम्।।

आदि०-1/84

धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः।
तथा भारतसूर्येण नृणां विनिहतं तमः।।

आदि०-1/85

संसार में लोग अज्ञान के अन्धकार से अन्धे होकर कष्ट पा रहे हैं। यह महाभारत; ज्ञानरूपी अंजन की सलाई लगाकर अज्ञानियों की आंखें खोल देता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का संक्षेप से और विस्तार से वर्णन करना ही ज्ञानरूपी अंजन है। यह महाकाव्य सूर्य की भांति लोगों का अज्ञान दूर कर देता है।

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः।।

आदि०-1/92

अक्षय ज्ञान की निधि से परिपूर्ण यह महाभारत रूपी वृक्ष सभी श्रेष्ठ कवियों के काव्यों का मूल आधार उसी प्रकार होगा जैसे बादल; सभी प्राणियों को जीवन देते हैं।

इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम्।।

आदि०-1/101

उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।।

आदि०-1/102

पुण्यचरित लोगों की कथाओं सहित एक लाख श्लोकों के इस महाकाव्य को महाभारत कहा जाता है। कृष्णद्वैपायन व्यास ने चौबीस हज़ार श्लोकों की भारतसंहिता रची थी।

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।।

आदि०-1/110

क्रोधी दुर्योधन ऐसा विशालवृक्ष है जिसका तना कर्ण है, शकुनि शाखा है, दुःशासन इस वृक्ष का समृद्ध फूल और फल है तथा मोहान्ध राजा धृतराष्ट्र इस वृक्ष की जड़ है।

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।।

आदि०-1/111

धर्ममय युधिष्ठिर ऐसा विशाल वृक्ष है जिसका तना अर्जुन है, भीमसेन इसकी शाखाएँ हैं, माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव इसके फल-फूल हैं और वृक्ष को रस से सींचने वाली जड़ कृष्ण है, वही ब्रह्म और ब्राह्मण हैं।

भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च।।

आदि०-1/256

भगवान् वासुदेव की महिमा का कीर्त्तन ही इस महाकाव्य का लक्ष्य है। वही सत्य हैं। उन्हें ही ऋत कहते हैं। वही सनातन हैं। वही पुण्यदायक और पवित्र हैं।

शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः।।

आदि०-1/257

असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः।।

आदि०-1/258

वही शाश्वत ब्रह्म हैं। वही सनातन ज्योति हैं। वही इस अनित्य, नश्वर जगत् में परम ध्रुव हैं। उन्हीं के दिव्य कर्मों का विद्वान वर्णन करते हैं। उसी देव से सत् और असत्, जन्म और मृत्यु तथा पुनर्जन्म एवं पांच भूतों से बना यह संसार चल रहा है।

अध्यात्मं श्रूयते यच्च पञ्चभूतगुणात्मकम्।
अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते।।

अदि०-1/259

यत्तद् यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः।
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मान्यवस्थितम्।।

आदि०-1/260

वही ब्रह्म इस पञ्चभूतात्मक संसार में व्याप्त अध्यात्म है। उसी अव्यक्त और परम ब्रह्म की स्तुति की गई है। उसी ब्रह्म के ध्यान का बल पाकर मन को योगाभ्यास और ध्यान में लगाने वाले जीवन्मुक्त श्रेष्ठ ऋषि अपने हृदय में ब्रह्म के स्वरूप का उसी प्रकार दर्शन करते हैं जैसे दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब का।

पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम्।
चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो ह्यधिकं यदा।।

आदि०-1/272

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम्।।

आदि०-1/273

बहुत पहले की बात है सब देवताओं ने एकत्र होकर तराजू के एक पलड़े पर चारों वेदों को रखा और दूसरे पर महाभारत को। किन्तु रहस्यों से भरा महाभारत, वेदों की अपेक्षा भारी निकला, तभी से संसार में यह काव्य महाभारत कहलाने लगा। सत्य की तुला पर यह महाकाव्य महत्त्व, गौरव या गम्भीरता में वेदों से भी अधिक सिद्ध हुआ है।

आत्मेव वेदितव्येषु प्रियेष्विव हि जीवितम्।
इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम्।।

आदि०-1/36

जैसे जानने योग्य वस्तुओं में आत्मा और प्रिय पदार्थों में अपना जीवन सर्वश्रेष्ठ है उसी तरह सब शास्त्रों में परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति करने वाला यह श्रेष्ठ इतिहास है।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चाख्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः।।

आदि०-2/382

वेदांगों और उपनिषदों के साथ चारों वेदों का जिसे ज्ञान है, किन्तु जो इस महाभारत के आख्यान को नहीं जानता उसे विचक्षण नहीं कह सकते।

श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते।
पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वांक्षस्य वागिव।।

आदि०-2/384

इस आख्यान को सुन लेने के बाद और कुछ अच्छा नहीं लगता जैसे कोयल का मधुर स्वर सुनने के बाद कौए की कांव-कांव नहीं सुहाती।

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पंचभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः।।

आदि०-2/385

इस उत्तम इतिहास से कवियों की विशाल प्रतिमाएँ जन्म लेती हैं जैसे पांचभूतों से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध सृष्टियां उत्पन्न होती हैं।

अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्।।

आदि०-2/388

इस आख्यान का सहारा लिये बिना पृथिवी पर किसी कथा का अस्तित्व नहीं है, जैसे भोजन के बिना शरीर धारण नहीं किया जा सकता।

इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः।।

आदि०-2/389

सारे श्रेष्ठ कवि इस आख्यान का सहारा लेते हैं जैसे उन्नति चाहने वाले सेवक श्रेष्ठ स्वामी का सहारा लेते हैं।

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम्।।

आदि०-62/52

प्रतिदिन प्रातःकाल उठने वाले कृष्णद्वैपायन मुनि ने इस महाभारत की तीन वर्षों में रचना की।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

आदि०-62/53

भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो कुछ इस ग्रन्थ में है वही दूसरे शास्त्रों में भी है। जो बात इस महाकाव्य में नहीं है वह कहीं भी नहीं है।

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं नियतात्मभिः।।

आदि०-95/90

यह महाभारत; वेदों के समान पवित्र, उत्तम है तथा धन, यश और आयु देने वाला है। मन को वश में रखने वाले सज्जनों को यह महाकाव्य सुनना चाहिये।

6

शकुन्तला-दुष्यन्त संवाद

पुरुवंश को चलाने वाले राजा दुष्यन्त थे। एक दिन दुष्यन्त वन में शिकार करते हुए महर्षि कण्व के आश्रम में पहुंच गये। वहाँ उनका परिचय शकुन्तला से हुआ। तब महर्षि कण्व आश्रम में नहीं थे। दुष्यन्त और शकुन्तला ने गन्धर्व विवाह कर लिया। कुछ समय बाद शकुन्तला ने पुत्र को जन्म दिया। महर्षि कण्व ने शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के पास भेज दिया। शकुन्तला और दुष्यन्त के इस पुत्र का नाम भरत था। चक्रवर्त्ती सम्राट् भरत के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरत के नाम से ही कौरववंश भरतवंश कहलाता है। प्रारम्भ में दुष्यन्त ने शकुन्तला को अपनी पत्नी स्वीकार नहीं किया। उसी अवसर का यह संवाद है।

शकुन्तला : **अयं पुत्रस्त्वया राजन् यौवराज्येऽभिषिच्यताम्।**
त्वया ह्ययं सुतो राजन् मय्युत्पन्नः सुरोपमः।
यथासमयमेतस्मिन् वर्तस्व पुरुषोत्तम।।

आदि०-74/17

हे राजन! यह आपका पुत्र है, युवराज के पद पर आप इसका अभिषेक कीजिये। महाराज! देवोपम आपका यह पुत्र मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। आपने विवाह करते समय मुझे जो वचन दिया था अब उसका पालन कीजिये।

दुष्यन्त : **सोऽथ श्रुत्वैव तद् वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि।**
अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि।।

आदि०-74/19

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला की यह बात सुनकर पिछली बातों को याद रखते हुए भी कहा दुष्ट तपस्विनी! मुझे कुछ भी याद नहीं है। तुम किसकी पत्नी हो?

सैवमुक्ता वरारोहा व्रीडितेव तपस्विनी।
निःसंज्ञेव च दुःखेन तस्थौ स्थूणेव निश्चला।।

आदि०-74/21

तापसी और सुन्दर अंगों वाली शकुन्तला राजा की यह बात सुनकर लज्जित हो गई और दुःख से बेहोश सी हो गई। वह खम्भे की तरह निश्चल खड़ी रही।

संरम्भामर्षताम्राक्षी स्फुरमाणौष्ठसम्पुटा।
कटाक्षैर्निर्दहन्तीव तिर्यग् राजानमैक्षत।।

आदि०-74/22

क्रोध से उसकी आंखें लाल हो गईं और होठ फड़कने लगे। उसके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं और वह राजा को देखती रह गई।

शकुन्तला : जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे।
न जानामीति निःशङ्कं यथान्यः प्राकृतो जनः।।

आदि०-74/25

महाराज! आप सब कुछ जानते हुए भी क्यों अनजान बन रहे हैं और साधारण व्यक्ति की तरह व्यवहार कर रहे हैं।

अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च।
कल्याणं वद साक्ष्येण माऽऽत्मानमवमन्यथाः।।

आदि०-74/26

इस विषय में सच और झूठ का साक्षी आपका हृदय ही है। आप उसी को साक्षी बनाकर सही बात कहिये और अपनी अन्तरात्मा की अवहेलना मत कीजिये।

एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छ्यं वेत्सि मुनिं पुराणम्।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि।।

आदि०-74/28

आप अब समझ रहे हैं कि उस समय मैं अकेला था, परन्तु क्या आप अपने हृदय में विराजमान अन्तर्यामी परमात्मा को नहीं जानते जो सबके पाप कर्म जानते हैं और आप उसी परमात्मा के पास रहकर भी पाप कर रहे हैं।

स्वयं प्राप्तेति मामेवं मावमंस्थाः पतिव्रताम्।
अर्चार्हां नार्चयसि मां स्वयं भार्यामुपस्थिताम्।।

आदि०-74/34

मैं स्वयं आपके पास आई हूँ ऐसा समझ कर आप मुझ पतिव्रता पत्नी का अपमान मत कीजिये। आपको मेरा आदर करना चाहिये। मैं स्वयं आपके पास आई हूँ फिर भी आप मेरा सम्मान नहीं कर रहे।

किमर्थं मां प्राकृतवदुपेक्षसि संसदि।
न खल्वहमिदं शून्ये रौमि किं न शृणोषि मे।।

आदि०-74/35

आप किसलिये नीच पुरुष की तरह सभा में मेरा अपमान कर रहे हैं? मैं सूनी जगह तो नहीं रो रही हूँ। क्यों आप मेरी बात नहीं सुन रहे?

यदि मे याचमानाया वचनं न करिष्यसि।
दुष्यन्त शतधामूर्धा ततस्तेऽद्य स्फुटिष्यति।।

आदि०-74/36

दुष्यन्त! यदि आप मुझ गिड़गिड़ाती हुई की बात नहीं मानेंगे तो आपके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

स त्वं स्वयमभिप्राप्तं साभिलाषमिमं सुतम्।
प्रेक्षमाणं कटाक्षेण किमर्थमवमन्यसे।।

आदि०-74/54

आपका यह पुत्र स्वयं आपके पास आया है और तिरछी चितवन से प्रेमपूर्वक आपको देख रहा है फिर भी आप इसका अपमान क्यों कर रहे हैं?

स्पृशतु त्वां समाश्लिष्य पुत्रोऽयं प्रियदर्शनः।
पुत्रस्पर्शात् सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते।।

आदि०-74/58

आपका यह पुत्र कितना सुन्दर है। वह लिपटकर आपके अंगों का स्पर्श करे। पुत्र के स्पर्श से बढ़कर संसार में और कोई सुख नहीं है।

आहर्ता वाजिमेधस्य शतसंख्यस्य पौरव।
इति वागन्तरिक्षे मां सूतकेऽभ्यवदत् पुरा।।

आदि०-74/60

जब मैंने इसे जन्म दिया था तब आकाशवाणी ने कहा था कि यह बालक सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा।

मृगावकृष्टेन पुरा मृगयां परिधावता।
अहमासादिता राजन् कुमारी पितुराश्रमे।।

आदि०-74/67

राजन्! कुछ वर्ष पहले आप शिकार करते हुए वन में हरिण का पीछा करते हुए मेरे पिता के आश्रम में आये थे। वहीं पर कुमारी अवस्था में मेरा आपसे परिचय हुआ था।

तासां सा मेनका नाम ब्रह्मयोनिर्वराप्सराः।
दिवः सम्प्राप्य जगतीं विश्वामित्रादजीजनत्।।

आदि०-74/69

स्वर्ग की अप्सराओं में मेनका सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह ब्रह्मा से उत्पन्न हुई है। उसी ने स्वर्ग से पृथिवी पर आकर विश्वामित्र द्वारा मुझे जन्म दिया था।

सा मां हिमवतः प्रस्थे सुषुवे मेनकाप्सराः।
अवकीर्य च मां याता परात्मजमिवासती।।

आदि०-74/70

मेनका अप्सरा मुझे हिमालय की घाटी में जन्म देकर परायी सन्तान की तरह अकेला छोड़कर चली गई।

किं तु कर्माशुभं पूर्वं कृतवत्यन्यजन्मनि।
यदहं बान्धवैस्त्यक्ता बाल्ये सम्प्रति च त्वया।।

आदि०-74/71

मैंने पूर्वजन्म में कौन सा ऐसा पाप किया था कि बचपन में मेरे माता-पिता ने मुझे छोड़ दिया और अब आप भी मुझे छोड़ रहे हैं।

कामं त्वया परित्यक्ता गमिष्यामि स्वमाश्रमम्।
इमं तु बालं संत्यक्तुं नार्हस्यात्मजमात्मनः।।

आदि०-74/72

आपसे परित्यक्ता मैं अपने आश्रम भले ही लौट जाऊंगी, किन्तु अपने इस बाल-पुत्र को छोड़ना आपके लिये उचित नहीं।

दुष्यन्त : **न पुत्रमभिजानामि त्वयि जातं शकुन्तले।**
असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यते वचः।।

आदि०-74/73

शकुन्तला! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न इस पुत्र को मैं नहीं जानता। स्त्रियाँ प्रायः झूठ बोलती हैं इसलिये तुम्हारी बात पर कौन विश्वास करेगा?

मेनका निरनुक्रोशा बन्धकी जननी तव।
यया हिमवतः पृष्ठे निर्माल्यमिव चोज्झिता।।

आदि०-74/74

तुम्हारी माता मेनका कैसी निष्ठुर और पुंश्चली थी जो उतारी हुई माला की तरह तुम्हें हिमालय की चट्टान पर फेंक कर चली गई।

स चापि निरनुक्रोशः क्षत्रयोनिः पिता तव।
विश्वामित्रो ब्राह्मणत्वे लुब्धः कामवशं गतः।।

आदि०-74/75

तुम्हारे क्षत्रिय पिता विश्वामित्र भी बड़े निर्दयी हैं जो ब्राह्मण बनना चाहते थे किन्तु मेनका को देखते ही उस पर आसक्त हो गये।

अश्रद्धेयमिदं वाक्यं कथयन्ती न लज्जसे।
विशेषतो मत्सकाशे दुष्टतापसि गम्यताम्।।

आदि०-74/77

तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं होता। ऐसी बातें कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती। मुझ से तो तुम्हें यह बात नहीं कहनी चाहिये थी। दुष्ट तापसी! तू यहाँ से चली जा।

शकुन्तला : **राजन् सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यसि।**
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि।।

आदि०-74/82

राजन्! आप दूसरों के राई जैसे छोटे से दोष तो देखते हैं किन्तु बेल जैसे अपने बड़े पापों को देखते हुए भी नहीं देखते।

क्षितावटसि राजेन्द्र अन्तरिक्षे चराम्यहम्।
आवयोरन्तरं पश्य मेरुसर्षपयोरिव।।

आदि०-74/84

हे राजन्! आप तो जमीन पर ही रहते हैं किन्तु मैं तो आकाश में भी विचरती हूँ। आप में और मुझमें सरसों और मेरु पर्वत जैसा अन्तर है।

महेन्द्रस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च।
भवनान्यनुसंयामि प्रभावं पश्य मे नृप।।

आदि०-74/85

हे राजन्! इन्द्र, कुबेर, यम और वरुण इन देवताओं के घरों में मेरा आना जाना है। मेरा इतना अधिक प्रभाव है।

अनृते चेत्प्रसङ्गस्ते श्रद्धासि न चेत् स्वयम्।
आत्मना हन्त गच्छामि त्वादृशे नास्ति संगतम्।।

आदि०-74/107

यदि तुम्हें झूठ ही अच्छा लगता है और अपने हृदय की बात भी नहीं सुनते तो मैं जाती हूँ। तुम्हारे जैसे के साथ मेरा मेल नहीं हो सकता।

त्वामृतेऽपि हि दुष्यन्त शैलराजावतंसकाम्।
चतुरान्तामिमामुर्वी पुत्रो मे पालयिष्यति।।

आदि०-74/108

दुष्यन्त! याद रखना कि तुम्हारे बिना भी मेरा यह पुत्र पर्वतों के कुण्डल से सुशोभित इस चतुरन्त पृथ्वी का पालन करेगा।

एतावदुक्त्वा राजानं प्रातिष्ठत शकुन्तला।
अथान्तरिक्षाद् दुष्यन्तं वागुवाचाशरीरिणी।।

आदि०-74/109

राजा दुष्यन्त से इतना कहकर शकुन्तला जाना ही चाहती थी कि अन्तरिक्ष से आकाशवाणी ने दुष्यन्त से कहा।

त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला।
जाया जनयते पुत्रमात्मनोऽङ्गं द्विधाकृतम्।।

आदि०-74/112

शकुन्तला ने सत्य कहा है। तुम्हीं इस गर्भ के जनक हो। पत्नी दो भागों में बंटे हुए पति के शरीर को ही पुत्र रूप में पैदा करती है।

दुष्यन्त : पुरोहितममात्यांश्च सम्प्रहृष्टोऽब्रवीदिदम्।
शृण्वन्त्वेतद् भवन्तोऽस्य देवदूतस्य भाषितम्।।

आदि०-74/116

आकाशवाणी सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुरोहित तथा मन्त्रियों से बोले कि आप लोगों ने देवदूत की बात सुनी।

अहं चाप्येवमेवैनं जानामि स्वयमात्मजम्।
यद्यहं वचनादस्या गृह्णीयामि ममात्मजम्।।

आदि०-74/117

भवेद्धि शङ्क्यो लोकस्य नैव शुद्धो भवेदयम्।।

मैं जानता था कि यह मेरा ही पुत्र है। यदि मैं केवल शकुन्तला के कहने से इसे स्वीकार कर लेता तो लोग सन्देह करते और यह बालक शुद्ध नहीं माना जाता।

तां चैव भार्यां दुष्यन्तः पूजयामास धर्मतः।
अब्रवीच्चैव तं राजा सान्त्वपूर्वमिदं वचः।।

आदि०-74/121

राजा ने अपने पुत्र और अपनी पत्नी शकुन्तला को स्वीकार करके शकुन्तला को समझते हुए उससे कहा।

कृतो लोकपरोक्षोऽयं सम्बन्धो वै त्वया सह।
तस्मादेतन्मया देवि त्वच्छुद्ध्यर्थं विचारितम्।।

आदि०-74/122

मैंने एकान्त में तुम्हारे साथ सम्बन्ध किया था अतः शुद्धि के लिये मैंने इस तरह का व्यवहार किया।

7
ययाति का उपदेश

राजा ययाति ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से विवाह किया था किन्तु उन्होंने शर्मिष्ठा से भी पुत्र उत्पन्न किया। यह जानकर देवयानी रूठकर अपने पिता के पास चली गई। शुक्राचार्य ने ययाति को बूढ़े हो जाने का शाप दे दिया। बूढ़े ययाति ने अपने पुत्रों से कहा कि वे अपनी युवावस्था अपने पिता को कुछ समय के लिये दे दें किन्तु यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु ने अपने पिता की बात नहीं मानी। पुरु ने अपने पिता का बुढ़ापा ले लिया और ययाति ने पुरु को वर प्रदान किया। संसारिक विषयों का मनमाना उपभोग करने से ययाति के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे पुरु को राज्य सौंप कर वन में चले गये। कठोर तपस्या के बाद ययाति को स्वर्गलोक मिला। स्वर्ग में इन्द्र ने ययाति से पूछा कि तुमने अपने पुत्र पुरु के बूढ़े हो जाने पर उसे क्या उपदेश दिया था? प्रस्तुत है इन्द्र और ययाति का वार्त्तालाप।

ययाति : न च कुर्यान्नरो दैन्यं शाठ्यं क्रोधं तथैव च।
जैह्म्यं च मत्सरं वैरं सर्वत्रैव न कारयेत्।।

आदि०-87/5 दा०पा० 6

मनुष्य को दीनता, धूर्तता और क्रोध नहीं करना चाहिये। उसे कुटिलता, ईर्ष्या और वैर भी नहीं करना चाहिये।

मातरं पितरं चैव विद्वांसं च तपोधनम्।
क्षमावन्तं च देवेन्द्र नावमन्येत बुद्धिमान्।।

आदि०-87/5 दा०पा०

हे इन्द्र! बुद्धिमान् पुरुष को अपने माता, पिता, विद्वान्, तपस्वी और क्षमाशील मनुष्य का अपमान नहीं करना चाहिये।

शक्तस्तु क्षमते नित्यमशक्तः क्रुध्यते नरः।
दुर्जनः सुजनं द्वेष्टि दुर्बलो बलवत्तरम्।।

आदि०-87/5 दा०पा०

शक्तिशाली पुरुष सदा क्षमा करता है। दुर्बल मनुष्य सदा क्रोध करता है। दुष्ट व्यक्ति सज्जन से द्वेष करता है और कमजोर व्यक्ति बलवान् से।

रूपवन्तमरूपी च धनवन्तं च निर्धनः।
अकर्मी कर्मिणं द्वेष्टि धार्मिकं च न धार्मिकः।।
निर्गुणो गुणवन्तं च शक्रैतत् कलिलक्षणम्।।

आदि०-87/5 दा०पा०

हे इन्द्र! कुरूप मनुष्य सुन्दर पुरुष से, दरिद्र व्यक्ति धनवान् से, आलसी पुरुष काम करने वाले से, अधर्म में फंसा व्यक्ति धर्माचरण करने वाले से और गुणहीन व्यक्ति गुणवान् से द्वेष करता है। यह कलियुग के लक्षण हैं।

अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषेभ्यो मानुषाश्च प्रधाना विद्वांसस्तथैवाविदुषः प्रधानः।।

आदि०-87/6

क्रोध न करने वाला व्यक्ति क्रोधी पुरुष से श्रेष्ठ है। जो सहनशील है वह उससे बढ़कर है जो सहन नहीं कर सकता। जो मानवेतर हैं उन सबकी तुलना में मनुष्य प्रधान है। जो विद्वान् है वह न जानने वालों में प्रधान होता है।

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति।।

आदि०-87/7

यदि कोई जली-कटी बातें कहें तो हमें उसकी नकल नहीं करनी चाहिए। जो ऐसी बातों को सहन कर लेता है उसका तेज दुर्वचन कहने वालों को फूंक डालता है और उसके पुण्य को हर लेता है।

यो विद्यया तपसा जन्मना वा वृद्धः स पूज्यो भवति द्विजानाम्।।

आदि०-89/2

जो विद्या में, तप में और आयु में बड़ा होता है वह द्विजों में पूज्य माना जाता है।

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहुस्तद् वर्ततेऽप्रवणे पापलोक्यम्।।

आदि०-89/4

कर्मों का प्रतिकूल आचरण ही पाप कहा गया है। जो कर्म जिस प्रकार से करना चाहिये उसे उसके उचित ढंग से न करना ही बुराई का कारण है।

अभूद् धनं मे विपुलं गतं तद् विचेष्टमानो नाधिगन्ता तदस्मि।
एवं प्रधार्यात्महिते निविष्टो यो वर्तते स विजानाति धीरः।।

आदि०-89/5

मेरे पास पुण्यरूपी बहुत धन था किन्तु दूसरों की निन्दा करने के कारण वह नष्ट हो गया। अब मैं प्रयत्न करके भी उसे नहीं पा सकता। मेरी इस बुरी हालत को देखकर जो आत्मकल्याण में लगा रहता है वही ज्ञानी और धीर है।

महाधनो यो यजते सुयज्ञैर्यः सर्वविद्यासु विनीतबुद्धिः।
वेदानधीत्य तपसाऽऽयोज्य देहं दिवं दिवं समायात् पुरुषो वीतमोहः।।

आदि०-89/6

जो मनुष्य धनी होकर अच्छे यज्ञ करके भगवान् की आराधना करता है। सभी विद्याएँ पढ़कर जिसकी बुद्धि विनयशील रहती है तथा जो वेद पढ़कर अपना शरीर तपस्या में लगा देता है। वह पुरुष मोह रहित होकर स्वर्ग को जाता है।

अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा कस्मात् संतापमष्टकाहं भजेयम्।
किं कुर्यां वै किं च कृत्वा न तप्ये तस्मात् संतापं वर्जयाम्यप्रमत्तः।।

आदि०-89/12

अष्टक! मैं जानता हूँ कि सुख और दुःख सदा नहीं रहते फिर मुझे किस बात का सन्ताप हो? मैं जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिये और किस प्रकार के कर्म से मुझे पछतावा न होगा, अतः सन्ताप के काम से बचता हूँ।

ज्ञातिः सुहृत् स्वजनो वा यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि।
तथा तत्र क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः सेश्वरा देवसंघाः।।

आदि०-90/2

जिस प्रकार मनुष्य का धन नष्ट हो जाने पर उसके संबंधी, मित्र और परिचित उसे छोड़ देते हैं वैसे ही मनुष्य का पुण्य समाप्त हो जाने पर देवता और उनके अधिपति उसे छोड़ देते हैं।

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव सर्वे।।

आदि०-90/4

नरदेव! जब पुण्य समाप्त हो जाता है तब मनुष्य को लपलपाती हुई लालसा लिये फिर इसी भौम नरक में आना पड़ता है।

तस्मादेतद् वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म।।

आदि०-90/5

राजन्! इसलिये मनुष्य को इस लोक में बुरे और निन्दित कर्म नहीं करने चाहिये।

अस्त्रं रेतः पुष्पफलानुपृक्तमन्वेति तद् वै पुरुषेण सृष्टम्।
स वै तस्या रज आपद्यते वै स गर्भभूतः समुपैति तत्र।।

आदि०-90/10

अन्तरिक्ष से गिरा हुआ प्राणी जल (अस्त्र) होता है। यही जल अन्न और वनस्पतियों में फल-फूल का रूप लेकर वीर्य बन जाता है। यह वीर्य; रज से मिलकर गर्भ बन जाता है।

तपश्च दानं च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम्।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः।।

आदि०-90/22

साधु पुरुष स्वर्ग के ये सात दरवाजे बतलाते हैं-तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और सब प्राणियों पर दया। जब पुरुष पर अभिमान का अन्धकार छा जाता है तब उसका स्वर्ग द्वार बन्द हो जाता है।

अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम्।
तस्यान्तवन्तश्च भवन्ति लोका न चास्य तद् ब्रह्म फलं ददाति।।

आदि०-90/23

जो व्यक्ति वेदशास्त्र पढ़कर अपने को सबसे बड़ा विद्वान् मानता है और अपनी विद्या से दूसरों का यश नष्ट करता है उसके पुण्यलोक विनाशशील होते हैं और उसे उसका अध्ययन भी फल नहीं देता।

चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।।

आदि०-90/24

अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ ये चार कर्म यदि ठीक प्रकार से किये जायें तो इनसे मनुष्य को अभय प्राप्त होता है। यदि इनको अभिमान में भरकर किया जाता है तो ये कर्म उसके लिये भयंकर हो जाते हैं।

न मानमान्यो मुदमाददीत न संतापं प्राप्नुयाच्चावमानात्।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते।।

आदि०-90/25

हमें सम्मान से प्रसन्न नहीं होना चाहिये और अपमान से सन्तप्त नहीं होना चाहिये। भले आदमी भलों का आदर करते हैं। दुष्टों में साधुबुद्धि नहीं होती।

इति दद्यामिति यज इत्यधीय इति व्रतम्।
इत्येतानि भयान्याहुस्तानि वर्ज्यानि सर्वशः।।

आदि०-90/26

मैं यह दे सकता हूँ, मैं इस तरह यज्ञ करता हूँ, मैं इतना पढ़ता हूँ और इतने व्रत रखता हूँ ऐसी अहंकार भरी बातें भय रूप होती हैं अतः अभिमान भरी बातें छोड़ देनी चाहिये।

न तुल्यतेजाः सुकृतं कामयेत योगक्षेमं पार्थिव पार्थिवः सन्।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वांश्चरेन्नृशंसं न हि जातु राजा।।

आदि०-92/17

राजन्! किसी भी राजा को समान रूप से तेजस्वी होने पर किसी के सुकृत और योग क्षेम को लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। यदि भाग्यवश उस पर आपत्ति आ जाये तो उसे दीनतापूर्ण कार्य नहीं करने चाहिये।

यदर्हो ऽहं तद् यतध्वं सन्तः सत्याभिनन्दिनः।
अहं तन्नाभिजानामि यत् कृतं न मया पुरा।।

आदि०-93/11

मैं जिसके योग्य हूँ आप उसी के लिये प्रयत्न कीजिये। साधु पुरुष सत्य को ही अच्छा मानते हैं। जिस वस्तु के लिये मैंने पहले कभी कोई कर्म नहीं किया उसे लेने की इच्छा मैं कभी नहीं करता।

सत्येन वै द्यौश्च वसुन्धरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति।।

आदि०-93/25

सत्य के बल पर ही द्युलोक और पृथिवी टिकी हुई है। सत्य से ही मनुष्यों में अग्नि प्रज्वलित होती है। मैंने कभी मिथ्या बात नहीं कही। सज्जन सत्य की ही पूजा करते हैं।

सर्वे च लोका मुनयश्च देवाः।
सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम्।।

आदि०-93/26

सब देवता, मुनि और मनुष्य सत्य से ही पूजनीय बनते हैं यही मेरी मान्यता है।

8
भीष्म

स राजा शान्तनुर्धीमान् देवराजसमद्युतिः।
बभूव मृगयाशीलः शान्तनुर्वनगोचरः।।

आदि०-97/25

पौरववंश में प्रतीप राजा के पुत्र शान्तनु बहुत बुद्धिमान् और इन्द्र के समान प्रतापशाली थे। एक दिन वे शिकार के लिये वन में गये।

स कदाचिन्महाराज ददर्श परमां स्त्रियम्।
जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षाच्छ्रियमिवापराम्।।

आदि०-97/27

वहां उन्हें बड़ी सुन्दर और तेजस्विनी स्त्री दिखाई दी जो लक्ष्मी ही लगती थी।

तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाभूद् विस्मितो रूपसम्पदा।
पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत नराधिपः।।

आदि०-97/29

उसे देखते ही राजा शान्तनु को रोमांच हो आया और वे उसकी रूपराशि पर मुग्ध हो उसे एकटक देखते रहे।

तामुवाच ततो राजा सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा। आदि०-97/31
याचे त्वां सुरगर्भाभे भार्या मे भव शोभने।।

आदि०-97/32

राजा उसे आश्वस्त करते हुए मधुरवाणी में बोले, देवकन्या के समान सुन्दरि! तुम मेरी पत्नी बनना स्वीकार कर लो।

उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा।
भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा।।

आदि०–98/2

वह स्त्री राजा को प्रसन्न करती हुई बोली कि मैं आपकी महारानी बन जाऊंगी और आपकी आज्ञा मानूंगी।

यत् तु कुर्यामहं राजञ्छुभं वा यदि वाशुभम्।
न तद् वारयितव्यास्मि न वक्तव्या तथाप्रियम्।।

आदि०–98/3

परन्तु यही शर्त्त है कि मैं भला-बुरा जो भी कुछ करूँ उससे तुम मुझे कभी रोकना नहीं और मुझसे कोई अप्रिय बात भी न कहना।

एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव।
वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम्।।

आदि०–98/4

हे राजा! ऐसा बर्त्ताव करने पर ही मैं आपके साथ रहूँगी, यदि मुझे कुछ करने से रोका जायेगा या अप्रिय बात कही जायेगी तो मैं चली जाऊंगी।

रममाणस्तया सार्धं यथाकामं नरेश्वरः।
अष्टावजनयत् पुत्रांस्तस्याममरसंनिभान्।।

आदि०–98/12

उसके साथ इच्छानुसार विहार करते हुए राजा ने उसके गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न किये जो देवताओं के समान तेजस्वी थे।

जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि भारत।
प्रीणाम्यहं त्वामित्युक्त्वा गंगास्त्रोतस्यमज्जयत्।।

आदि०–98/13

पुत्रों के पैदा होते ही वह प्रत्येक सन्तान को गंगा में बहा आती और कहती कि पुत्र मैं तुम्हें प्रसन्न कर रही हूँ।

तस्य तन्न प्रियं राज्ञः शान्तनोरभवत् तदा।
न च तां किंचनोवाच त्यागाद् भीतो महीपतिः।।

आदि०–98/14

राजा शान्तनु को अपनी पत्नी का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता था किन्तु वे उससे कुछ नहीं कहते थे, क्योंकि डरते थे कि वह छोड़कर चली जायेगी।

अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसतीमिव।
उवाच राजा दुःखार्तः परीप्सन् पुत्रमात्मनः।।

आदि०-94/15

आठवां पुत्र होने पर राजा हँसती हुई सी अपनी पत्नी से दुःखी होकर बोले, क्योंकि वे अपने पुत्र के प्राण बचाना चाहते थे।

मा वधीः कस्य कासीति किं हिनस्ति सुतानिति।
पुत्रघ्नि सुमहत् पापं सम्प्राप्तं ते सुगर्हितम्।।

आदि०-98/16

तुम इस पुत्र को नहीं मारो। तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? तुम अपने बेटों को क्यों मारती हो? और पुत्रहत्या का पाप क्यों करती हो?

स्त्री : पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर।
जीर्णस्तु मम वासोऽयं यथा स समयः कृतः।।

आदि०-98/17

वह बोली पुत्र चाहने वाले नरेश! तुम पुत्रवान् लोगों में श्रेष्ठ हो। मैं तुम्हारे इस पुत्र की हत्या नहीं करूँगी, किन्तु अब तुम्हारे पास रहने का मेरा समय पूरा हो गया है क्योंकि तुमने शर्त तोड़ दी है।

अहं गंगा जह्नुसुता महर्षिगणसेविता।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुषिताहं त्वया सह।।

आदि०-98/18

मैं जह्नु की पुत्री गंगा हूँ। महर्षि मेरे तट पर निवास करते हैं। देवताओं का कार्य पूरा करने के लिये मैं आपके साथ रहने आयी थी।

इमेऽष्टौ वसवो देवा महभागा महौजसः।
वसिष्ठशापदोषेण मानुषत्वमुपागताः।।

आदि०-98/19

तुम्हारे ये आठों पुत्र महातेजस्वी वसु देवता हैं। महर्षि वसिष्ठ के शाप से इन्हें मनुष्य योनि में आना पड़ा था।

देवानां समयस्त्वेष वसूनां संश्रुते मया।
जातं जातं मोक्षयिष्ये जन्मतो मानुषादिति।।

आदि०-98/22

वसु देवताओं की इच्छा पूरी करने की मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो वसु जन्म लेगा उसे मैं मनुष्य योनि से मुक्ति दिला दूंगी।

एष पर्यायवासो मे वसूनां संनिधौ कृतः।
मत्प्रसूतिं विजानीहि गंगादत्तमिमं सुतम्।।

आदि०-98/24

यह बालक प्रत्येक वसु के अंश से उत्पन्न हुआ है। तुम इसे मेरा पुत्र समझना। मैंने तुम्हें इसे दिया है।

एतदाख्याय सा देवी तत्रैवान्तरधीयत।
आदाय च कुमारं तं जगामाथ यथेप्सितम्।।

आदि०-99/46

यह कहकर गंगा अन्तर्धान हो गई और अपने साथ नवजात शिशु को ले गई।

स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन् नदीम्।
भागीरथीमल्पजलां शान्तनुर्दृष्टवान् नृपः।।

आदि०-100/23

एक दिन राजा शान्तनु हरिण को बाण मारकर गंगा नदी के किनारे उसका पीछा कर रहे थे कि उन्होंने देखा गंगा में बहुत कम जल है।

ततो निमित्तमन्विच्छन् ददर्श स महामनाः।
कुमारं रूपसम्पन्नं बृहन्तं चारुदर्शनम्।।

आदि०-100/25

गंगा में जल कम होने का कारण जानने के लिये शान्तनु थोड़ी दूर गये कि उन्होंने रूप और यौवन सम्पन्न तेजस्वी कुमार को देखा।

दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम्।
कृत्स्नां गंगां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम्।।

आदि०-100/26

यह कुमार देवराज इन्द्र की भांति दिव्य अस्त्र चलाने का अभ्यास कर रहा था और इसने अपने पैने बाणों से गंगा की धारा रोक दी थी।

तदद्भुतं ततो दृष्ट्वा तत्र राजा स शान्तनुः।
शंकमानः सुतं गंगामब्रवीद् दर्शयेति ह।।

आदि०100/30

यह अद्भुत दृश्य देखकर राजा शान्तनु को सन्देह हुआ कि यह मेरा पुत्र है इसलिये उन्होंने गंगा से दर्शन देने की प्रार्थना की।

दर्शयामास तं गङ्गा बिभ्रती रूपमुत्तमम्।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणौ तं कुमारमलंकृतम्।।

आदि०-100/31

तब गंगा परम सुन्दर रूप धारण कर आयीं। उन्होंने दाहिने हाथ से उस कुमार को पकड़ा हुआ था। दिव्य आभूषणों से अलंकृत वह उनका पुत्र था।

गङ्गा : **गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम्।**
आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो।।

आदि०-100/34

राजन्! मैंने इसका पालन पोषण कर बड़ा किया है और भलीभांति पढ़ाया है। आप अपने पुत्र को घर ले जाइये।

वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः।
स कदाचिद् वनं यातो यमुनामभितो नदीम्।।

आदि०-100/45

राजा शान्तनु को अपने गुणसम्पन्न पुत्र के साथ रहते हुए चार वर्ष बीत गये। एक दिन वे यमुना नदी के पास वाले वन में गये।

महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद् गन्धमुत्तमम्।
तस्य प्रभवमन्विच्छन् विचचार समन्ततः।।

आदि०-100/46

जंगल में राजा को बहुत अच्छी गन्ध आती हुई जान पड़ी। वे उस गन्ध का पता लगाने के लिये वन में घूमने लगे।

स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम्।
तामपृच्छत् स दृष्ट्वैव कन्यामसितलोचनाम्।।

आदि०-100/47

वन में शान्तनु को दिव्य रूप वाली मल्लाह की कन्या दिखाई दी। कजरारी आंखों वाली उस कन्या से राजा ने पूछा।

कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि।
साब्रवीद् दाशकन्यास्मि धर्मार्थं वाहये तरिम्।।

आदि०-100/48

राजा ने पूछा तुम कौन हो? किसकी बेटी हो? क्या करती हो? कन्या बोली मैं मल्लाह की बेटी हूँ और धर्म का काम करने के लिये लोगों को नाव से नदी पार कराती हूँ।

समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शान्तनुः।
स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा।।

आदि०-100/50

मल्लाह की कन्या को राजा शान्तनु अपनी पत्नी बनाना चाहता था। राजा ने उसके पिता से अपने मन की बात बताई।

यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ।
सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः।।

आदि०-100/53

कन्या के पिता ने राजा से कहा, यदि तुम इसे अपनी पत्नी बनाना चाहते हो तो आप सत्यपरायण होकर मेरे साथ यह शर्त करो।

अस्यां जायेत् यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते।
त्वदूर्धमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव।।

आदि०-100/56

मल्लाह ने कहा इस कन्या से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राजा बनेगा। तुम्हारे बाद उसी का अभिषेक किया जायेगा, दूसरे का नहीं।

नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शान्तनुः।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत।।

आदि०-100/57

मल्लाह की यह बात सुनकर शान्तनु ने कामवासना से दुखी होने पर भी उसकी शर्त्त मानना ठीक नहीं समझा।

ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तनुं ध्यानमास्थितम्।
पुत्रो देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत्।।

आदि०-100/59

एक दिन शान्तनु दुखी मन से कुछ सोच रहे थे। यह देख गंगापुत्र देवव्रत अपने पिता के पास आये और उनसे पूछा।

व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यां हि तत्र वै।
एवमुक्तः स पुत्रेण शान्तनुः प्रत्यभाषत।।

आदि०-100/62

आपको कौन सा रोग लग गया है। इस रोग को जानकर मैं इसे दूर करना चाहता हूँ। पुत्र की बात सुनकर शान्तनु ने कहा।

कथंचित् तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः।।

आदि०-100/65

गंगापुत्र! यदि तुम पर कोई संकट आ गया तो हमारा कुल नष्ट हो जायेगा, यद्यपि तुम निस्संदेह मेरे लिये सौ पुत्रों से भी बढ़कर हो।

न चाप्यहं भूयो दारान् कर्तुमिहोत्सहे।
सन्तानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते।।

आदि०-100/66

मैं फिर विवाह नहीं करना चाहता किन्तु हमारे वंश का नाश न हो इसीलिए मैं विवाह करना चाहता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो।

सोऽस्मि संशयमापन्नस्त्वयि शान्ते कथं भवेत्।
इति ते कारणं तात दुःखस्योक्तमशेषतः।।

आदि०-100/71

मुझे यही चिन्ता सताती रहती है कि तुम्हारे शान्त हो जाने पर कुल परम्परा कैसे चलेगी। यही मेरे दुःख का कारण है।

ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा।
अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम्।।

आदि०-100/75

यह सुनकर देवव्रत बूढ़े क्षत्रियों के साथ मल्लाहों के राजा के पास गये और अपने पिता के लिये उनसे कन्या मांगी।

निषादराज दाश : कन्यापितृत्वात् किंचित् तु वक्ष्यामि त्वां नराधिप।
बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलम्।।

आदि०-100/82

हे राजन्! मैं कन्या के पिता की हैसियत से आपसे कुछ कहना चाहता हूँ कि इस सम्बन्ध में यही दोष है कि बलवान् के साथ शत्रुता हो जायेगी।

यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्यासुरस्यवा।
न स जातु चिरं जीवेत् त्वयि क्रुद्धे परंतप।।

आदि०-100/83

आपका जो भी शत्रु बन जायेगा चाहे वह गन्धर्व या असुर भी क्यों न हो आपके क्रुद्ध होने पर जीवित नहीं रहेगा।

भीष्म : इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतां वर।
नैव जातो न वा जात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत्।।

आदि०-100/86

सत्यपरायण व्यक्तियों में श्रेष्ठ निषादराज! आप मेरी यह सत्य प्रतिज्ञा सुनिये। ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला न तो कभी पैदा हुआ है और न ही कभी पैदा होगा।

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।।

आदि०-100/87

आप जो कहते हैं मैं वैसा ही करूँगा। इस कन्या के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही हमारा राजा बनेगा।

निषादराज दाश : नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र कश्चन।
तवापत्यं भवेद् यत् तु तत्र नः संशयो महान्।।

आदि०-100/92

हे वीर! मुझे आपकी इस सत्य प्रतिज्ञा के बारे में तनिक भी सन्देह नहीं है किन्तु आपका पुत्र शायद इस पर न चले। मुझे यही सन्देह है।

भीष्म : राज्यं तावत् पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्यविनिश्चयम्।।

आदि०-100/95

हे राजाओ! राज्य तो मैं छोड़ ही चुका हूँ और आज सन्तान के बारे में दृढ़ निश्चय कर रहा हूँ।

अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति।
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि।।

आदि०-100/96

निषादराज! आज से मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता रहूँगा। मेरे पुत्र न होने पर भी मुझे अक्षय लोकों की प्राप्ति होगी।

परित्यजाम्यहं राज्यं मैथुनं चापि सर्वशः।
ऊर्ध्वरेता भविष्यामि दाश सत्यं ब्रवीमि ते।।

आदि०-100/96 दाक्षिणात्य

दाश! मैं राज्य और मैथुन का पूरी तरह परित्याग करता हूँ। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि मैं जीवन भर ऊर्ध्वरेता बना रहूँगा।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत।।

आदि०-100/97

देवव्रत की यह प्रतिज्ञा सुनकर निषादराज रोमांचित हो उठा और उसने कहा कि मैं अपनी कन्या को आपके पिता के सुपुर्द करता हूँ।

ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवाः सर्षिगणास्तदा।
अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भीष्मोऽयमिति ब्रुवन्।।

आदि०-100/98

उसी समय अन्तरिक्ष से देवों, अप्सराओं और ऋषियों ने फूल बरसाये और आकाशवाणी हुई 'यह कुमार अब से भीष्म कहलायेगा।'

तच्छ्रुत्वा दुष्करं कर्म कृतं भीष्मेण शान्तनुः।
स्वच्छन्दमरणं तुष्टो ददौ तस्मै महात्मने।।

आदि०-100/102

देवव्रत की इस कठिन भीष्म प्रतिज्ञा की बात सुनकर प्रसन्न हुए राजा शान्तनु ने भीष्म को इच्छामृत्यु का यहं वरदान दिया।

न ते मृत्युः प्रभविता यावज्जीवितुमिच्छसि।
त्वत्तो ह्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्युः प्रभवितानघ।।

आदि०-100/103

हे निष्पाप कुमार! तुम जब तक इस संसार में जीना चाहोगे तब तक तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तुमसे आज्ञा लेकर ही मृत्यु अपना काम करेगी।

भीष्म : परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद् वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन।।

आदि०-103/15

मैं इन तीनों लोकों को भी छोड़ सकता हूँ, देवों का राज्य भी त्याग सकता हूँ अथवा इन दोनों से भी अधिक किसी भी वस्तु को छोड़ सकता हूँ। किन्तु सत्य को किसी भी परिस्थिति में नहीं छोड़ सकता।

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद् रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्।।

आदि०-103/16

चाहे पृथिवी अपनी गन्ध छोड़ दे, जल अपने रस को छोड़ दे, तेज अपना रूप छोड़ दे, और वायु अपना स्पर्श गुण छोड़ दे।

प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्।
त्यजैच्छब्दं तथाऽऽकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्।।

आदि०-100/17

चाहे सूर्य अपनी प्रभा को और धूमकेतु उष्णता को छोड़ दे, आकाश अपने गुण शब्द को छोड़ दे और चन्द्रमा अपनी शीलता छोड़ दे।

विक्रमं वृत्रहा जह्याद् धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन।।

आदि०-103/18

चाहे इन्द्र अपना पराक्रम छोड़ दें और धर्मराज अपने धर्म की उपेक्षा भी कर दे किन्तु मैं सत्य व्यवहार कभी नहीं छोड़ सकता।

सत्यवती : त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं परा गतिः।।

आदि०-104/5

तुम्हीं हमारे कुल के धर्म हो, तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं परम गति हो।

९
पाण्डव

मातुर्नियोगाद् धर्मात्मा गाङ्गेयस्य च धीमतः।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा।।

आदि०-1/94

त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च।।

आदि०-1/95

जब राजा विचित्रवीर्य सन्तान उत्पन्न किये बिना ही अकाल मृत्यु के ग्रास बन गये तब माता सत्यवती की और बुद्धिमान् भीष्म की आज्ञा से विचित्रवीर्य की दो पत्नियों अम्बिका और अम्बालिका और दासी से व्यास जी ने तीन पुत्र उत्पन्न किये–धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर। ये तीनों अग्नियों के समान तेजस्वी थे।

पाण्डुर्जित्वा बहून् देशान् बुद्ध्या विक्रमेण च।
अरण्ये मृगशीलो न्यवसन्मुनिभिः सह।।

आदि०-1/112

महाराज पाण्डु ने अपने बुद्धिबल और पराक्रम से अनेक देशों को जीत लिया। उन्हें शिकार का व्यसन था इसलिये वे वन में मुनियों के साथ रहने लगे।

मृगव्यवायनिधनात् कृच्छ्रां प्राप स आपदाम्।
जन्मप्रभृति पार्थानां तत्राचारविधिक्रमः।।

आदि०-1/113

एक दिन पाण्डु ने मृगरूपधारी मुनि को मैथुन करते हुए शिकार में मार दिया। इस मुनि ने पाण्डु को शाप दे दिया कि पत्नी से सहवास करने पर तुम्हारी भी मृत्यु

हो जायेगी। इस परिस्थिति में युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डवों के जन्म से लेकर सभी संस्कार वन में ही हुए और वहीं उन्हें धर्माचरण की शिक्षा दी गई।

मात्रोरभ्युपपत्तिश्च धर्मोपनिषदं प्रति।
धर्मस्य वायोः शक्रस्य देवयोश्च तथाशिवनोः।।

आदि०-1/114

पाण्डु की दोनों रानियों कुन्ती और माद्री ने कुल धर्म की रक्षा करने के लिये दुर्वासा ऋषि द्वारा प्राप्त विद्या के बल से पांच पुत्रों को जन्म दिया। कुन्ती ने धर्म, वायु और इन्द्र का आह्वान करके क्रमशः धर्मराज युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को जन्म दिया तथा माद्री ने अश्विनी कुमारों को बुलाकर नकुल और सहदेव को जन्म दिया।

ऋषिभिर्यत्तदाऽऽनीता धार्तराष्ट्रान् प्रति स्वयम्।
शिशवश्चाभिरूपाश्च जटिला ब्रह्मचारिणः।।

आदि०-1/116

पाण्डु की मृत्यु के बाद ऋषि उन सुन्दर जटाधारी ब्रह्मचारियों को हस्तिनापुर लेकर आये।

पुत्राश्च भ्रातरश्चेमे शिष्याश्च सुहृदश्च वः।
पाण्डवा एत इत्युक्त्वा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः।।

आदि०-1/117

ऋषियों ने कौरवों से कहा कि ये पाण्डव हैं। तुम्हारे भाई, पुत्र, शिष्य और मित्र हैं। यह कहकर ऋषि चले गये।

तेऽधीत्य निखिलान् वेदाञ्छस्त्राणि विविधानि च।
न्यवसन् पाण्डवास्तत्र पूजिता अकुतोभयाः।।

आदि०-1/124

पाण्डवों ने चारों वेद और अनेक शास्त्र पढ़े और नगरवासियों द्वारा सम्मानित हो वहाँ निर्भय होकर रहने लगे।

समवाये ततो राज्ञां कन्यां भर्तृस्वयम्वराम्।
प्राप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।।

आदि०-1/127

तब राजाओं के समूह में जाकर अर्जुन ने पति का स्वयंवर करने वाली कृष्णा को कठिन लक्ष्य भेद करके प्राप्त कर लिया।

स सर्वान् पार्थिवाञ् जित्वा सर्वांश्च महतो गणान्।
आजहारार्जुनो राज्ञो राजसूयं महाक्रतुम्।।

आदि०-1/129

अर्जुन ने सब राजाओं को और बड़े-बड़े गणराज्यों को जीतकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का मार्ग प्रशस्त किया।

सुनयनाद् वासुदेवस्य भीमार्जुन बलेन च।
घातयित्वा जरासन्धं चैद्यं च बलगर्वितम्।।

आदि०-1/130

वासुदेव कृष्ण की नीति से और भीम तथा अर्जुन के बल से जरासन्ध और शक्ति के मद में चूर चेदिराज शिशुपाल मारे गये।

समृद्धां तां तथा दृष्ट्वा पाण्डवानां तदा श्रियम्।
ईर्ष्यासमुत्थः सुमहांस्तस्य मन्युरजायत।।

आदि०-1/134

पाण्डवों की इस समृद्धि और सम्पत्ति को देखकर दुर्योधन के मन में ईर्ष्या की आग भड़कने लगी।

अन्वजानात् ततो द्यूतं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः।।

आदि०-1/138

दुर्योधन की इस दुर्गति को देखकर धृतराष्ट्र ने पुत्र स्नेह से दुर्योधन को पाण्डवों के साथ जुआ खेलने की आज्ञा दे दी।

10
गान्धारी

कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्ध्या तु प्रसमीक्ष्य सः।
ददौ तां धृतराष्ट्राय गान्धारीं धर्मचारिणीम्।।

आदि०–109/12

कौरवों के कुल, प्रसिद्धि और आचार आदि पर भलीभांति विचार करके राजा सुबल ने धर्मपरायणा गान्धारी की सगाई धृतराष्ट्र से कर दी।

गान्धारी त्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचाक्षुषम्।
आत्मानं दित्सितं चास्मै पित्रा मात्रा च भारत।।

आदि०–109/13

जब गान्धारी ने सुना कि उसके माता-पिता धृतराष्ट्र से उसका विवाह कर रहे हैं और धृतराष्ट्र अन्धे हैं।

ततः सा पट्टमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा।
बबन्ध नेत्रे स्वे राजन् पतिव्रतपरायणा।।

आदि०–109/14

तब गान्धारी ने रेशमी कपड़े की कई तह करके अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। राजन्! गान्धारी पतिव्रता नारी थी।

नाभ्यसूयां पतिमहमित्येव कृतनिश्चया। आदि०–109/15

गान्धारी ने निश्चय कर लिया कि मैं पति के दोष नहीं देखूंगी।

ततः पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्यां जनमेजय।
धृतराष्ट्रस्य वैश्यायामेकश्चापि शतात् परः।।

आदि०–114/1

धृतराष्ट्र ने गान्धारी से एक सौ पुत्र उत्पन्न किये तथा अपनी दूसरी पत्नी वैश्य कन्या से एक पुत्र, इस प्रकार धृतराष्ट्र के 101 पुत्र हुए।

महारथानां वीराणां कन्या चैका शताधिका।
युयुत्सुश्च महातेजा वैश्यापुत्रः प्रतापवान्।।

आदि०-114/44

इन एक सौ पुत्रों के अतिरिक्त गान्धारी ने एक कन्या को जन्म दिया। वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम युयुत्सु था। इस कन्या का नाम दुःशला था। जिसका विवाह सिन्ध देश के राजा जयद्रथ से हुआ। 101 पुत्रों में दुर्योधन, दुःशासन, युयुत्सु, दुःशल, विन्द और अनुविन्द मुख्य थे।

11
भीष्म की सलाह

भीष्म : यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मम।
क्षेमं च यदि कर्त्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम्।।

आदि०-202/19

.धृतराष्ट्र! यदि तुम्हें धर्म के अनुसार चलना है, यदि मेरा प्रिय काम करना है और यदि संसार का भला करना है तो पाण्डवों को आधा राज्य दे दो।

द्रोण : ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः।।

आदि०-203/2

तात! मेरी भी वही सम्मति है जो भीष्म की है। कुन्ती के पुत्रों को आधा राज्य बांट देना चाहिये यही परम्परा से चला आने वाला धर्म है।

कर्ण : योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनन्तरौ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः किमद्भुततरं ततः।।

आदि०-203/13

महाराज! आप भीष्म और द्रोणाचार्य को सदा सम्मान और पैसा देते रहते हैं तथा इनसे सभी कामों में सलाह भी लेते हैं फिर भी यदि ये आपके भले की सलाह न दें तो इससे बढ़कर आश्चर्य की बात क्या होगी?

विदुर : इदं निर्दिष्टमयशः पुरोचनकृतं महत्।
तेषामनुग्रहेणाद्य राजन् प्रक्षालयात्मनः।।

आदि०-204/23

राजन्! पुरोचन के द्वारा लाक्षागृह में जो कुछ कराया गया था उससे आप का अपयश हुआ है। अब आप पाण्डवों पर कृपा करके इसे धो डालिये।

तेषामनुग्रहश्चायं सर्वेषां चैव नः कुले।
जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्धनम्।।

आदि०–204/24

पाण्डवों पर की गई यह कृपा हमारे कुल के सभी लोगों के जीवन को बचाने वाली, परम हितकारी और क्षत्रियों का गौरव बढ़ाने वाली होगी।

बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशाम्पते।
यतः कृष्णस्ततः सर्वे यत्रः कृष्णस्ततो जयः।।

आदि०–204/26

राजन्! यदुवंशियों की संख्या बहुत अधिक है और वे बलवान भी हैं। जिस ओर कृष्ण रहेंगे उसी ओर ये लोग भी रहेंगे और कृष्ण जिसके पक्ष में होंगे वही जीतेगा।

यच्च साम्नैव शक्येत कार्यं साधयितुं नृप।
को दैवशप्तस्तत् कार्यं विग्रहेण समाचरेत्।।

आदि०–204/27

राजन्! जो काम शान्तिपूर्वक पूरा हो सकता है उसे कौन भाग्य का मारा मनुष्य युद्ध से पूरा करना चाहेगा?

दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः।
अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः।।

आदि०–204/29

राजन्! दुर्योधन, कर्ण और सुबल का पुत्र शकुनि ये तीनों अधर्म के काम करने वाले, खोटी बुद्धि वाले और मूर्ख हैं अतः इनकी सलाह के अनुसार काम नहीं करना चाहिये।

उक्तमेतत् पुरा राजन् मया गुणवतस्तव।
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं वै विनङ्क्ष्यति।।

आदि०–204/30

राजन्! आप गुणवान् हैं। आपसे मैं पहले ही कह चुका हूँ कि दुर्योधन की गलती से यह समस्त प्रजा निश्चय ही नष्ट हो जायेगी।

12
विदुर

विदुर : महाराज विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि भारत।
मुमूर्षोरौषधमिव न रोचेतापि ते श्रुतम्।।

सभा०-62/2

महाराज! जैसे मरते हुए व्यक्ति को दवा अच्छी नहीं लगती वैसे ही आपको मेरी बात अच्छी नहीं लगेगी, फिर भी इसे सुनिये और इस पर विचार कीजिये।

दुर्योधनो भरतानां कुलघ्नः सोऽयं युक्तो भवतां कालहेतुः।।

सभा०-62/3

दुर्योधन भरतवंश का नाश करने वाला है। यह निश्चय ही आपका विनाश करेगा।

गृहे वसन्तं गोमायुं त्वं वै मोहान्नबुध्यसे।
दुर्योधनस्य रूपेण शृणु काव्यां गिरं मम।।

सभा०-62/4

दुर्योधन के रूप में आपके घर में गीदड़ रह रहा है किन्तु मोह के कारण आप यह बात नहीं समझते। आप शुक्राचार्य की नीति भरी बातें सुनिये।

काकेनेमांश्चित्रबर्हान् शार्दूलान् क्रोष्टुकेन च।
क्रीणीष्व पाण्डवान् राजन् मा मज्जीः शोकसागरे।।

सभा०-62/10

राजन्! इस कौवे को देकर आप सुन्दर पंखों वाले पाण्डवों को खरीद लीजिये। इस गीदड़ के बदले शेरों को अपनाइये और शोक के समुद्र में मत डूबिये।

जातं जातं पाण्डवेभ्यः पुष्पमादत्स्व भारत।
मालाकार इवारामे स्नेहं कुर्वन् पुनः पुनः।।

सभा०-62/16

जैसे माली बाग में समय-समय पर पेड़ों को सींचकर समय-समय पर उनसे फूल लेता रहता है वैसे ही आप भी पाण्डवों से स्नेह करके उनसे धन-धान्य लेते रहिये।

वृक्षानङ्गारकारीव मैनान् धाक्षीः समूलकान्।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम्।।

सभा०-62/16

जैसे कोयला बनाने वाला पेड़ों को जड़ सहित जला देता है वैसे ही आप भी पाण्डवों को जड़ सहित नष्ट करने का प्रयत्न मत कीजिये और पुत्रों, मन्त्रियों तथा सेना सहित यमलोक मत जाइये।

अतःप्रियं चेदनुकाङ्क्षसे त्वं सर्वेषु कार्येषु हिताहितेषु।
स्त्रियश्च राजञ्जडपङ्गुकांश्च पृच्छ त्वं वै तादृशांश्चैव सर्वान्।।

सभा०-64/15

राजन्! यदि तुम भले-बुरे सभी कार्यों में चिकनी-चुपड़ी बातें सुनना चाहते हो तो स्त्रियों, मूर्खों, लंगड़े-लूलों और इसी तरह के अन्य सभी लोगों से सलाह लिया करो।

13

महाभारत युद्ध

कौरव और पाण्डव दोनों भरतवंशी थे, इसलिये वे 'भारत' कहलाये। भरतवंशियों के संग्राम का नाम भी 'भारत' हुआ। पाणिनी के सूत्र 'संग्रामे प्रयोजन योद्धृभ्यः' (4/2/55) के अनुसार योद्धाओं के नाम से युद्ध का नाम रखा जाता था। अतः भरतों का युद्ध 'भारत' कहलाया। महाभारत में एक स्थान पर 'महाभारत युद्ध' (अश्वमेध-81/8) शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है बड़ा भारत युद्ध अर्थात् भरतों के बीच जो बड़ा संग्राम हुआ वह 'महाभारत युद्ध' कहलाया। आदि पर्व में भी महाभारताख्यानम् शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है 'भरतों के महान संग्राम की कथा।' महाभारताख्यान का ही संक्षिप्त रूप महाभारत है।

महाभारत युद्ध

अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्।
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम्।।

आदि०-2/30

अस्त्रशस्त्रों के सर्वश्रेष्ठ जानकार भीष्म ने दस दिन तक युद्ध किया। द्रोणाचार्य ने कौरवों की सेना की पांच दिन तक रक्षा की।

अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः।
शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमतःपरम्।।

आदि०-2/31

शत्रु सेना का संहार करने वाले कर्ण ने दो दिन तक युद्ध किया और शल्य ने आधे दिन तक। फिर दुर्योधन और भीम का गदा युद्ध हुआ।

तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्य गौतमाः।
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठरं बलम्।।

आदि०–2/32

युद्ध का अट्ठारहवां दिन बीत जाने पर अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य ने रात में निश्शंक सोती हुई युधिष्ठिर की सेना को मार डाला।

14
अक्षौहिणी सेना

एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते।।

आदि०-2/19

एक रथ, एक हाथी, पांच पैदल सैनिक और तीन घोड़े इन्हें मिलाकर 'पत्ति' (सेना की सबसे छोटी टुकड़ी) बनती है।

पत्तिं तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः।
त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते।।

आदि०-2/20

तीन 'पत्तियों' से 'सेनामुख' बनता है और तीन सेनामुखों से एक 'गुल्म' बनता है।

त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः।
स्मृतास्तिस्त्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः।।

आदि०-2/21

तीन गुल्मों से 'गण' बनता है और तीन गणों से 'वाहिनी'। तीन वाहिनी मिलकर 'पृतना' कहलाती हैं।

चमूस्तु पृतनास्तिस्त्रस्तिस्त्रश्चम्वस्त्वनीकिनी।
अनीकिनां दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः।।

आदि०-2/22

तीन पृतना से एक 'चमू' बनती है, तीन चमू से एक 'अनीकिनि' और दस अनीकिनी से एक अक्षौहिणी। इस प्रकार एक अक्षौहिणी सेना में 21870 हाथी,

21870 रथ, 65610 घोड़े, 109350 पैदल सैनिक तथा 109350 हाथीवान और घुड़सवार होते थे। इनके अतिरिक्त हाथियों पर बैठकर युद्ध करने वाले 21870 योद्धा और होते थे।

15

धृतराष्ट्र का पश्चात्ताप

आदि पर्व के "यदाश्रौषं... तदा नाशंसे विजयाय संजय"

60 से अधिक ये श्लोक भाषा, छन्द, शब्द योजना एवं संक्षेप में कथा कहने आदि की विशेषताओं के कारण वेद व्यास रचित मूल स्तर के मालूम होते हैं। ये श्लोक सबसे प्राचीन हैं। इनमें भारत युद्ध और कुरु-पाण्डवों के चरित की पूरी रूपरेखा आ गई है। ये श्लोक ही महाभारत का असली ढांचा रहा होगा। जिसके ऊपर वैदिक और लौकिक उपाख्यानों, गाथाओं, अनेक धार्मिक विश्वासों, नीतिपरक और धर्मपरक संवादों की विसृत छाजन छा दी गई है। इसके परिणामस्वरूप मूलरूप में वीर गाथा काव्य ने राष्ट्रीय महाकाव्य और धार्मिक विश्वकोष का रूप ले लिया।

जयत्सु पाण्डुपुत्रेषु श्रुत्वा सुमहदप्रियम्।
दुर्योधनमतं ज्ञात्वा कर्णस्य शकुनेस्तथा।।

आदि०-1/141

जब युद्ध में पाण्डवों की जीत होती गई, तब ऐसी अत्यन्त अप्रिय बात सुनकर तथा दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के विचार जानकर,

धृतराष्ट्रश्चिरं ध्यात्वा संजयं वाक्यमब्रवीत्।
शृणु संजय सर्वं मे न चासूयितुमर्हसि।।

आदि०-1/142

धृतराष्ट्र बहुत देर तक सोचते रहे। फिर वे संजय से बोले, संजय मेरी सब बातें सुनो फिर तुम मुझे इस विनाश के लिये दोष नहीं दे सकोगे।

श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान् प्राज्ञ सम्मतः।
न विग्रहे मम मतिर्न च प्रीये कुलक्षये।।

आदि०-1/143

संजय! तुम विद्वान् बुद्धिमान् हो और पण्डित भी तुम्हारा आदर करते हैं। मेरी सम्मति युद्ध के लिये नहीं थी और न मुझे अपने कुल का नाश अच्छा लग रहा है।

न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा।
वृद्धं मामभ्यसूयन्ति पुत्रा मन्युपरायणाः।।

आदि०-1/144

मैं अपने और पाण्डु के पुत्रों में भी कोई भेद नहीं करता था। मेरे उद्दण्ड पुत्र मुझसे डांट-डपट करते रहते थे।

अहं त्वचक्षुः कार्पण्यात् पुत्रप्रीत्या सहामि तत्।
मुह्यन्तं चानुमुह्यमि दुर्योधनमचेतनम्।।

आदि०-1/145

मैं कुछ तो अन्धा होने के कारण दीनता से और कुछ पुत्रों से लगाव होने के कारण सब कुछ सह लेता था और उस मन्दबुद्धि दुर्योधन की तरह मोहजाल में फंस जाता था।

श्रुत्वा तु मम वाक्यानि बुद्धि युक्तानि तत्त्वतः।
ततो ज्ञास्यसि मां सौते प्रज्ञाचक्षुषमित्युत।।

आदि०-1/149

हे सूतनन्दन! मेरी इस बुद्धि युक्त बात को सुनकर तुम जान लोगे कि मैं कितना प्रज्ञाचक्षु हूँ।

यदाश्रौषं धनुरायम्य चित्रं विद्धं लक्ष्यं पातितं वै पृथिव्याम्।
कृष्णां हृतां प्रेक्षतां सर्वराज्ञां तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/150

जब मैंने सुना कि अर्जुन ने धनुष पर बाण चढ़ाकर अद्भुत लक्ष्य को भेदकर उसे पृथिवी पर गिरा दिया और सब राजाओं के देखते-देखते ही अर्जुन ने द्रौपदी को जीत लिया। तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्वारकायां सुभद्रां प्रसह्योढां माधवीमर्जुनेन।
इन्द्रप्रस्थं वृष्णिवरौ च यातौ तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/151

जब मैंने सुना कि द्वारका में अर्जुन ने माधव की बहिन सुभद्रा का बलपूर्वक

हरण कर लिया है और युद्ध करने की अपेक्षा श्रीकृष्ण और बलराम दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थ पहुँच गये, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं देवराजं प्रविष्टं शरैर्दिव्यैर्वारितं चार्जुनेन।
अग्निं तथा तर्पितं खाण्डवे च तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-11/152

जब मैंने सुना कि देवराज इन्द्र की मूसलाधार वर्षा को अर्जुन ने अपने शक्तिशाली बाणों से रोक दिया और खाण्डव वन में अग्नि की भूख बुझा दी, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं जातुषाद् वेश्मनस्तान् मुक्तान् पार्थान् पंच कुन्त्या समेतान्।
युक्तं चैषां विदुरं स्वार्थसिद्धौ तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/153

जब मैंने सुना कि लाक्षागृह से पांचों पाण्डव अपनी माता कुन्ती सहित बच निकले हैं और विदुर उनका स्वार्थसिद्ध करने में लगे हुए हैं तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं मागधानां वरिष्ठं जरासन्धं क्षत्रमध्ये ज्वलन्तम्।
दोर्भ्यां हतं भीमसेनेन गत्वा तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/155

जब मैंने सुना कि मगधशिरोमणि और क्षत्रियों के जाज्वल्यमान रत्न जरासन्ध को भीम ने उसकी राजधानी में जाकर अपने हाथों से ही चीर दिया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं दिग्विजये पाण्डुपुत्रैर्वशीकृतान् भूमिपालान् प्रसह्य।
महाक्रतुं राजसूयं कृतं च तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/156

जब मैंने सुना कि पाण्डवों ने बलपूर्वक बड़े बड़े राजाओं को जीतकर राजसूय यज्ञ किया है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्रौपदीमश्रुकण्ठीं सभां नीतां दुःखितामेकवस्त्राम्।
रजस्वलां नाथवतीमनाथवत् तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-157

जब मैंने सुना कि आंसुओं से रुंधे हुए कण्ठ वाली, एक वस्त्र से शरीर ढके

हुए, वीर पतियों के रहते हुए भी दुखिया द्रौपदी को रजस्वलावस्था में ही अनाथ की भांति मेरे पुत्र सभा में खींच कर ले आये, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं हृतराज्यं युधिष्ठिरं पराजितं सौबलेनाक्षवत्याम्।
अन्वागतं भ्रातृभिरप्रमेयैस्तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/159

जब मैंने सुना कि शकुनि ने जुए में राज्य जीतकर युधिष्ठिर को हरा दिया, फिर भी उसके चारों अद्वितीय भाई उसके पीछे चल पड़े और युधिष्ठिर से नाराज नहीं हुए तब मुझे विजय की आशा नहीं रही संजय।

यदाश्रौषं विविधास्तत्र चेष्टा धर्मात्मनां प्रस्थितानां वनाय।
ज्येष्ठप्रीत्या क्लिश्यतां पाण्डवानां तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/160

जब मैंने सुना कि वन जाते हुए दुखी पाण्डव अपने बड़े भाई की प्रसन्नता के लिये धर्म का पालन करते रहे, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं स्नातकानां सहस्रैरन्वागतं धर्मराजं वनस्थम्।
भिक्षाभुजां ब्राह्मणानां महात्मनां तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/161

जब मैंने सुना कि हज़ारों स्नातक और भिक्षा से भोजन करने वाले महात्मा ब्राह्मण वन में युधिष्ठिर से मिलने जा पहुंचे, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही संजय।

यदाश्रौषमर्जुनं देवदेवं किरातरूपं त्र्यम्बकं तोष्य युद्धे।
अवाप्तवन्तं पाशुपतं महास्त्रं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/162

जब मैंने सुना कि अर्जुन ने किरातरूपधारी देवाधिदेव त्र्यम्बक शिव को प्रसन्न कर पाशुपत महास्त्र प्राप्त कर लिया है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं त्रिदिवस्थं धनञ्जयं शक्रात् साक्षाद् दिव्यमस्त्रं यथावत्।
अधीयानं शंसितं सत्यसन्धं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/163

जब मैंने सुना कि सत्य पर आरूढ़ धनञ्जय अर्जुन ने स्वर्ग में जाकर साक्षात् इन्द्र से दिव्य अस्त्रों का भलीभांति अध्ययन किया है तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं वैश्रवेण सार्धं समागतं भीममन्यांश्च पार्थान्।
तस्मिन्देशे मानुषाणामगम्ये तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/166

जब मैंने सुना कि भीम और अन्य कुन्ती पुत्र मनुष्यों से अगम्य प्रदेश में जाकर कुबेर से मिले, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं घोषयात्रागतानां बन्धं गन्धर्वैर्मोक्षणं चार्जुनेन।
स्वेषां सुतानां कर्णबुद्धौ रतानां तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/167

जब मैंने सुना कि कर्ण की सलाह मानकर मेरे पुत्र घोष यात्रा में गये और वहाँ पाण्डवों ने उन्हें गन्धवों के बन्धन से छुड़ाया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं यक्षरूपेण धर्मं समागतं धर्मराजेन सूत।
प्रश्नान् कांश्चिद् विब्रुवाणं च सम्यक् तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/168

जब मैंने सुना कि स्वयं धर्म यक्ष का रूप धर कर युधिष्ठिर से मिले और उन्होंने यक्ष के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दे दिया तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संयज।

यदाश्रौषं न विदुर्मामकास्तान् प्रच्छन्नरूपान् वसतः पाण्डवेयान्।
विराटराष्ट्रे सह कृष्णया च तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/169

जब मैंने सुना कि विराट् की राजधानी में द्रौपदी के साथ गुप्त रूप से रहते हुए पाण्डवों का पता मेरे पुत्र नहीं लगा सके तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं सत्कृतां मत्स्यराज्ञा सुतां दत्तामुत्तरामर्जुनाय।
तां चार्जुनः प्रत्यगृह्णात् सुतार्थे तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/171

जब मैंने सुना कि मत्स्यराज विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा, अर्जुन को सत्कार के साथ अर्पित कर दी परन्तु अर्जुन ने उत्तरा को अपने लिये स्वीकार न करके पुत्र के लिये स्वीकार कर लिया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं निर्जितस्याधनस्य प्रव्राजितस्य स्वजनात् प्रच्युतस्य।
अक्षौहिणीः सप्त युधिष्ठिरस्य तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/172

जब मैंने सुना कि सब तरह से हारे थके, वन में गये हुए, सगे सम्बन्धियों से त्यागे हुए निर्धन युधिष्ठिर के पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गई तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं माधवं वासुदेवं सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टम्।
यस्येमां गां विक्रमेकमाहुस्तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/173

जब मैंने सुना कि माधव वासुदेव, जिन्होंने वामनावतार में सारी पृथ्वी एक डग में ही माप ली थी, सब प्रकार से पाण्डवों के साथ हैं तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं नरनारायणौ तौ कृष्णार्जुनौ वदतो नारदस्य।
अहं द्रष्टा ब्रह्मलोके च सम्यक् तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/174

जब मैंने नारद से सुना कि नर-नारायण के रूप में अर्जुन और कृष्ण को वे सदा ब्रह्मलोक में देखते हैं तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं लोकहिताय कृष्णं शमार्थिनमुपयातं कुरूणाम्।
शमं कुर्वाणमकृतार्थं च यातं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/175

जब मैंने सुना कि श्रीकृष्ण लोक कल्याण की कामना से सन्धि कराने के लिये स्वयं कौरवों के पास आये और वे कौरव-पाण्डवों के बीच सन्धि नहीं करा सके, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं कर्णदुर्योधनाभ्यां बुद्धिं कृतां निग्रहे केशवस्य।
तं चात्मानं बहुधा दर्शयानं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/176

जब मैंने सुना कि दुर्योधन और कर्ण ने कृष्ण को पकड़ने का प्रयत्न किया और

कृष्ण ने उन्हें अपना विराट् रूप दिखलाया तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं वासुदेवे प्रयाते रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठमानाम्।
आर्तां पृथां सान्त्वितां केशवेन तदा नाशंसे विजयायसंजय।।

आदि०–1/177

जब मैंने सुना कि कृष्ण के प्रस्थान करते समय उनके रथ के आगे अकेली खड़ी हुई दुखी कुन्ती को केशव ने धैर्य बंधाया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं मन्त्रिणं वासुदेवं तथा भीष्मं शान्तनवं च तेषाम्।
भारद्वाजं चाशिषोऽनुब्रुवाणं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/178

जब मैंने सुना कि कृष्ण पाण्डवों के मंत्री हैं और शान्तनु के पुत्र भीष्म तथा भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न द्रोण दोनों ही उन्हें आशीर्वाद देते हैं, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं कर्ण उवाच भीष्मं नाहं योत्स्ये युध्यमाने त्वयीति।
हित्वा सेनामपचक्राम चापि तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/179

जब मैंने सुना कि कर्ण ने भीष्म से यह कह दिया है कि आपके युद्ध करने पर मैं युद्ध में सम्मिलित नहीं होऊंगा और वह सेना को छोड़कर चला गया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं वासुदेवार्जुनौ तौ तथा धनुर्गाण्डीवमप्रमेयम्।
त्रीण्युग्रवीर्याणि समागतानि तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/180

जब मैंने सुना कि कृष्ण, अर्जुन और अनुपम गाण्डीव धनुष, ये तीनों उग्र शक्तियां एक साथ जुट गई हैं, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही संजय।

यदाश्रौषं कश्मलेनाभिपन्ने रथोपस्थे सीदमानेऽर्जुने वै।
कृष्णं लोकान् दर्शयानं शरीरे तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/181

जब मैंने सुना कि विषाद से भरकर रथ के पिछले भाग में बैठे हुए अर्जुन को कृष्ण ने अपने शरीर में विराट् रूप दिखाया तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं भीष्ममित्रकर्शनं निघ्नन्तमाजावयुतं रथानाम्।
नैषां कश्चिद् वध्यते ख्यातरूपस्तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/182

जब मैंने सुना कि शत्रुघाती भीष्म युद्ध में हज़ारों रथियों का संहार कर रहे हैं किन्तु पाण्डवों में से कोई प्रसिद्ध योद्धा नहीं मरता, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं भीष्ममत्यन्तशूरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम्।
शिखण्डिनं पुरतः स्थापयित्वा तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/184

जब मैंने सुना कि अर्जुन ने शिखण्डी की ओट लेकर अत्यधिक वीर, युद्धों में अजेय भीष्म को मार दिया है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं शरतल्पे शयानं वृद्धं वीरं सादितं चित्रपुंखैः।
भीष्मं कृत्वा सोमकानल्पशेषांस्तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/185

जब मैंने सुना कि अनेक सोमकवंशी क्षत्रियों को मारकर के बूढ़े वीर भीष्म भी स्वयं शर-शय्या पर पड़ गये और बाणों के रंगबिरंगे पंखों से घिर गये, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं शान्तनवे शयाने पानीयार्थे चोदितेनार्जुनेन।
भूमिं भित्त्वा तर्पितं तत्र भीष्मं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/186

जब मैंने सुना कि भीष्म के पानी मांगने पर अर्जुन ने बाण से पृथिवी को भेद कर भीष्म की प्यास बुझा दी, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदा वायुश्चन्द्रसूर्यौ च युक्तौ कौन्तेयानामनुलोमा जयाय।
नित्यं चास्माञ् श्वापदा भीषयन्ति तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/187

जब मैंने सुना कि वायु अनुकूल बहकर और चन्द्र तथा सूर्य लाभ स्थान में संयुक्त होकर पाण्डवों की विजय की सूचना दे रहे हैं और हमारी छावनी में सियार रोते हैं, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदा द्रोणो विविधानस्त्रमार्गान् निदर्शयन् समरे चित्रयोधी।
न पाण्डवाञ् श्रेष्ठतरान् निहन्ति तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/188

जब मैंने सुना कि द्रोणाचार्य युद्ध में विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रदर्शन करके भी किसी श्रेष्ठ पाण्डव को नहीं मारते हैं तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं चास्मदीयान् महारथान् व्यवस्थितानर्जुनस्यान्तकाय।
संशप्तकान् निहतानर्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/189

जब मैंने सुना कि अर्जुन को मारने के लिये डटे हुए हमारे महारथी संशप्तकों को अर्जुन ने मार डाला, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं व्यूहमभेद्यमन्यै र्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम्।
भित्वा सौभद्रं वीरमेकं प्रविष्टं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/190

जब मैंने सुना कि शस्त्रधारी द्रोणाचार्य से सुरक्षित तथा औरों से अभेद्य चक्रव्यूह को भेदकर सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु अकेला ही उसमें घुस गया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाभिमन्युं परिवार्य बालं सर्वे हत्वा हृष्टरूपा बभूवुः।
महारथाः पार्थमशक्नुवन्तस्तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/191

जब मैंने सुना कि अर्जुन के सामने अशक्त रहने वाले महारथी बालक अभिमन्यु को घेर कर और उसे मारकर प्रसन्न होने लगे तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषमभिमन्युं निहत्य हर्षान्मूढान् क्रोशतो धार्तराष्ट्रान्।
क्रोधादुक्तं सैन्धवे चार्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/192

जब मैंने सुना कि अभिमन्यु को मारकर खुशी से मतवाले कौरवों के साथी चिल्लाने लगे हैं और क्रोध में भरकर अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ को मार डालने की प्रतिज्ञा कर ली है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं सैन्धवार्थे प्रतिज्ञां प्रतिज्ञातां तद्वधायार्जुनेन।
सत्यां तीर्णां शत्रुमध्ये च तेन तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/193

जब मैंने सुना कि अर्जुन ने जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा शत्रुओं के बीच में ही पूरी कर दी, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं श्रान्तहये धनञ्जयै मुक्त्वा हयान् पाययित्वोपवृत्तान्।
पुनर्युक्त्वा वासुदेवं प्रयातं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/194

जब मैंने सुना कि अर्जुन के रथ के घोड़ों के थक जाने पर कृष्ण ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें खोलकर जल पिलाया और खिला-पिलाकर उन्हें फिर रथ में जोत दिया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं वाहनेष्वक्षमेषु रथोपस्थे तिष्ठता पाण्डवेन।
सर्वान् योधान् वारितानर्जुनेन तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/195

जब मैंने सुना कि रथ के घोड़ों के थक जाने पर रथ के पिछले भाग में बैठे अर्जुन ने सभी योद्धाओं का सामना किया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं नागबलैः सुदुःसहं द्रोणानीकं युयुधानं प्रमथ्य।
यातं वार्ष्णेयं यत्र तौ कृष्णपार्थौ तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/196

जब मैंने सुना कि द्रोणाचार्य की अजेय हस्ति सेना को परास्त करके वृष्णिकुलभूषण सात्यकि; कृष्ण और अर्जुन के पास पहुँच गये तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं कर्णमासाद्य मुक्तं वधाद् भीमं कुत्सयित्वा वचोभिः।
धनुष्कोट्याऽऽतुद्य कर्णेन वीरं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/197

जब मैंने सुना कि कर्ण ने भीम को पकड़कर भी कुछ कह सुनकर और धनुष की नोंक चुभाकर छोड़ दिया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदा द्रोणः कृतवर्मा कृपश्च कर्णो द्रौणिर्मद्रराजश्च शूरः।
अमर्षयन् सैन्धवं बध्यमानं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/198

जब मैंने सुना कि द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और शल्य जैसे शूरवीरों ने भी जयद्रथ के वध को चुपचाप सह लिया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं देवराजेन दत्तां दिव्यां शक्तिं व्यंसितां माधवेन।
घटोत्कचे राक्षसे घोररूपे तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/199

जब मैंने सुना कि देवराज इन्द्र की दी हुई दैवी शक्ति को कृष्ण ने कर्ण से घटोत्कच पर चलवा कर कर्ण को धोखा दे दिया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं कर्णघटोत्कचाभ्यां युद्धे मुक्तां सूतपुत्रेण शक्तिम्।
यया वध्यः समरे सव्यसाची तदा नाशंसे विजयाय संजयः।।

आदि०-1/200

जब मैंने सुना कि जिस शक्ति से युद्ध में अर्जुन का वध किया जाना था उसे कर्ण और घटोत्कच के युद्ध में कर्ण ने घटोत्कच पर चला दिया तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्रोणमाचार्यमेकं धृष्टद्युम्नेनाभ्यतिक्रम्य धर्मम्।
रथोपस्थे प्रायगतं विशस्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/201

जब मैंने सुना कि धृष्टद्युम्न ने धर्म का उल्लंघन करके पुत्र की मृत्यु से दुखी आमरण अनशन का निश्चय करके रथ में निशशस्त्र बैठे हुए द्रोणाचार्य को मार डाला, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्रौणिना द्वैरथस्थं माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये।
समं युद्धे मण्डलेभ्यश्चरन्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/202

जब मैंने सुना कि द्वैरथ युद्ध में सब लोगों के सामने माद्री पुत्र नकुल अकेले ही अश्वत्थामा के साथ घमासान युद्ध करने लगा है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदा द्रोणे निहते द्रोणपुत्रो नारायणं दिव्यमस्त्रं विकुर्वन्।
नैषामन्तं गतवान् पाण्डवानां तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/203

द्रोणाचार्य के मारे जाने पर अश्वत्थामा जब दिव्य नारायणास्त्र चला कर भी पाण्डवों को नहीं मार सका तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं भीमसेनेन पीतं रक्तं भ्रातुर्युधि दुःशासनस्य।
निवारितं नान्यतमेन भीमं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/204

जब मैंने सुना कि भीम ने युद्धभूमि में अपने भाई दुःशासन का रक्त पिया और उसे किसी ने नहीं रोका तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं कर्णमत्यन्तशूरं हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम्।
तस्मिन् भ्रातृणां विग्रहे देवगुह्ये तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/205

जब मैंने सुना कि अत्यन्त शूरवीर कर्ण को अर्जुन ने भाई–भाई के युद्ध में मार डाला, जो देवताओं की गुप्त प्रेरणा से हुआ था, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रं च शूरं दुःशासनं कृतवर्माणमुग्रम्।
युधिष्ठिरं धर्मराजं जयन्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/206

जब मैंने सुना कि धर्मराज युधिष्ठिर; अश्वत्थामा, दुःशासन और कृतवर्मा को जीत रहे हैं, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं निहतं मद्रराजं रणे शूरं धर्मराजेन सूत।
सदा संग्रामे स्पर्धते यस्तु कृष्णं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/207

जब मैंने सुना कि धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध में वीर मद्रराज शल्य को मार

डाला जो युद्ध में घोड़े हांकने में श्रीकृष्ण की होड़ करने के लिये सदा उतावला रहता था, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं कलहद्यूतमूलं मायाबलं सौबलं पाण्डवेन।
हतं संग्रामे सहदेवेन पापं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/208

जब मैंने सुना कि कलहकारी जुए की जड़, छलछन्दी, और पापी शकुनि को सहदेव ने मार डाला, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं श्रान्तमेकं शयानं ह्रदं गत्वा स्तम्भयित्वा तदम्भः।
दुर्योधनं विरथं भग्नशक्तिं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/209

जब मैंने सुना कि रथविहीन, शक्तिहीन और थका-मांदा दुर्योधन तालाब का पानी स्तम्भित कर उसमें जा सोया, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं पाण्डवांस्तिष्ठमानान् गत्वा ह्रदे वासुदेवेन सार्धम्।
अमर्षणं धर्षयतः सुतं मे तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/210

जब मैंने सुना कि कृष्ण के साथ पाण्डव तालाब में छिपे हुए असहनशील दुर्योधन को डांटने लगे, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं विविधांश्चित्रमार्गान् गदायुद्धे मण्डलश्चरन्तम्।
मिथ्याहतं वासुदेवस्य बुद्ध्या तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/211

जब मैंने सुना कि गदायुद्ध में तरह-तरह के पैंतरे बदल कर लड़ते हुए मेरे पुत्र को भीम ने कृष्ण की बताई चाल से मार डाला है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रादिभिस्तैर्हतान् पंचालान् द्रौपदेयांश्च सुप्तान्।
कृतं बीभत्समयशस्यं च कर्म तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०-1/212

जब मैंने सुना कि अश्वत्थामा आदि ने सोते हुए पंचाल के राजाओं को और द्रौपदी के पुत्रों को मार कर अत्यन्त बीभत्स और यश को मिट्टी में मिलाने वाला काम किया है, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं भीमसेनानुयातेनाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम्।
क्रुद्धेनैषीकमवधीद् येन गर्भं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/213

जब मैंने सुना कि भीम के पीछा करने पर क्रुद्ध अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिरस् अस्त्र को सींक में रखकर चलाया और गर्भस्थ पाण्डवों के वंशधर को मारने का यत्न किया तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं ब्रह्मशिरोऽर्जुनेन स्वस्तीत्युक्त्वास्त्रमस्त्रेण शान्तम्।
अश्वत्थाम्ना मणिरत्नं च दत्तं तदा नाशंसे विजयाय संजय।।

आदि०–1/214

जब मैंने सुना कि अर्जुन ने भी अपना ब्रह्मशिरस् अस्त्र चलाकर और 'स्वस्ति' 'स्वस्ति' कहकर अश्वत्थामा के अस्त्र को काट दिया तथा अश्वत्थामा को अपने सिर की मणि देनी पड़ी, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रेण गर्भे वैराट्या वै पात्यमाने महास्त्रैः।
द्वैपायनः केशवो द्रोणपुत्रं परस्परेणाभिशापैः शशाप।।

आदि०–1/215

जब मैंने सुना कि अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित पर भी अपना महास्त्र चला दिया और फिर भी व्यास तथा कृष्ण ने अश्वत्थामा को शाप देकर गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा की, तब मुझे विजय की आशा नहीं रही, संजय।

शोच्या गान्धारी पुत्रपौत्रैर्विहीना तथा बन्धुभिः पितृभिर्भ्रातृभिश्च।
कृतं कार्यं दुष्करं पाण्डवेयैः प्राप्तं राज्यमसपत्नं पुनस्तैः।।

आदि०–1/216

युद्ध के परिणामस्वरूप गान्धारी की दशा शोचनीय हो गई। उसके पुत्र, पौत्र, संबंधी, पिता और भाई सभी युद्ध में मारे गये। पाण्डवों ने अत्यन्त कठिन काम पूरा कर दिया और अब उन्होंने शत्रुरहित अपना राज्य फिर पा लिया।

कष्टं युद्धे दश शेषाः श्रुता मे त्रयोऽस्माकं पाण्डवानां च सप्त।
द्व्यूनां विंशतिराहताक्षौहिणीनां तस्मिन् संग्रामे भैरवे क्षत्रियाणाम्।।

आदि०–1/217

इस महायुद्ध में केवल दस व्यक्ति जीवित बच रहे हैं–मेरे पक्ष के तीन कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा तथा पाण्डव पक्ष के सात–श्रीकृष्ण, सात्यकि

और पांच पाण्डव। क्षत्रियों के इस भीषण संग्राम में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई।

संजयैवं गते प्राणांस्त्यक्तुमिच्छामि मा चिरम्।
स्तोकं ह्यपि न पश्यामि फलं जीवित धारणे।।

आदि०–1/220

संजय! महायुद्ध का यह दुष्परिणाम होने पर मैं तुरन्त प्राण त्याग करना चाहता हूँ क्योंकि अब जीवित रहने का मुझे कोई लाभ नहीं दिखाई देता।

16
युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ और शकुनि की चाल

दिग्विजय होने पर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। उन्होंने भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर और अपने सभी कौरव भाइयों को यज्ञ में बुलाया। कौरवों के साथ शकुनि, कर्ण, शल्य और जयद्रथ भी आये। प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, बंग, कलिंग, कुन्तल, आन्ध्र, द्रविड, सिंहल, बाल्हीक, काश्मीर, शक, तुषार, कंक और चीन, कम्बोज, गोवासन, कार्पासिक, द्वयक्ष, त्र्यक्ष और ललाटाक्ष आदि अनेक देशों के राजा इस यज्ञ में आये। शिशुपाल भी इस अवसर पर इन्द्रप्रस्थ आया। इन राजाओं और अतिथियों से भेंट लेने का काम दुर्योधन को सौंपा गया।

राज्याभिषेक का दिन आने पर भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा कि यज्ञ में पधारे हुए राजाओं का उचित सम्मान होना चाहिये। प्राचीन नियम है कि आचार्य, ऋत्विज, राजा, स्नातक, अपने भाई बन्धु और स्त्री पक्ष के संबंधी एक साल बाद जब आयें तब उनका विशेषरूप से सम्मान किया जाना चाहिये। यहाँ एकत्र अतिथियों में जो सबसे वरिष्ठ और श्रेष्ठ हो उसे विशिष्ट रूप से सम्मानित करना चाहिये।

युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म पितामह ने कहा कि यहाँ जितने लोग आये हैं उन सबमें तेज, बल और पराक्रम के कारण कृष्ण परम पूज्य हैं।

जब कृष्ण का सम्मान किया गया तो चेदिराज शिशुपाल को यह अच्छा नहीं लगा। उसने कहा कृष्ण राजा नहीं है फिर इतने राजाओं के बीच इनकी पूजा कैसे की गई?

कृष्ण न राजा है, न ऋत्विज है, न आचार्य है और न ही वह आयु में सबसे बड़ा है फिर भी आपने उनकी पूजा करके इन सब राजाओं का अपमान क्यों किया?

यह कहकर शिशुपाल कई राजाओं के साथ राजसंसद से उठकर चला गया। युधिष्ठिर उसे समझाने के लिये दौड़े। भीष्म ने भी कहा शिशुपाल; हमने गुणों के कारण ही कृष्ण की पूजा की है। वे तीनों लोकों में भी पूजनीय हैं। किन्तु शिशुपाल यज्ञ विध्वंस करने के लिये राजाओं से सलाह करने लगा। उसने भीष्म को भी खरी-खोटी सुनाई। वह कृष्ण को गाली देने लगा। उसने कृष्ण को युद्ध के लिये ललकारा और अन्त में कृष्ण ने शिशुपाल का सिर काट दिया। युधिष्ठिर ने शिशुपाल के पुत्र को चेदि देश का राजतिलक कर दिया।

राजसूय यज्ञ से हस्तिनापुर लौटकर दुर्योधन का हृदय युधिष्ठिर का वैभव देखने के कारण ईर्ष्या से जलने लगा। वह पागलों जैसा हो गया। उसने शकुनि से अपने मन की बात कही। शकुनि ने धृतराष्ट्र को दुर्योधन की हालत बताई। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को समझाया किन्तु उस पर कोई असर नहीं हुआ। पास बैठे शकुनि ने दुर्योधन से कहा तुम युधिष्ठिर की जो सम्पत्ति देख रहे हो उसे मैं बिना युद्ध के अपने पासों से तुम्हें दिला सकता हूँ। दुर्योधन को शकुनि की यह चाल बहुत अच्छी लगी। किन्तु धृतराष्ट्र ने कहा कि इस जुए से तुम घोर कलह करा दोगे। मुझे विदुर से सलाह कर लेने दो। किन्तु दुर्योधन के दुराग्रह के कारण धृतराष्ट्र ने उसे युधिष्ठिर के साथ जुआ खेलने की अनुमति दे दी। विदुर ने इसका विरोध किया। लेकिन धृतराष्ट्र के जोर देने पर विदुर को जुए के लिये युधिष्ठिर को बुलाने इन्द्रप्रस्थ जाना पड़ा। धृतराष्ट्र की आज्ञा मानकर युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर आ गये।

अगले दिन जुआ शुरू होने पर दुर्योधन ने कहा कि मामा शकुनि मेरी ओर से खेलेंगे और मैं दांव के लिये धन दूँगा। कपटी शकुनि के सामने युधिष्ठिर लगातार हारते गये। जुए का पारा चढ़ता देखकर विदुर ने धृतराष्ट्र को फिर समझाया। यह देख दुर्योधन ने विदुर से कहा तुम सदा पाण्डवों की प्रशंसा करते रहते हो।

युधिष्ठिर जुए में सब कुछ हार बैठे। उन्होंने अपने भाइयों को, अपने आप को और शकुनि के कहने पर द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया। यह देख द्यूत सभा में बैठे सब वृद्ध सदस्य युधिष्ठिर को धिक्कारने लगे। केवल धृतराष्ट्र प्रसन्न होकर बार-बार पूछता क्या जीत लिया? क्या जीत लिया?

युधिष्ठिर के सब कुछ हार जाने पर दुर्योधन ने विदुर को डांट कर कहा जाओ, द्रौपदी को यहाँ लेकर आओ। वह हमारे आंगन में झाड़ू दे और दासियों के साथ रहे।

विदुर ने अपने को सम्हाल कर दुर्योधन को एक बार फिर समझाने की कोशिश की। किन्तु दुर्योधन पर कोई असर नहीं पड़ा और उसने दूसरे सूत को आज्ञा दी कि तुम जाकर द्रौपदी को यहाँ लाओ।

17

चीरहरण

दुर्योधन : एहि क्षत्तर्द्रौपदीमानयस्व प्रियां भार्यां सम्मतां पाण्डवानाम्।
सम्मार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रं तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला।।

सभा०-66/1

विदुर! यहाँ आओ! तुम पाण्डवों की प्यारी और उनकी बात मानने वाली पत्नी द्रौपदी को यहाँ ले आओ। वह पापिन हमारे घर में झाड़ू लगाये और दासियों के साथ रहे।

विदुर : दुर्विभाषं भाषितं त्वादृशेन न मन्द सम्बुध्यसि पाशबद्धः।
प्रपाते त्वं लम्बमानो न वेत्सि व्याघ्रान् मृगः कोपयसेऽतिवेलम्।।

सभा०-66/2

अरे मूर्ख! तेरे ही मुँह से ऐसी बुरी बात निकल सकती है। मृत्युपाश से बंधा हुआ तू कुछ नहीं समझ रहा है। तू ऐसी खाई के ऊपर लटक रहा है जिसमें गिरकर मर जायेगा। तू हरिण होकर शेरों को भड़का रहा है।

न हि दासीत्वमापन्ना कृष्णा भवितुमर्हसि।
अनीशेन हि राज्ञैषा पणे न्यस्तेति मे मतिः।।

सभा०-66/4

द्रौपदी दासी नहीं बन सकती क्योंकि राजा युधिष्ठिर अपने को दांव पर लगाकर और हार कर द्रौपदी को दांव पर नहीं लगा सकते थे।

दुर्योधन : प्रातिकामिन् द्रौपदीमानयस्व न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः।
क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव।।

सभा०-67/2

सूत! तुम द्रौपदी को यहाँ ले आओ। तुम्हें पाण्डवों से डरने की कोई बात नहीं है। यह विदुर डरपोक है और सदा उल्टी बात कहता है क्योंकि यह हमारी उन्नति कभी नहीं चाहता।

प्रातिकामी : **युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो दुर्योधनो द्रौपदि त्वामजैषीत्।**
सा त्वं प्रपद्यस्व धृतराष्ट्रस्य वेश्म नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि।।

सभा०-67/4

द्रौपदि! युधिष्ठिर जुए के मद से मतवाले हो गये हैं और दुर्योधन ने आपको जीत लिया है अतः आप धृतराष्ट्र के महल में चलिये! वहाँ मैं आपको दासी का काम करने के लिये ले चलता हूँ।

द्रौपदी : **कथं त्वेवं वदसि प्रातिकामिन् को हि दीव्येद् भार्ययाराजपुत्रः।**
मूढो राजा द्यूतमदेन मत्तो ह्यभून्नान्यत् कैतवमस्य किञ्चित्।।

सभा०-67/5

सूत! तुम क्या कह रहे हो? क्या कोई राजकुमार अपनी पत्नी को दांव पर लगाता है। क्या जुए से मदहोश राजा के पास जुए में दांव पर लगाने के लिये कुछ नहीं बचा था।

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम्।।

सभा०-67/7

सूतपुत्र! तुम सभा में जाकर उन जुआरी महाराज से पूछो कि आप पहिले अपने को हारे थे या मुझे?

वैशम्पायन : **युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्त्व इवाभवत्।**
न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाधु वा।।

सभा०-67/11

तब युधिष्ठिर की सुध-बुध खो गई और वे निष्प्राण से हो गये। उन्होंने सूत को द्रौपदी के प्रश्न का भला बुरा कोई उत्तर नहीं दिया।

दुर्योधन : **इहैवागत्य पाञ्चाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम्।**
इहैव सर्वे शृण्वन्तु तस्याश्चैतस्य यद् वचः।।

सभा०-67/12

सूतपुत्र! जाकर द्रौपदी से कहो कि वह यहीं आकर अपना प्रश्न पूछे और यहाँ सभी सभासद द्रोपदी का प्रश्न और युधिष्ठिर का उत्तर सुनेंगे।

प्रातिकामी : **सभ्यास्त्वमी राजपुत्र्याह्वयन्ति मन्ये प्राप्तः संक्षयः कौरवाणाम्।**
न वै समृद्धिं पालयते लघीयान् यस्त्वां सभां नेष्यति राजपुत्रि।।

सभा०-67/14

राजपुत्री! वे दुर्योधन आदि सभासद तुम्हें सभा में ही बुला रहे हैं। मुझे लगता है कि कौरवों के नाश की घड़ी आ गई है। नीच दुर्योधन अपनी समृद्धि को नहीं बचा सकता इसीलिये तुम्हें सभा में बार-बार बुला रहा है।

द्रौपदी : **एवं नूनं व्यदधात् संविधाता स्पर्शावुभौ स्पृशतो वृद्धबालौ।**
धर्मं त्वेकं परमं प्राह लोके स नः शमं धास्यति गोप्यमानः।।

सभा०-67/15

निश्चय ही विधि का ऐसा ही विधान है। बालक बूढ़े सभी को सुख-दुःख मिलता है। संसार में धर्म ही श्रेष्ठ माना गया है। यदि हम धर्म का पालन (रक्षा) करेंगे तो धर्म ही हमारा कल्याण करेगा।

सोऽयं धर्मो मात्यगात् कौरवान् वै सभ्यान् गत्वा पृच्छ धर्म्यं वचो मे।
ते मां ब्रूयुर्निश्चितं तत् करिष्ये धर्मात्मनो नीतिमन्तो वरिष्ठाः।।

सभा०-67/16

मेरे धर्म का उल्लंघन न हो अतः तुम कौरवों से जाकर मेरी यह धर्मानुकूल बात पूछो! धर्मात्मा, नीतिज्ञ और बढ़े-बूढ़े जो कहेंगे मैं वही करूंगी।

श्रुत्वा सूतस्तद्वचो याज्ञसेन्याः सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम्।
अधोमुखास्ते न च किंचिदूचुर्निर्बन्धं तं धार्तराष्ट्रस्य बुद्ध्वा।।

सभा०-67/17

द्रौपदी की यह बात सुनकर सूत ने सभा में जाकर द्रौपदी का प्रश्न दुहराया किन्तु दुर्योधन के दुराग्रह को देख सब लोग मुँह लटकाये बैठे रहे।

वैशम्पायन : **युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनचिकीर्षितम्।**
द्रौपद्याः सम्मतं दूतं प्राहिणोत् भरतर्षभ।।

सभा०-67/18

जनमेजय! दुर्योधन क्या करना चाहता है यह सुनकर युधिष्ठिर ने द्रौपदी के पास ऐसा व्यक्ति भेजा जिस दूत को वह पहचानती थी।

एकवस्त्रा त्वधोनीवी रोदमाना रजस्वला।
सभामागम्य पाञ्चालि श्वसुरस्याग्रतो भव।।

सभा०-67/19

पाञ्चालि! यद्यपि तुम रजस्वला हो और तुमने नाभि से नीचे एक ही वस्त्र पहन रखा है। तुम रो रही हो फिर भी सभा में आकर श्वसुर के सामने खड़ी होओ।

पाण्डवाश्च महात्मानो दीना दुःखसमन्विताः।
सत्येनातिपरीताङ्गाः नोदीक्षन्ते स्म किंचन।।

सभा०-67/22

महापुरुष पाण्डव सत्य के बन्धन में बंध जाने से अपने को बहुत दीन और दुखी अनुभव कर रहे थे। उन्हें कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

ततः सूतस्तस्य वशानुगामी भीतश्चकोपाद् द्रुपदात्मजायाः।
विहाय मानं पुनरेव सभ्यानुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि।।

सभा०-67/23

दुर्योधन के अधीन रहने वाला सूतपुत्र द्रौपदी के क्रोध से डर रहा था, अतः उसने अपने मान सम्मान की परवाह न कर सभासदों से फिर पूछा कि "मैं द्रौपदी को क्या उत्तर दूँ?"

दुर्योधन : दुःशासनैष मम सूतपुत्रो वृकोदरादुद्विजतेऽल्पचेताः।
स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः।।

सभा०-7/25

दुःशासन! मेरा नौकर यह सूतपुत्र मूर्ख है और भीम से डर रहा है। तुम द्रौपदी को पकड़कर ले आओ। हमारे वश में आये शत्रु पाण्डव हमारा क्या बिगाड़ लेंगे।

दुःशासनः एह्येहि पाञ्चालि जितासि कृष्णे दुर्योधनं पश्य विमुक्तलज्जा।
कुरून् भजस्वायतपत्रनेत्रे धर्मेण लब्धासि सभां परैहि।।

सभा०-67/27

पाञ्चालि! आओ, आओ! तुम जीती जा चुकी हो। कृष्णे! लज्जा छोड़कर दुर्योधन की ओर देखो। कमल पत्र के समान बड़ी आंखों वाली! कौरवों की सेवा करो। हमने तुम्हें धर्मानुसार प्राप्त किया है, अतः सभा में चलो।

ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा विवर्णमामृज्य मुखं करेण।
आर्ता प्रदुद्राव यतःस्त्रियस्ता वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुङ्गवस्य।।

सभा०-67/28

यह सुनकर द्रौपदी को बहुत दुःख हुआ। वह अपने कान्तिहीन मुख को हाथ से पोंछकर उस ओर दौड़ी जहाँ बूढ़े महाराज धृतराष्ट्र की रानियाँ बैठीं थीं।

ततो जवेनाभिससार रोषाद् दुःशासनस्तामभिगर्जमानः।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम्।।
सभा०-67/29

तब दुःशासन भी क्रोध से गरजता हुआ द्रौपदी के पीछे दौड़ा और उसने द्रौपदी के काले घुंघराले केश पकड़ लिये।

ये राजसूयावभृथे जलेन महाक्रतौ मन्त्रपूतेन सिक्ताः।
ते पाण्डवानां परिभूय वीर्यं बलात् प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन।।
सभा०-67/30

जो केश राजसूय यज्ञ के अवभृथ स्नान में मन्त्रों से पवित्र जल से सींचे गये थे उन्हीं को दुःशासन ने पाण्डवों के पराक्रम की अवहेलना करके खींच लिया।

सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य।।
सभा०-67/32

दुःशासन के खींचने से द्रौपदी कांपने लगी। उसने धीरे से कहा मैं रजस्वला हूँ, केवल एक वस्त्र पहिने हूँ। मूर्ख दुष्ट! मैं सभा में जाने योग्य नहीं हूँ।

दुःशासन : रजस्वला वा भव याज्ञसेनि एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा।
द्यूते जिता चासि कृतासि दासी दासीषु वासश्च यथोपजोषम्।।
सभा०-67/34

द्रौपदि! तुम रजस्वला हो, एक वस्त्र पहिने हो या वस्त्र रहित भी क्यों न हो। तुम्हें हमने जुए में जीता है, तुम हमारी दासी हो और दासियों से हम किसी भी तरह का बर्ताव कर सकते हैं।

द्रौपदी : इमे सभायामुपनीतशास्त्रः क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः।
गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम्।।
सभा-67/36

इस सभा में शास्त्रज्ञ, क्रियावान और इन्द्र के समान तेजस्वी पूजनीय और बड़े बूढ़े बैठे हैं। मैं उनके सामने इस हालत में खड़ी होना नहीं चाहती।

नृशंसकर्मंस्त्वमनार्यवृत्त मा मा विवस्त्रां कुरु मा विकर्षीः।
न मर्षयेयुस्तव राजपुत्राः सेन्द्राश्च देवा यदि ते सहायाः।।
सभा०-67/37

अरे दुष्ट क्रूर दु:शासन! तू मुझे मत खींच, मुझे नंगा मत कर। यदि तेरी सहायता के लिये इन्द्र सहित देवता भी आ जायें तो भी तेरा यह व्यवहार राजकुमार पाण्डव सहन नहीं करेंगे।

धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः।
वाचापि भर्तुः परमाणुमात्रमिच्छामि दोषं न गुणान् विसृज्य।।

सभा०-67/38

धर्मपुत्र महात्मा धर्म का ही पालन करते हैं। धर्म को समझना कठिन है इसे बुद्धिमान ही समझ सकते हैं। मैं अपने पति के गुणों के अतिरिक्त उनके छोटे से छोटे अवगुण की भी चर्चा करना नहीं चाहती।

धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम्।
यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम्।।

सभा०-67/40

हाय आज भारतों का धर्म नष्ट हो गया, क्षत्रियों का आचार लुप्त हो गया। यहाँ भरी सभा में कुरु धर्म की मर्यादा रौंदी जा रही है और सब कौरव चुप हो देख रहे हैं।

द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्वं क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि।
राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं न लक्षयन्ते कुरुवृद्धमुख्याः।।

सभा०-67/41

द्रोण, भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्र में कुछ भी शक्ति नहीं बच रही है। क्या कुरुवंश के वृद्ध पुरुष दुर्योधन के इस भयंकर अनाचार को नहीं देख रहे हैं?

वैशम्पायन : दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णामवेक्षमाणां कृपणान् पतींस्तान्।
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पामुवाच दासीति हसन् सशब्दम्।।

सभा०-67/44

द्रौपदी अपने दीन पतियों की ओर देखने लगी। तभी दु:शासन ने उसे झकझोर कर हंसते हुए दासी कहा। तब द्रौपदी बेहोश सी हो गई।

कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः सम्पूजयामास हसन् सशब्दम्।
गान्धारराजः सुबलस्य पुत्रस्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत्।।

सभा०-67/45

यह सुनकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने खिलखिला कर दु:शासन की

सराहना की। गान्धार देश के राजा सुबल के पुत्र शकुनि ने भी दु:शासन को शाबाशी दी।

भीष्म : न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य।।

सभा०-67/47

सौभाग्यशालिनी! धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण मैं तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं दे सकता। एक ओर तो यह सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति स्वयं असमर्थ और निर्धन है वह पराये धन को दांव पर नहीं लगा सकता। दूसरी ओर यह बात है कि स्त्रियों पर उनके पतियों का अधिकार होता है।

त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात्।
उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन तस्मान्न शक्नोमि विवेक्तुमेतत्।।

सभा०-67/48

युधिष्ठिर धन-धान्य सम्पन्न सारी पृथिवी को छोड़ सकते हैं किन्तु धर्म को नहीं। उन्होंने स्वयं ही कहा है कि मैं हार गया अत: मैं इस प्रश्न का विवेचन नहीं कर सकता।

द्यूतेऽद्वितीयः शकुनिर्नरेषु कुन्तीसुतस्तेन निसृष्टकामः।
न मन्यते तां निकृतिं युधिष्ठिरस्तस्मान्न ते प्रश्नमिमं ब्रवीमि।।

सभा०-67/49

मनुष्यों में शकुनि अद्वितीय जुआरी है। उसी ने युधिष्ठिर को तुम्हें दांव पर लगाने को कहा। जब युधिष्ठिर ही इसे छल-कपट नहीं मानते तो मैं तुम्हारे प्रश्न का क्या उत्तर दूँ?

द्रौपदी : अशुद्धभावैर्निकृतिप्रवृत्तैरबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्र्यः।
सम्भूय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात् पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः।।

सभा०-67/51

जिनके हृदयों की भावना अशुद्ध है जो छल-कपट करते हैं उन लोगों ने मिलकर सीधे-सादे युधिष्ठिर को हरा दिया और फिर मुझे दांव पर लगाने के लिये उन्हें विवश कर दिया।

तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभायामीशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम्।
समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं विब्रूत मे प्रश्नमिदं यथावत्।।

सभा०-67/52

इस सभा में ये शक्तिशाली कौरव बैठे हुए हैं। इनके घरों में भी बहू-बेटियां हैं। अत: आप सब मेरे प्रश्न पर भलीभांति विचार करके ठीक उत्तर दीजिये।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्।।

सभा०दा०पा०-52

वह सभा व्यर्थ है जहाँ वृद्ध न हों। जो लोग धर्म की बात न कहें उन्हें वृद्ध नहीं कहा जाता। जिस बात में सच्चाई न हो वह धर्म नहीं होती और छल से युक्त बात सत्य नहीं होती।

भीम : **भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर।**
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि।।

सभा०-68/1

युधिष्ठिर! जुआरियों के घर में कुलटा और बन्धकी स्त्रियाँ होती हैं। उन पर भी दया की जाती है और उन्हें दांव पर नहीं लगाया जाता।

एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवैः।
त्वत्कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः।।

सभा०-68/5

यह सीधी-सादी द्रौपदी पाण्डवों की पत्नी होकर इस तरह अपमानित होने लायक नहीं थी किन्तु आपके कारण ये नीच, क्रूर, कृतघ्न कौरव इसे सता रहे हैं।

अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन् निपात्यते।
बाहू ते सम्प्रधक्ष्यामि सहदैवाग्निमानय।।

सभा०-68/6

राजन्! द्रौपदी की दुर्दशा देख मुझे आप पर क्रोध आ रहा है। आपने जिन हाथों से इसे दांव पर लगाया उन्हें मैं जला डालूंगा। सहदेव अग्नि लाओ।

अर्जुन : **न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम्।**
भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिवर्तितुमर्हति।।

सभा०-68/8

भीम! तुम शत्रुओं का मनोरथ सफल मत करो, श्रेष्ठ धर्म पर ही चलो। अपने धर्मात्मा बड़े भाई का अपमान कौन कर सकता है।

वैशम्पायन : तथा तान् दुःखितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् धृतराष्ट्रजः।
कृष्यमाणां च पाञ्चालीं विकर्ण इदमब्रवीत्।।

सभा०-68/11

पाण्डवों को दुखी देखकर द्रौपदी को घसीटा जाता हुआ देखकर धृतराष्ट्र का पुत्र विकर्ण बोला।

विकर्ण : याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः।।

सभा०-68/12

हे राजाओ! द्रौपदी ने जो प्रश्न पूछा है उसका आप उत्तर दीजिए।

उक्त्वा सकृत् तथा सर्वान् विकर्णः पृथिवीपतीन्।
पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत्।।

सभा०-68/18

जब बार-बार पूछने पर भी राजाओं ने कोई उत्तर नहीं दिया तब विकर्ण अपने हाथ मलता हुआ और गहरा श्वास लेता हुआ बोला।

चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम्।
मृगयां पानमंक्षांश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम्।।

सभा०-68/20

श्रेष्ठ पुरुषो! राजाओं के चार व्यसन हैं-शिकार, शराब, जुआ और व्यभिचार।

एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते।
यथायुक्तेन च क्रियां लोको न मन्यते।।

सभा०-68/21

इन व्यसनों में फंसा मनुष्य धर्म को छोड़कर मनमाना व्यवहार करने लगता है। अतः व्यसनी पुरुष के किसी भी काम को लोग नहीं मानते।

तदयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम्।
समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः।।

सभा०-68/22

ये पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर जुए के दुर्व्यसन में फँसे हुए हैं। इन्होंने जुआरियों के कहने से द्रौपदी को दांव पर लगा दिया है।

साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः।।

सभा०-68/23

सती साध्वी द्रौपदी सभी पाण्डवों की है, केवल युधिष्ठिर की नहीं। युधिष्ठिर पहले ही हार चुके हैं। अपने को हारने के बाद ही युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दांव पर लगाया है।

इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना।
एतत् सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम्।।

सभा०-68/24

सभी दांव जीतना चाहने वाले शकुनि ने ही द्रौपदी को दांव पर लगाने की बात की थी। अत: इन सब पर विचार करके मेरा यही दृढ़ मत है कि द्रौपदी जीती नहीं गई हैं।

एतच्छ्रुत्वा महान् नादः सभ्यानामुदतिष्ठत।
विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम्।।

सभा०-68/25

यह सुनकर सभा में शोर होने लगा और सभासद, विकर्ण की प्रशंसा तथा शकुनि की निन्दा करने लगे।

कर्ण : दृश्यन्ते वै विकर्णेह वैकृतानि बहून्यपि।
तज्जातस्तद्विनाशाय यथाग्निररणिप्रजः।।

सभा०-68/27

अरे विकर्ण! संसार में बहुत सी चीज़ें उल्टा असर दिखाती हैं। जैसे अरणि से पैदा हुई अग्नि अरणि को ही जला देती है वैसे ही कोई-कोई व्यक्ति जिस कुल में जन्म लेता है उसी कुल को नष्ट कर देता है।

द्रोणो भीष्मः कृपो द्रौणिर्विदुरश्च महामतिः।
धृतराष्ट्रश्च गान्धारी भवतः प्राज्ञवत्तराः।।

सभा०-68/दा०पा०

द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, महान् बुद्धिमान विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी ये सब तुमसे कहीं अधिक बुद्धिमान हैं।

एते न किंचिदप्याहुश्चोदिता ह्यपि कृष्णया।
धर्मेण विजितामेतां मन्यन्ते द्रुपदात्मजाम्।।

सभा०-68/28

द्रौपदी के बार-बार पूछने पर भी इन लोगों ने कुछ भी नहीं कहा क्योंकि ये सब द्रौपदी को धर्मपूर्वक जीती गई मानते हैं।

त्वं तु केवल बाल्येन धार्तराष्ट्र विदीर्यसे।
यद् ब्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम्।।

सभा०-68/29

धृतराष्ट्र पुत्र! तुम लड़कपन के ही कारण अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो इसीलिये सभा में बूढ़ों जैसे बोल रहे हो।

कथं ह्यविजितां कृष्णां मन्यसे धृतराष्ट्रज।
यदा सभायां सर्वस्वं न्यस्तवान् पाण्डवाग्रजः।।

सभा०-68/31

अरे विकर्ण! तू द्रौपदी को जीती हुई कैसे नहीं मानता जबकि युधिष्ठिर ने अपना सभी कुछ दांव पर लगा दिया था?

अभ्यन्तरा च सर्वस्वे द्रौपदी भरतर्षभ।
एवं धर्मजितां कृष्णां मन्यसे न जितां कथम्।।

सभा०-68/32

द्रौपदी भी युधिष्ठिर के सभी कुछ (सर्वस्व) के अन्तर्गत है। इस प्रकार द्रौपदी को धर्मानुसार जीता गया है तब तू ही बता कि द्रौपदी को अविजित क्यों मानता है?

कीर्तिता द्रौपदी वाचा अनुज्ञाता च पाण्डवैः।
भवत्यविजिता केन हेतुनैषा मता तव।।

सभा०-68/33

युधिष्ठिर ने नाम लेकर द्रौपदी को दांव पर लगाया था और सभी पाण्डवों ने चुप रहकर अनुमोदन किया था। फिर द्रौपदी कैसे नहीं जीती गई?

मन्यसे वा सभामेतामानीतामेकवाससम्।
अधर्मेणेति तत्रापि श्रृणु मे वाक्यमुत्तमम्।।

सभा०-68/34

तू यदि द्रौपदी को एक वस्त्र पहने सभा में लाया जाना अधर्म समझता है, तो मेरी बात सुन!

एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन।
इयं त्वनेकवशगा बन्धकीति विनिश्चिता।।

सभा०-68/35

विकर्ण! श्रेष्ठ पुरुषों ने नियम बनाया है कि स्त्री का एक ही पति होता है किन्तु द्रौपदी तो कई पुरुषों की है। अत: यह वेश्या ही है।

अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः।
एकाम्बरधरत्वं वाप्यथ वापि विवस्त्रता।।

सभा०-68/36

इसे सभा में ले आने से क्या बिगड़ गया। इसमें कोई अनोखी बात नहीं है। इसे एक कपड़े में या नंगी भी लाया जा सकता था।

दु:शासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः।
पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर।।

सभा०-68/38

दु:शासन! यह विकर्ण निपट मूर्ख है किन्तु बुद्धिमानों जैसी बातें बनाता है। तुम पाण्डवों के और द्रौपदी के कपड़े उतार लो।

वैशम्पायन : ततो दु:शासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात्।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे।।

सभा०-68/40

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्याश्चिन्तितो हरिः।।

सभा०-68/41

राजन्! फिर दु:शासन ने भरी सभा के बीच द्रौपदी को पकड़ लिया और वह उसकी साड़ी खींचने लगा। यह देख द्रौपदी ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया।

द्रौपदी : गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।।

सभा०-68/41

कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।।

सभा०-68/42

हे गोविन्द! गोपियों के प्रिय द्वारकावासी कृष्ण क्या तुम्हें नहीं मालूम कि कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे संकटनाशक जनार्दन! मैं कौरवरूपी समुद्र में डूबी जा रही हूँ। तुम मेरा उद्धार करो।

वैशम्पायन : कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।
ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः।।

सभा०-46/68

द्रोपदी अपनी रक्षा के लिये श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवान् के नाम लेकर पुकार रही थी कि धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्ण ने अव्यक्त रूप से द्रौपदी के वस्त्र में प्रवेश कर द्रौपदी को अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्रों से ढक दिया।

भीम : इदं मे वाक्यमादध्वं क्षत्रिया लोकवासिनः।
नोक्तपूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद् वदिष्यति।।

सभा०-68/51

देश-विदेश के राजाओ! आप लोग मेरी बात सुनें। ऐसी बात आज से पहले किसी ने नहीं कही होगी और न कोई कभी कहेगा।

अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च।
न पिबेयं बलाद् वक्षो भित्त्वा चेद् रुधिरं यदि।।

सभा०-68/53

खोटी बुद्धि वाले और भरतवंश के कलंक इस दुःशासन की मैं युद्ध में छाती फाड़कर इसका खून पी जाऊंगा।

विदुर : ततो बाहू समुच्छ्रित्य निवार्य च सभासदः।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत्।।

सभा०-68/58

फिर सभी शास्त्रों के जानकार विदुर ने अपने हाथ उठाकर सभासदों को चुप किया और कहा।

द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति ह्यनथावत्।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते।।

सभा०-68/59

हे सभासदो! द्रौपदी अपना प्रश्न पूछकर अनाथ की तरह रो रही है। आप लोग इस प्रश्न का उत्तर नहीं देते। इससे धर्म की हानि हो रही है।

सभां प्रपद्यते ह्यार्तः प्रज्वलन्निव हव्यवाट्।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रशमयन्त्युत।।

सभा०-68/60

दुखी मनुष्य अग्नि में जलते हुए की भांति सभा में आता है। सभ्य-पुरुष सत्य और धर्म का आश्रय लेकर उसका दु:ख दूर करते हैं।

विकर्णेन यथाप्रज्ञमुक्तः प्रश्नो नराधिपाः।
भवन्तोऽपि हि तं प्रश्नं विब्रवन्तु यथामति।।

सभा०-68/62

राजाओ ! विकर्ण ने अपनी बुद्धि के अनुसार द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दिया है। आप भी अपने विवेक के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर दें।

यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते।।

सभा०-68/63

जो व्यक्ति सभा में जाकर और धर्म का आश्रय लेकर प्रश्न का उत्तर नहीं देता है वह झूठ बोलने का आधा फल भुगतता है।

वैशम्पायन : विदुरस्य वचः श्रुत्वा नोचुः किञ्चन पार्थिवाः।
कर्णो दुःशासनं त्वाह कृष्णां दासीं गृहान् नय।।

सभा०-68/89

विदुर की बात सुनकर भी कोई राजा कुछ नहीं बोला। तब कर्ण ने दु:शासन से कहा कि तुम द्रौपदी को दासियों के घरों में ले जाओ।

तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान्।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम्।।

सभा०-68/90

लज्जा में डूबी द्रौपदी थरथर कांप रही थी और पाण्डवों को पुकार रही थी। तभी दुशासन, दुखिया द्रौपदी को घसीटने लगा।

द्रौपदी : पुरस्तात् करणीयं मे न कृतं कार्यमुत्तरम्।
विह्वलास्मि कृतानेन कर्षता बलिना बलात्।।

सभा०-69/1

यहाँ आने पर मुझे जो करना चाहिये था वह मैंने पहिले नहीं किया, क्योंकि बलवान् दुष्ट दु:शासन मुझे घसीट रहा था, मैं घबराई हुई थी। अब मुझे वह कार्य करना चाहिये।

अभिवादं करोम्येषां कुरूणां कुरुसंसदि।
न मे स्यादपराधोऽयं यदिदं न कृतं मया।।

सभा०-69/2

मैं कुरु संसद में उपस्थित कौरव गुरुजनों को प्रणाम करती हूँ। आपको अभी तक अभिवादन न करने का अपराध मुझे न लगे।

स्वयम्वरे यास्मि नृपैर्दृष्टा रङ्गे समागतैः।
न दृष्टपूर्वा चान्यत्र साहमद्य सभां गता।।

सभा०-69/4

राजाओं ने मुझे स्वयम्वर में देखा था तब मैं रंगभूमि में स्वयं आई थी। उससे पहले मुझे किसी ने नहीं देखा था। हाय! आज मुझे इस सभा में घसीट कर लाया गया है।

यां न मृश्यन्ति वातेन स्पृश्यमानां गृहे पुरा।
स्पृश्यमानां सहन्तेऽद्य पाण्डवास्तां दुरात्मना।।

सभा०-69/6

पहले अपने महल में रहते हुए पाण्डव यह भी सहन नहीं करते थे कि वायु भी मेरा शरीर छुए किन्तु आज वही पाण्डव इस दुष्ट दुःशासन द्वारा मुझे घसीटना सहन कर रहे हैं।

मृष्यन्ति कुरवश्चेमे मन्ये कालस्य पर्ययम्।
स्नुषां दुहितरं चैव क्लिश्यमानामनर्हतीम्।।

सभा०-69/7

मैं कुरु कुल की पुत्रवधू और बेटी हूँ। सताये जाने योग्य नहीं हूँ। फिर भी मुझे सताया जा रहा है और ये सब कुरुवंशी इसे सहन कर रहे हैं। मेरे विचार में विपरीत समय आ गया है।

किं न्वतः कृपणं भूयो यदहं स्त्री सती शुभा।
सभामध्यं विगाहेऽद्य क्व नु धर्मो महीक्षिताम्।।

सभा०-69/8

इससे अधिक दुख की बात क्या होगी कि मुझ जैसी सदाचारिणी सती साध्वी स्त्री को सभा में जबर्दस्ती लाया गया। आज राजाओं का धर्म कहाँ चला गया?

तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम्।
ब्रूत दासीमदासीं वा तत् करिष्यामि कौरवाः।।

सभा०-69/11

मैं धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मपत्नी हूँ तथा उन्हीं के समान क्षत्रियवर्ण में उत्पन्न हुई हूँ। कौरवो! आप लोग बतायें कि मैं दासी हूँ या अदासी। आप जैसा कहेंगे वैसा ही मैं करूँगी।

जितां वाप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः।
तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत् करिष्यामि कौरवाः।।

सभा०-69/13

राजाओ! आप क्या मानते हैं? मैं जीती गई हूँ या नहीं। आपके मुख से मैं इस प्रश्न का ठीक उत्तर सुनना चाहती हूँ फिर उसी के अनुसार मैं आचरण करूँगी।

भीष्म : उक्तवानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमा गतिः।
लोके न शक्यते ज्ञातुमपि विज्ञैर्महात्मभिः।।

सभा०-69/14

अयि कल्याणि! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। इस संसार में विद्वान् महात्मा भी इसे नहीं जान सकते।

बलवांश्च यथा धर्मं लोके पश्यति पूरुषः।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः।।

सभा०-69/15

संसार में बलवान पुरुष जिस आचरण को धर्मानुकूल कहते हैं उसे ही धर्म मान लिया जाता है और बलहीन व्यक्ति का धर्माचरण इससे दब जाता है।

न विवेक्तुं च ते प्रश्नमिमं शक्नोमि निश्चयात्।
सूक्ष्मत्वाद् गहनत्वाच्च कार्यास्यास्य च गौरवात्।।

सभा०-69/16

मैं तेरे प्रश्न का निश्चित उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि यह मामला बड़ा सूक्ष्म, गहन और महत्त्वपूर्ण है।

नूनमन्तः कुलस्यायं भविता नचिरादिव।
तथा हि कुरवः सर्वे लोभमोह परायणाः।।

सभा०-69/17

इस कौरव कुल का विनाश निश्चय ही जल्दी होगा क्योंकि ये सारे कौरव लोभ और मोह में पड़े हुए हैं।

कुलेषु जाता कल्याणि व्यसनैराहता भृशम्।
धर्म्यान्मार्गान्न च्यवन्ते येषां नस्त्वं वधूः स्थिता।।

सभा०-69/18

कल्याणि! तुम जिनकी बहू हो वे पाण्डव हमारे उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हैं। वे घोर संकट आने पर भी धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होते।

उपपन्नं च पाञ्चालि तवेदं वृत्तमीदृशम्।
यत् कृच्छ्रमपि सम्प्राप्ता धर्ममेवान्ववेक्षसे।।

सभा०-69/19

हे पाञ्चालि! तुम्हारा आचरण तुम्हारे योग्य ही है कि इतने बड़े संकट में पड़कर भी तुम धर्माचरण कर रही हो।

एते द्रोणादयश्चैव वृद्धा धर्मविदो जनाः।
शून्यैः शरीरैस्तिष्ठन्ति गतासव इवानताः।।

सभा०-69/20

द्रोणाचार्य आदि ये वृद्धपुरुष धर्मज्ञ हैं किन्तु फिर भी ये सिर झुकाये ऐसे बैठे हैं मानों इनके शरीर में प्राण ही नहीं है।

युधिष्ठिरस्तु प्रश्नेऽस्मिन् प्रमाणमिति मे मतिः।
अजितां वाजितां वेति स्वयं व्याहर्तुमर्हति।।

सभा०-69/21

मेरी तो यही राय है कि इस प्रश्न का निर्णय करने में युधिष्ठिर ही सबसे प्रामाणिक व्यक्ति हैं। तुम जीती गई हो या नहीं जीती गई हो इसका उत्तर स्वयं उन्हें ही देना चाहिये।

दुर्योधन : तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्त्वे भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम्।।

सभा०-70/3

द्रौपदी! तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर तुम्हारे पति भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पर छोड़ा जाता है। वे ही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दें।

अनीश्वरं विब्रुवन्त्वार्यमध्ये युधिष्ठिरं तव पाञ्चालि हेतोः।
कुर्वन्तु सर्वे चानृतं धर्मराजं पाञ्चालि त्वं मोक्ष्यसे दासभावात्।।

सभा०-70/4

पाञ्चालि ! इन श्रेष्ठ लोगों के बीच यदि ये सब कह दें कि तुम्हें दांव पर लगाते समय युधिष्ठिर स्वतन्त्र नहीं रह गये थे और सभी पाण्डव धर्मराज को झूठा ठहरा दें तो तुम दासी नहीं रहोगी।

भीम : यद्येष गुरुरस्माकं धर्मराजो महामनाः।
न प्रभुः स्यात् कुलस्यास्य न वयं मर्षयेमहि।।

सभा०-70/12

यदि ये महामना धर्मराज युधिष्ठिर हमारे पूज्य और हमारे कुल के स्वामी न होते तो हम कौरवों का यह अत्याचार कभी भी सहन नहीं करते।

धर्मपाशसितस्त्वेवं नाधिगच्छामि संकटम्।
गौरवेण विरुद्धश्च निग्रहादर्जुनस्य च।।

सभा०-70/16

मैं धर्म के बन्धन में पड़ा हूँ। बड़े भाई का लिहाज भी मुझे रोक रहा है, और अर्जुन भी मना कर रहा है। अतः मैं इस संकट से पार नहीं पा रहा हूँ।

कर्ण : प्रविश्य राज्ञः परिवारं भजस्व तत् ते कार्यं शिष्टमादिश्यतेऽत्र।
ईशास्तु सर्वे तव राजपुत्रि भवन्ति वै धार्तराष्ट्रा न पार्थाः।।

सभा०-71/2

राजकुमारी ! राजा दुर्योधन के परिवार में जाकर सबकी सेवा करो। अब तुम्हारे लिये यही काम रह गया है और इसी के लिये तुम्हें आदेश दिया जा रहा है। आज से धृतराष्ट्र के सभी पुत्र तुम्हारे स्वामी हैं कुन्ती के पुत्र नहीं।

अन्यं वृणीष्व पतिमाशु भाविनि यस्माद् दास्यं न लभसि देवनेन।
अवाच्या वै पतिषु कामवृत्तिर्नित्यं दास्ये विदितं तत् तवास्तु।।

सभा०-71/3

सुन्दरि ! अब तुम दूसरा पति शीघ्र ही चुन लो जिससे तुम्हें जुए से किसी की दासी न बनना पड़े। दासियां तो स्वेच्छाचारिणी होती ही हैं और तुम भी अब दासी हो इसलिये किसी और को पति बना सकती हो।

भीम : **नाहं कुप्ये सूतपुत्रस्य राजन्नेष सत्यं दासधर्मः प्रदिष्टः।**
किं विद्विषो वै मामेवं व्याहरेयुर्नादेवीस्त्वं यद्यनया नरेन्द्र।।

सभा०-71/7

राजा युधिष्ठिर! मुझे सूतपुत्र कर्ण पर क्रोध नहीं आ रहा क्योंकि उसने दासधर्म के बारे में सच कहा है। महाराज! यदि आप द्रौपदी को दांव पर नहीं लगाते तो क्या ये शत्रु हमसे ऐसी बातें कह सकते थे?

वैशम्पायन : **एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम्।**
स्मयन्नवेक्ष्य पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः।।

सभा०-71/10

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर देने को कहकर ऐश्वर्य के नशे में चूर दुर्योधन ने अपनी जांघ का वस्त्र हटाकर मुस्कुराते हुए द्रौपदी को देखा।

अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव।
द्रौपद्याः प्रेक्ष्माणायाः सव्यमूरुमदर्शयत्।।

सभा०-71/12

कर्ण को इशारा कर उकसाते हुए और भीम का तिरस्कार करते हुए दुर्योधन ने अपनी बांयी जांघ द्रौपदी को दिखाई।

भीमसेनस्तमालोक्य नेत्रे उत्फाल्य लोहिते।
प्रोवाच राजमध्ये तं सभां विश्रावयन्निव।।

सभा-71/13

दुर्योधन को देख भीमसेन की आंखें लाल हो उठीं। भीम अपनी आंखें फाड़कर उस सभा में बैठे सभी राजाओं को सुनाते हुए बोला।

पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद् वृकोदरः।
यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे।।

सभा०-71/14

दुर्योधन! यदि मैंने तेरी इस जांघ को महायुद्ध में अपनी गदा से नहीं तोड़ा तो मुझे अपने पितरों की भांति पुण्यलोक न मिले।

विदुर : **परं भयं पश्यत भीमसेनात् तद् बुध्यध्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्राः।**
दैवेरितं नूनमयं पुरस्तात् परोऽनयो भरतेषूदपादि।।

सभा०-71/16

धृतराष्ट्र के पुत्रो! भीमसेन से यह महान भय आ गया है। इस पर ध्यान दो। निश्चय ही भाग्य की प्रेरणा से कौरवों के सामने यह महान् अन्याय हो रहा है।

अतिद्यूतं कृतमिदं धार्तराष्ट्रा यस्मात् स्त्रियं विवदध्वं सभायाम्।
योगक्षेमौ नश्यतो वः समग्रौ पापान् मन्त्रान् कुरवो मन्त्रयन्ति।।

सभा०-71/17

धृतराष्ट्र पुत्रो! तुमने मर्यादा तोड़कर जुआ खेला है इसीलिये तुम द्रौपदी को भरी सभा में लाकर उसके लिये विवाद कर रहे हो। तुम्हारे योग और क्षेम पूरी तरह नष्ट हो रहे हैं। आज सभी जान गये कि कौरव पापपूर्ण मन्त्रणा करते हैं।

इमं धर्मं कुरवो जानताशु ध्वस्ते धर्मे परिषत् सम्प्रदुष्येत्।
इमां चेत् पूर्वं कितवोऽग्लहिष्यदीशोऽभविष्यदपराजितमा।।

सभा०-71/18

कौरवो! तुम इस धर्म को जल्दी ही समझ लो क्योंकि धर्म नष्ट होने पर सारी सभा दोषी मानी जाती है। जुआ खेलने वाले युधिष्ठिर अपने को हारे बिना यदि द्रौपदी को दांव पर लगाते तो उन्हें ऐसा करने का अधिकार था।

स्वप्ने यथैतद् विजितं धनं स्यादेवं मन्ये यस्य दीव्यत्यनीशः।
गान्धारराजस्य बचो निशम्य धर्मादस्मात् कुरवो मापयात।।

सभा०-71/19

जब कोई अनधिकारी पुरुष जिस धन को दांव पर लगाता है तो उसकी हार जीत मैं वैसी ही मानता हूँ जैसे कोई व्यक्ति सपने में धन हारता या जीतता है। कौरवो, शकुनि की बातों में आकर तुम अपना धर्म मत छोड़ो।

अर्जुन : **ईशो राजा पूर्वमासीत् ग्लहे नः कुन्तीसुतो धर्मराजो महात्मा।**
ईशस्त्वयं कस्य पराजितात्मातज्जानीध्वं कुरवः सर्व एव।।

सभा०-71/21

कुंतीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर! हमें तो दांव पर लगाने के अधिकारी थे किन्तु जब वे अपने को हार चुके तब वे स्वतन्त्र कैसे रह गये? कौरवो आप सब यह बात समझ लें।

वैशम्पायन : **ततो राज्ञो धृतराष्ट्रस्य गेहे गोमायुरुच्चैर्व्याहरदग्निहोत्रे।**
तं रासभाः प्रत्यभाषन्त राजन् समन्ततः पक्षिणश्चैव रौद्राः।।

सभा०-71/22

जनमेजय! तब धृतराष्ट्र की यज्ञशाला में एक गीदड़ घुसकर हुआं हुआं करने लगा। यह आवाज सुनकर गदहे रेंकने लगे और भयंकर पक्षी भी कांव कांव करने लगे।

धृतराष्ट्र : हतोऽसि दुर्योधन मन्दबुद्धे यस्त्वं सभायां कुरुपुङ्गवानाम्।
स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम्।।

सभा०-71/25

अरे मूर्ख दूर्योधन! तू तो मारा गया। दुष्ट! तू श्रेष्ठ कौरवों की इस सभा में अपने ही कुल की महिला को और वह भी पाण्डवों की धर्मपत्नी को लाकर पापपूर्ण बातें कर रहा है।

वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती।।

सभा०-71/27

द्रौपदी! तुम मेरी सभी बहूओं में सर्वश्रेष्ठ धर्मपरायणा सती पुत्रवधू हो। तुम्हारी जो इच्छा हो उसके अनुसार मुझसे वर मांग लो।

द्रौपदी : ददासि चेद् वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ।
सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिष्ठिरः।।

सभा०-71/28

भरतवंश शिरोमणि! यदि आप मुझे वर देते हैं तो मेरे पति युधिष्ठिर दास न रहें।

धृतराष्ट्र : एवं भवतु कल्याणि यथात्वमभिभाषसे।
द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वरयस्व ह।।

सभा०-71/31

कल्याणि! तुमने जैसा कहा वैसा ही हो। भद्रे! अब तुम दूसरा वर मांगो।

द्रौपदी : सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेनधनञ्जयौ।
यमौ च वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम्।।

सभा०-71/32

राजन्! मैं यही वर मांगती हूँ कि भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव अपने रथों और धनुषों सहित दास भाव से रहित एवं स्वतन्त्र हो जायें।

धृतराष्ट्र : **तथास्तु ते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि।**
तृतीयं वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसत्कृता।।

सभा०-71/33

महाभागे! तुम अपने कुल को आनन्दित करने वाली हो। तुम जैसा चाहती हो वैसा ही हो। तुम तीसरा वर मांगो क्योंकि दो वरों से तुम्हारा सम्मान नहीं हुआ।

द्रौपदी : **लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन् नाहमुत्सहे।**
अनर्हा वरमादातुं तृतीयं राजसत्तम।।

सभा०-71/34

भगवन्! अति लोभ से धर्म नष्ट हो जाता है। अतः मैं तीसरा वर नहीं मांगती। फिर मुझे (स्त्रियों को) तीसरा वर मांगने का अधिकार भी नहीं है।

कर्ण : **या नः श्रुता मनुष्येषु स्त्रियो रूपेण सम्मताः।**
तासामेतादृशं कर्म न कस्याश्चन शुश्रुम।।

सभा०-72/1

मैंने मनुष्यों में जिन रूपवती नारियों के नाम सुने हैं उनमें से किसी ने द्रौपदी जैसा काम किया हो वैसा मैंने कभी नहीं सुना।

क्रोधाविष्टेषु पार्थेषु धार्तराष्ट्रेषु चाप्यति।
द्रौपदी पाण्डुपुत्राणां कृष्णा शान्तिरिहाभवत्।।

सभा०-72/2

कौरव और पाण्डव बहुत क्रोध में आ गये थे। ऐसी स्थिति में द्रौपदी ने पाण्डवों को अत्यधिक शान्ति प्रदान की।

अप्लवेऽम्भसि मग्नानामप्रतिष्ठे निमज्जताम्।
पाञ्चाली पाण्डुपुत्राणां नौरेषा पारगाभवत्।।

सभा०-72/3

पाण्डव अगाध जल में डूब रहे थे। वे संकटों के सागर में गोते खा रहे थे। ऐसे में द्रौपदी ने उन्हें नाव बनकर पार लगाया।

धृतराष्ट्र : **अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत।**
अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुशासत।।

सभा०-73/2

अजातशत्रु युधिष्ठिर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी आज्ञा से अपना हारा हुआ सारा धन लेकर निर्विघ्न अपनी राजधानी जाओ और शासन करो।

यतो बुद्धिस्ततः शान्तिः प्रशमं गच्छ भारत।।

सभा०-73/5

जहाँ बुद्धि है वहाँ शान्ति है। हे भारत! तुम शान्त हो जाओ, जो हुआ उसे भुला दो।

दुर्योधनस्य पारुष्यं तत् तात हृदि मा कृथाः।
मातरं चैव गान्धारीं मां च त्वं गुणकाङ्क्षया।। सभा०-73/12
उपस्थितं वृद्धमन्धं पितरं पश्य भारत।।

सभा०-3/13

हे तात! दुर्योधन के इस निष्ठुर व्यवहार को याद न रखना। भारत! तुम अच्छे गुण ग्रहण करने की इच्छा से अपनी माता गान्धारी और मुझ बूढ़े पिता की ओर देखना।

प्रेक्षापूर्वं मया द्यूतमिदमासीदुपेक्षितम्।
मित्राणि द्रष्टुकामेन पुत्राणां च बलाबलम्।।

सभा०-73/14

मैंने इस जुए को तमाशे की तरह उपेक्षा भाव से लिया था, जिससे इस अवसर पर एकत्र अनेक मित्रों से मिल पाऊं और अपने पुत्रों की शक्ति भी जान लूँ।

18

पाण्डवों का वनवास

धृतराष्ट्र से अपना राज्य वापस पाकर पाण्डव इन्द्रप्रस्थ लौट गये। यह खबर सुनते ही दु:शासन ने दुर्योधन से कहा 'बुड्ढे ने सब चौपट कर दिया। जीता हुआ सारा धन फिर शत्रुओं को दे दिया।' यह सुनते ही कर्ण, दुर्योधन और शकुनि एक साथ धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और बोले 'आचार्य बृहस्पति की नीति यही है कि शत्रु को सभी तरह के उपाय अपनाकर मारना चाहिये। पाण्डव; द्रौपदी का भरी सभा में अपमान नहीं भूल सकते। वे हमें नष्ट किये बिना नहीं रहेंगे। इसलिये हमें पाण्डवों के साथ फिर जुआ खेलकर उन्हें वश में कर लेना चाहिये। जो जुए में हारेगा वह बारह वर्ष तक वन में रहेगा और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करेगा। आप फिर जुआ खेलने की आज्ञा दे दें। यदि पाण्डव तेरह वर्ष बाद जीवित लौटे भी तो हम उन्हें हरा देंगे।

धृतराष्ट्र ने यह बात एकदम मान ली और कहा पाण्डव अभी रास्ते में ही होंगे। उन्हें लौटा लाओ। द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, अश्वत्थामा और गान्धारी ने धृतराष्ट्र को बहुत समझाया परन्तु उसने किसी की नहीं सुनी।

तुरन्त दूत भेजा गया। युधिष्ठिर लौट आये। हस्तिनापुर में फिर जुआ खेला गया। हारकर पाण्डवों ने वन की राह पकड़ी। विदुर ने कुन्ती को अपने यहाँ रख लिया। पाण्डवों के वनवास का समाचार सुनकर कृष्ण काम्यक वन पहुँचे। उन्होंने पाण्डवों से कहा यदि मैं द्वारका में होता तो द्यूत सभा में पहुंच जाता और तुम्हें यह दु:ख नहीं झेलना पड़ता। किन्तु राजसूय यज्ञ से लौटने पर मैंने देखा कि शाल्व ने द्वारका को नष्ट कर दिया है। शाल्व से युद्ध में फंसा होने के कारण मैं हस्तिनापुर नहीं पहुँच सका।

कृष्ण के जाने के बाद एक दिन पाण्डव आपस में बात कर रहे थे। द्रौपदी सबसे अधिक दु:खी थी। कौरव सभा में अपमानित होने के बाद आज उसे अपने मन का दु:ख उंडेलने का अवसर पहली बार मिला था।

19
द्रौपदी सन्ताप

द्रौपदी : न नूनं तस्य पापस्य दुःखमस्मासु किञ्चन।
विद्यते धार्तराष्ट्रस्य नृशंसस्य दुरात्मनः।।

वन०-27/3

उस पापी, निष्ठुर और दुष्ट दुर्योधन को हमारे लिये तनिक भी दुःख नहीं है।

यस्त्वां राजन् मया सार्धमजिनैः प्रतिवासितम्।
वनं प्रस्थाप्य दुष्टात्मा नान्वतप्यत दुर्मतिः।।

वन०-27/4

दुष्ट दुर्योधन ने आपको मृगचर्म पहनाकर मेरे साथ वन में भेज दिया किन्तु उसके हृदय में तनिक भी दुःख नहीं हुआ।

आयसं हृदयं नूनं तस्य दुष्कृतकर्मणः।
यस्त्वां धर्मपरं श्रेष्ठं रूक्षाण्यश्रावयत् तदा।।

वन०-27/5

उस पापी दुर्योधन का हृदय लोहे का बना हुआ है, जिसने आप जैसे धर्मात्मा और श्रेष्ठ व्यक्ति को खरी-खोटी बातें कहीं।

चतुर्णामेव पापानामस्त्रं न पतितं तदा।
त्वयि भारत निष्क्रान्ते वनायाजिनवाससि।।

वन०-27/7

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मना।
दुर्भ्रातुस्तस्य चोग्रस्यस राजन् दुःशासनस्य च।।

वन०-27/8

भारत! जब आप मृगचर्म पहनकर वन जाने लगे तब दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और उग्र दुष्ट भाई दुःशासन इन चारों की आंखों से एक भी आंसू नहीं गिरा।

इतरेषां तु सर्वेषां कुरूणां कुरुसत्तम।
दुःखेनाभिपरीतानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम्।।

वन॰-27/9

हे कुरुश्रेष्ठ! अन्य सब कौरवों की आंखों से आंसू बह रहे थे और वे बहुत दुःखी थे।

दान्तं यच्च सभामध्ये आसनं रत्नभूषितम्।
दृष्ट्वा कुशवृषीं चेमां शोको मां प्रदहत्ययम्।।

वन॰-27/11

मैंने आपको सभा के बीच हाथीदांत के बने रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठे देखा है, किन्तु आज कुशा की चटाई पर आपको बैठे देख मेरा हृदय शोक से भर जाता है।

यदपश्यं सभायां त्वां राजभिः परिवारितम्।
तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे।।

वन॰-27/12

मैंने आपको राजसभा में राजाओं से घिरे हुए बैठे देखा है किन्तु आज उस अवस्था में आपको न देखकर मेरे हृदय को शान्ति कैसे मिल सकती है?

या त्वामहं कौशिकैर्वस्त्रैः शुभ्रैराच्छादितं पुरा।
दृष्टवत्यस्मि राजेन्द्र सा त्वां पश्यामि चीरिणम्।।

वन॰-27/14

राजेन्द्र! मैं आपको उजले रेशमी वस्त्र पहने देखती थी किन्तु आज आपको वल्कल वस्त्र पहने हुए देख रही हूँ।

सत्कृतं विविधैर्यानैर्वस्त्रैरुच्चावचैस्तथा।
तं तै वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।।

वन॰-27/22-23

जिन भीमसेन का भांतिभांति की सवारियों और वस्त्रों से सत्कार किया जाता था उन्हें वन में कष्ट उठाते देख आपको क्रोध क्यों नहीं आ रहा?

यो देवांश्च मनुष्यांश्च सर्पांश्चैकरथोऽजयत्।
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्नवर्धते।।

वन॰-27/28-29

जिन अर्जुन ने एक रथ में बैठकर ही देवताओं, मनुष्यों और नागों पर विजय पाई है उन्हें वन में कष्ट भोगते देख आपको क्रोध क्यों नहीं आ रहा?

नकुलं सहदेवं च दृष्ट्वा ते दुःखितावुभौ।
अदुःखार्हो मनुष्येन्द्र कस्मान्मन्युर्न वर्धते।।

वन०–27/33–34

नरश्रेष्ठ! नकुल और सहदेव दुःख भोगने योग्य नहीं हैं किन्तु वे दोनों कष्ट उठा रहे हैं। उनकी यह हालत देखकर आपको क्रोध क्यों नहीं आ रहा?

द्रुपदस्य कुले जातां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः।। वन०–27/34
धृष्टद्युम्नस्य भगिनीं वीरपत्नीमनुव्रताम्।
मां वै वनगतां दृष्ट्वा कस्मात् क्षमसि पार्थिव।।

वन०–27/35

हे राजन्! द्रुपद के कुल में उत्पन्न, पाण्डु की पुत्रवधू, धृष्टद्युम्न की बहिन, वीर पुरुषों की आज्ञाकारिणी पत्नी मुझे वन में इस हालत में देखकर आप कौरवों को क्यों क्षमा कर रहे हैं?

नमो धात्रे विधात्रे च यौ मोहं चक्रतुस्तव।
पितृपैतामहे वृत्ते वोढव्ये तेऽन्यथा मतिः।।

वन०–30/1

मैं ईश्वर और प्रारब्ध को प्रणाम करती हूँ जिन्होंने आपकी बुद्धि में मोह पैदा कर दिया है इसीलिये बाप दादाओं के आचार-विचार को अपनाने में भी आप की बुद्धि पर परदा पड़ गया है।

नेह धर्मानृशंस्याभ्यां न क्षान्त्या नार्जवेन च।
पुरुषः श्रियमाप्नोति न घृणित्वेन कर्हिचित्।।

वन०–30/3

इस संसार में कोई भी मनुष्य धर्म, दया, शान्ति, विनय और सरलता से धन-ऐश्वर्य नहीं पा सकता।

भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रेयौ च मया सह।
त्यजेस्त्वमिति मे बुद्धिर्न तु धर्मं परित्यजेः।।

वन०–30/7

मैं जानती हूँ कि आप भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और मुझे भी एक बार छोड़ देंगे किन्तु धर्म को नहीं छोड़ेंगे।

राजानं धर्मगोप्तारं धर्मो रक्षति रक्षितः।
इति मे श्रुतमार्याणां त्वां तु मन्ये न रक्षति।।

वन०-30/8

मैंने आर्यपुरुषों से सुना है कि धर्म की रक्षा करने वाले राजा की रक्षा धर्म करता है पर मेरे विचार से धर्म आपकी रक्षा नहीं कर रहा।

अनन्या हि नरव्याघ्र नित्यदा धर्ममेव ते।
बुद्धिः सततमन्वेति च्छायेव पुरुषं निजा।।

वन०-30/9

हे नरश्रेष्ठ! छाया जैसे पुरुष के पीछे चलती है आपकी बुद्धि भी सदा धर्म के पीछे चलती है।

अस्मिन्नपि महारण्ये विजने दस्युसेविते।
राष्ट्रादपेत्य वसतो धर्मस्ते नावसीदति।।

वन०-30/16

आप राज्य छोड़कर लुटेरों से भरे इस निर्जन महावन में रह रहे हैं किन्तु आपने धर्म को नहीं छोड़ा।

ऋजोर्मृदोर्वदान्यस्य ह्रीमतः सत्यवादिनः।
कथमक्षव्यसनजा बुद्धिरापतिता तव।।

वन०-30/19

आप सरल, कोमल, उदार, लज्जाशील और सत्यवादी हैं। फिर भी आपकी बुद्धि जुए के व्यसन में कैसे पड़ गई?

धातैव खलु भूतानां सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
दधाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन्।।

वन०-30/22

मैं यही सोचती हूँ कि विधाता ही सब प्राणियों को उनके पिछले कर्मों के अनुसार सुख-दुःख, और प्रिय-अप्रिय देते हैं।

न मातृपितृवद् राजन् धाता भूतेषु वर्तते।
रोषादिव प्रवृत्तोऽयं यथायमितरो जनः।।

वन०-30/38

राजन्! ईश्वर सब प्राणियों के प्रति माता-पिता के समान व्यवहार नहीं कर रहा। वह तो दूसरे लोगों की तरह ही रोष में भरकर काम कर रहा है।

तवेमामापदं दृष्ट्वा समृद्धिं च सुयोधने।
धातारं गर्हये! पार्थ विषमं योऽनुपश्यति।।

वन०-30/40

मैं आपकी इस विपत्ति को और दुर्योधन की समृद्धि को देखकर विधाता को कोसती हूँ जो इतना भेदभाव कर रहा है।

युधिष्ठिर : वल्गु चित्रपदं श्लक्ष्णं याज्ञसेनि त्वया वचः।
उक्तं तच्छ्रुतमस्माभिर्नास्तिक्यं तु प्रभाषसे।।

वन०-31/1

द्रौपदि! तुमने सुनने में अच्छी लगने वाली और सुन्दर बात कही। मैंने इसे सुना किन्तु तुम्हारी बात में नास्तिकता की भावना ही है।

नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत।
ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्यमित्युत।।

वन०-31/2

राजपुत्रि! मैं फल मिलने की इच्छा से धर्मानुष्ठान नहीं करता अपितु देना चाहिये इसलिये दान देता हूँ, यज्ञ करना चाहिये अतः यज्ञ करता हूँ।

अस्तु वात्र फलं मा वा कर्त्तव्यं पुरुषेण यत्।
गृहे वा वसता कृष्णे यथाशक्ति करोमि तत्।।

वन०-31/3

कृष्णे! मेरे किसी कर्म का फल मिले या न मिले मैं इसकी परवाह नहीं करता अपितु गृहस्थी के जो कर्त्तव्य हैं उन्हें यथाशक्ति निभाता हूँ।

धर्म एव मनः कृष्णे स्वभावाच्चैव मे धृतम्।
धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्।।

वन०-31/5

कृष्णे! मेरा मन स्वभाव से ही धर्म में लगा है। जो व्यक्ति कुछ लाभ की इच्छा से धर्म का व्यापार करता है उसे धार्मिक लोग हीन और निन्दनीय मानते हैं।

न धर्मफलमाप्नोति यो धर्मं दोग्धुमिच्छति।
यश्चैनं शंकते कृत्वा नास्तिक्यात् पापचेतनः।।

वन०-31/6

जो मनुष्य धर्म को दुहना चाहता है या धर्म का आचरण कर फिर पाप और नास्तिकतावश सन्देह करता है उसे धर्म का फल नहीं मिलता।

प्रत्यक्षं हि त्वया दृष्टं ऋषिर्गच्छन् महातपाः।
मार्कण्डेयोऽप्रमेयात्मा धर्मेण चिरजीविता।।

वन०-31/11

तुमने अमेयात्मा महातपस्वी मार्कण्डेय ऋषि को स्वयं देखा है। वे अभी यहाँ से गये हैं। धर्मपालन से ही उनकी आयु इतनी लम्बी है।

अतो नार्हसि कल्याणि धातारं धर्ममेव च।
राज्ञि मूढेन मनसा क्षेप्तुं शङ्कितुमेव च।।

वन०-31/15

इसलिये हे कल्याणि रानी! तुम मूर्खतावश ईश्वर और धर्म पर आक्षेप मत करो न ही कोई सन्देह करो।

उन्मत्तान् मन्यते बालः सर्वानागतनिश्चयान्।
धर्माभिशङ्की नान्यस्मात् प्रमाणमधिगच्छति।।

वन०-31/16

धर्म के बारे में सन्देह करने वाला बालबुद्धि मनुष्य धर्म का निश्चित तत्त्व जानने वालों को पागल समझता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की प्रामाणिक बात नहीं मानता।

आत्मप्रमाण उन्नद्धः श्रेयसो ह्यवमन्यकः।
इन्द्रिय प्रीतिसम्बद्धं यदिदं लोक साक्षिकम्।
एतावन्मन्यते बालो मोहमन्यत्र गच्छति।।

वन०-31/17

केवल अपनी बुद्धि को प्रमाण मानने वाला, कुतर्क करने वाला, श्रेष्ठजनों की अवहेलना करने वाला मूर्ख इन्द्रियों को अच्छी लगने वाली और इस संसार के व्यवहार में प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली बातों को ही मानता है उसे और सब झूठा लगता है। अप्रत्यक्ष वस्तु के बारे में उसकी बुद्धि मोह में फंस जाती है।

धर्म एव प्लवो नान्यो स्वर्गं द्रौपदि गच्छताम्।
सैव नौः सागरस्येव वणिजः पारमिच्छतः।।

वन०-31/24

द्रौपदि! जैसे नाव समुद्र में व्यापारी को पार ले जाती है, वैसे ही स्वर्ग के लिये धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई नाव नहीं है।

अफलो हि यदि धर्मः स्याच्चरितो धर्मचारिभिः।
अप्रतिष्ठे तमस्येतज्जगन्मज्जेदनिन्दिते।।

वन०-31/25

द्रौपदि! यदि धर्मपरायण मनुष्यों द्वारा किया गया धर्मपालन व्यर्थ होता तो यह सारा जगत् अथाह अन्धकार में डूब जाता।

स नायमफलो धर्मो नाधर्मोऽफलवानपि।
दृश्यन्तेऽपि हि विद्यानां फलानि तपसां तथा।।

वन०-31/31

इसलिये धर्म सफल है। साथ ही अधर्म भी अपना फल देता है। हम विद्याभ्यास और तपस्या का फल अपनी आंखों से देखते हैं।

न फलादर्शनाद् धर्मः शङ्कितव्यो न देवताः।
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चानसूयता।।

वन०-31/38

धर्म का फल दिखाई न देने के कारण धर्म और देवताओं के बारे में सन्देह नहीं करना चाहिये। हमें यत्नपूर्वक यज्ञ और दान करना चाहिये।

तस्मात् ते संशयः कृष्णे नीहार इव नश्यतु।
व्यवस्य सर्वमस्तीति नास्तिक्यं भावमुत्सृज।।

वन०-31/40

द्रौपदि! मन से नास्तिकता का भाव दूर कर दो। सब कुछ सत्य है यह निश्चय करके धर्म के बारे में तुम्हारा संशय कुहरे की भांति नष्ट हो जाये।

ईश्वरं चापि भूतानां धातारं मा च वै क्षिप।
शिक्षस्वैनं नमस्वैनं मा तेऽभूद् बुद्धिरीदृशी।।

वन०-31/41

ईश्वर और ब्रह्मा पर आक्षेप मत करो। उसे समझो और प्रणाम करो। भविष्य में तुम्हारी बुद्धि ऐसी न रहे।

द्रौपदी : नावमन्ये न गर्हे च धर्मं पार्थ कदाचन।
ईश्वरं कुत एवाहमवमंस्ये प्रजापतिम्।।

वन०-32/1

हे युधिष्ठिर! मैं धर्म को बुरा भला नहीं कहती। ईश्वर और ब्रह्मा का निरादर मैं कैसे कर सकती हूँ?

कर्म खल्विह कर्तव्यं जानतामित्रकर्शन।
अकर्माणो हि जीवन्ति स्थावरा नेतरे जनाः।।

वन०-32/3

शत्रुनाशन! इस संसार में ज्ञानी पुरुष को कर्म अवश्य करना चाहिये। वृक्ष और पर्वत आदि स्थावर प्राणी बिना कर्म किये जीते हैं, अन्य लोग नहीं।

जङ्गमेषु विशेषेण मनुष्या भरतर्षभ।
इच्छन्ति कर्मणा वृत्तिमवाप्तुं प्रेत्य चेह च।।

वन०-32/5

जंगम जीवों में मनुष्य विशेषरूप से कर्म करके इस लोक में और परलोक में जीविका चलाना चाहते हैं।

उत्थानमभिजानन्ति सर्वभूतानि भारत।
प्रत्यक्षं फलमश्नन्ति कर्मणां लोकसाक्षिकम्।।

वन०-32/6

भारत! सभी प्राणी अपनी उन्नति समझते हैं। वे अपने कर्मों का प्रत्यक्ष फल पाते हैं। संसार इसका साक्षी है।

स्वकर्म कुरु मा ग्लासीः कर्मणा भव दंशितः।
कृतं योऽभिजानाति सहस्रे सोऽस्ति नास्ति च।।

वन०-32/9

आपको भी अपना कर्म करना चाहिये, उसकी उपेक्षा मत कीजिये आप कर्म का कवच पहनें। जो भलीभांति कर्म करना जानता है ऐसा मनुष्य हजारों में भी है या नहीं, यह बताना कठिन है।

तस्य चापि भवेत् कार्यं विवृद्धौ रक्षणे तथा।
भक्ष्यमाणो ह्यनादानात् क्षीयते हिमवानपि।।

वन०-32/10

धन आदि को बढ़ाने और रक्षा करने के लिये भी कर्म करना होता है। यदि धन को खर्च ही किया जाता रहे तो हिमालय जितनी राशि भी नष्ट हो जायेगी।

उत्सीदेरन् प्रजाः सर्वा न कुर्युः कर्म चेद् भुवि।
तथा ह्येता न वर्धेरन् कर्म चेदफलं भवेत्।।

वन०-32/11

यदि सारी प्रजा इस पृथिवी पर कर्म करना छोड़ दे तो सारी प्रजा नष्ट हो जायेगी। यदि कर्म का कुछ फल न हो तो इन प्रजाओं की वृद्धि ही न हो।

यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादिकः।
उभावपि शठावेते कर्मबुद्धिः प्रशस्यते।।

वन०-32/13

संसार में जो भाग्यवादी हैं अथवा हठवादी बनकर मनमानी करते हैं वे दोनों लोक के शत्रु हैं। कर्मबुद्धि मनुष्य ही सराहनीय है।

यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयेत्।
अवसीदेत स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके।।

वन०-32/14

जो मूर्ख भाग्य का भरोसा करके निश्चेष्ट बन सुख से सोता है, वह जल में कच्चे घड़े की तरह नष्ट हो जाता है।

तथैव हठदुर्बुद्धिः शक्तः कर्मण्यकर्मकृत्।
आसीत न चिरं जीवेदनाथ इव दुर्बलः।।

वन०-32/15

जो हठबुद्धि है, वह कर्म करने में समर्थ होने पर भी कर्म नहीं करता। ऐसा मूर्ख अनाथ और निर्बल मनुष्य की भांति अधिक समय नहीं जीता।

यत्स्वयं कर्मणा किञ्चित् फलमाप्नोति पूरुषः।
प्रत्यक्षं चक्षुषा दृष्टं तत्पौरुषमिति स्मृतम्।।

वन०-32/18

मनुष्य को स्वयं अपने कर्म से जो फल मिले वही सच्चा पुरुषार्थ है। उसे ही चक्षुदृष्ट प्रत्यक्ष कह सकते हैं।

मनसार्थान् विनिश्चित्य पश्चात् प्राप्नोति कर्मणा।
बुद्धिपूर्वं स्वयं वीर पुरुषस्तत्र कारणम्।।

वन०-32/25

मन से किसी कार्य को करने का निश्चय करके वीर पुरुष को उस कर्म से जो फल प्राप्त होता है वही पुरुष का बुद्धिपूर्वक किया गया कार्य होता है।

संख्यातुं नैव शक्यानि कर्माणि पुरुषर्षभ।
आगारनगराणां हि सिद्धिः पुरुष हैतुकी।।

वन०-32/6

नरश्रेष्ठ! कर्मों की गिनती नहीं की जा सकती। भवनों और नगरों का निर्माण पुरुष के कर्म का प्रत्यक्ष फल है।

तिले तैलं गवि क्षीरं काष्ठे पावकमन्ततः।
धिया धीरो विजानीयादुपायं चास्यसिद्धये।।

वन०-32/27

तिलों में तेल, गाय में दूध और लकड़ी में आग होते हुए भी इन्हें पाने के लिये धीर पुरुष को बुद्धिपूर्वक उपाय करना ही पड़ता है।

कृते कर्मणि राजेन्द्र तथानृण्यमवाप्नुते।।

वन०-32/41

कर्म करके ही मनुष्य अपने दायित्व से मुक्त होता है।

कर्तव्यमेव कर्मेति मनोरेषविनिश्चयः।
एकान्तेन ह्यनीहोऽयं पराभवति पूरुषः।।

वन०-32/39

कर्म करना ही चाहिये, मनु ने यह सिद्धान्त पहले ही निश्चित कर दिया था। जो कर्म छोड़कर निष्चेष्ट बैठा रहता है उसकी अवनति ही होती है।

कुर्वतो हि भवत्येव प्रायेणेह युधिष्ठिर।
एकान्तफलसिद्धिं तु न विन्दत्यलसः क्वचित्।।

वन०-32/40

हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य कर्म करता है प्रायः वही उसका फल पाता है। आलसी व्यक्ति को कभी कुछ नहीं मिलता।

अनर्थाः संशयावस्थाः सिद्ध्यन्ते मुक्तसंशयाः।
धीरा नराः कर्मरता ननु निःसंशयाः क्वचित्।।

वन०-32/43

कर्म का फल मिलेगा या नहीं इस सन्देह में पड़े मनुष्यों को सफलता नहीं मिलती। संशयरहित व्यक्ति ही अपने जीवन में सफल होते हैं। संशयरहित, धीर और कर्म में लगे हुए मनुष्य विरले ही होते हैं।

कुर्वतो नार्थसिद्धिर्मे भवतीति ह भारत।
निर्वेदो नात्र कर्तव्यो द्वावन्यौ ह्यत्र कारणम्।।

वन०-32/50

भारत! कर्म करने पर भी मुझे सफलता नहीं मिली यह देख मन ही मन खिन्न नहीं होना चाहिये क्योंकि कर्म का फल मिलने में पुरुषार्थ के अलावा दो और कारण होते हैं–ईश्वर की कृपा और प्रारब्ध।

सिद्धिर्वाप्यथवासिद्धिरप्रवृत्तिरतोऽन्यथा ।
बहूनां समवाये हि भावनां कर्म सिद्ध्यति।।

वन०-32/51

कर्म करने पर दो ही परिणाम हो सकते हैं–सफलता या असफलता। किन्तु कर्म न करना इन दोनों से अलग है जो उचित नहीं है। बहुत से कारण साथ मिलने पर ही कोई काम सफल होता है।

न त्वेवात्मावमन्तव्यः पुरुषेण कदाचन।
न ह्यात्मपरिभूतस्य भूतिर्भवतिशोभना।।

वन०-32/58

मनुष्य को हिम्मत हारकर स्वयं अपनी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जिसकी हिम्मत टूट जाती है उसकी उन्नति भी रुक जाती है।

भूयिष्ठं कर्मयोगेषु दृष्ट एव पराक्रमः।।

वन०-32/54

कार्य के सभी उपायों में पराक्रम ही सर्वश्रेष्ठ होता है।

भीम : **राज्यस्य पदवीं धर्म्यां व्रज सत्पुरुषोचिताम्।**
धर्मकामार्थहीनानां किं नो वस्तुं तपोवने।।

वन०-33/2

सत्पुरुष जैसे राज्य किया करते हैं वैसे धर्मपूर्वक करो। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को गंवाकर यहाँ जंगल में पड़े रहने से क्या लाभ ?

नैव धर्मेण तद् राज्यं नार्जवेन न चौजसा।
अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै।।

वन०-33/3

दुर्योधन ने धर्म से, सरलता से या बल से हमारा राज्य नहीं छीना है अपितु उसने जुए में हमें छला है।

गोमायुनेव सिंहानां दुर्बलेन बलीयसाम्।
आमिषं विघसाशेन तद्वत् राज्यं हि नो हृतम्।।

वन०-33/4

बचे हुए अन्न को खाने वाला कमज़ोर गीदड़ भी जैसे बलवान शेर का जूठा मांस खा जाता है उसी तरह हमारा राज्य भी हमसे छीना गया है।

धर्मलेशप्रतिच्छन्नः प्रभवं धर्मकामयोः।
अर्थमुत्सृज्य किं राजन् दुःखेषु परितप्यसे।।

वन०-33/5

महाराज! धर्म और काम को प्राप्त कराने वाले अर्थ को गंवाकर और धर्म की आड़ लेकर आप क्यों दुःखी हो रहे हैं?

भवतोऽनवधानेन राज्यं नो पश्यतां हृतम्।
अहार्यमपि शक्रेण गुप्तं गाण्डीवधन्वना।।

वन०-33/6

गाण्डीवधारी अर्जुन से रक्षित जिस राज्य को इन्द्र भी नहीं ले सकता था। आपकी करतूतों से वह राज्य हम सबके देखते-देखते हाथ से निकल गया।

कुणीनामिव बिल्वानि पङ्गूनामिव धेनवः।
हृतमैश्वर्यमस्कामं जीवतां भवतः कृते।।

वन०-33/7

जैसे लूला व्यक्ति बेल गिरा देता है और लंगड़े ग्वाले की गायें जंगल में खो जाती हैं वैसे ही आपके कारण हमारे जीतेजी हमारी सुख समृद्धि चली गई और हम कुछ नहीं कर सके।

कर्शयामः स्वमित्राणि नन्दयामश्च शात्रवान्।
आत्मानं भवतां शास्त्रैर्नियम्य भरतर्षभ।।

वन०-33/9

आपके आदेश से अपने पर नियंत्रण कर हम मित्रों को दु:ख दे रहे हैं और अपने शत्रुओं को आनन्दित कर रहे हैं।

यद् वयं न तदैवैतान् धार्तराष्ट्रान् निहन्महि।
भवतः शास्त्रमादाय तन्नस्तपति दुष्कृतम्।।

वन०-33/10

आपके इस आदेश के कारण ही हमने उसी समय धृतराष्ट्र के पुत्रों को नहीं मार डाला। हमारा यही दुष्कर्म आज हमें दु:ख दे रहा है।

अथैनामन्ववेक्षस्व मृगचर्यामिवात्मनः।
दुर्बलाचरितां राजन् न बलस्थैर्निषेविताम्।।

वन०-33/11

राजन्! मृगों की तरह आप अपने इस वनवास पर विचार कीजिये। कमजोर पुरुष ही इस तरह वन में रहते हैं बलवान् मनुष्य नहीं।

यां न कृष्णो न वीभत्सुर्नाभिमन्युर्न सृंजयाः।
न चाहमभिनन्दामि न च माद्रीसुतावुभौ।।

वन०-33/12

इस वनचर्या (वनवास) को कृष्ण, अर्जुन, अभिमन्यु, सृंजयवंशी वीर, मैं और नकुल, सहदेव कोई भी पसन्द नहीं करता।

भवान् धर्मो धर्म इति सततं व्रतकर्शितः।
कच्चिद् राजन् न निर्वेदादापन्नः क्लीबजीविकाम्।।

वन०-33/13

आप सदा धर्म की रट लगाकर दुबले हुए जाते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि आपको वैराग्य हो गया है जिसके कारण उत्साहरहित होकर आप नपुंसकों जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

स भवान् दृष्टिमाञ्छक्तः पश्यन्नस्मासु पौरुषम्।
आनृशंस्यपरो राजन् नानर्थमवबुध्यसे।।

वन०-33/15

राजन्! आप दूरदर्शी और शक्तिशाली हैं। आप हमारा पुरुषार्थ देखकर भी दयादृष्टि अपनाकर अपना अनर्थ क्यों नहीं देख रहे?

अस्मानमी धार्तराष्ट्राः क्षममाणानालं सतः।
अशक्तानिव मन्यन्ते तद् दुःखं नाहवे वधः।।

वन०-33/16

हम सहते चले जा रहे हैं और धृतराष्ट्र के पुत्र हमें शक्तिशाली होते हुए भी दुर्बल समझने लगे हैं यही हमारे लिये दुःखदायी है। युद्ध में मारे जाने पर हमें दुःख नहीं होगा।

कर्शनार्थो हि यो धर्मो मित्राणामात्मनस्तथा।
व्यसनं नाम तद् राजन् न धर्मः स कुधर्म तत्।।

वन०-33/21

महाराज! जो धर्म मित्रों के और अपने दुःख का कारण हो वह धर्म नहीं है अपितु व्यसन है। ऐसा धर्म तो कुधर्म ही है।

सर्वथा धर्मनित्यं तु पुरुषं धर्म दुर्बलम्।
त्यजतस्तात धर्मार्थौ प्रेतं दुःखसुखे यथा।।

वन०-33/22

जिसका धर्म दुर्बल है फिर भी वह धर्म की रट लगाता रहता है उसे धर्म और अर्थ दोनों छोड़ देते हैं जैसे मरे हुए व्यक्ति को सुख-दुःख।

यस्य धर्मो हि धर्मार्थं क्लेशभाङ् न स सपण्डितः।
न स धर्मस्य वेदार्थं सूर्यस्यान्धः प्रभामिव।।

वन०-33/23

कोरे धर्म के लिये धर्म से चिपटे रहना बुद्धिमत्ता नहीं अपितु दुःख का कारण है। ऐसा मूर्ख व्यक्ति धर्म का अर्थ नहीं जानता जैसे अन्धा सूर्य के प्रकाश को नहीं जानता।

धर्ममूलं जगद् राजन् नान्यद् धर्माद् विशिष्यते।
धर्मश्चार्थेन महता शक्यो राजन् निषेवितुम्।।

वन०-33/48

महाराज! इस संसार का आधार धर्म ही है। धर्म से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। किन्तु पैसे से ही धर्म का पालन किया जा सकता है।

न चार्थो भैक्ष्यचर्येण नापि क्लैव्येन कर्हिचित्।
वेत्तुं शक्यः सदा राजन् केवलं धर्मबुद्धिना।।

वन-33/49

राजन्! अर्थ; भिक्षा मांगने या नपुंसकता से अथवा धर्म में ही मन लगाने से प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रतिषिद्धा हि ते याञ्चा यया सिद्ध्यति वै द्विजः।
तेजसैवार्थलिप्सायां यतस्व पुरुषर्षभ।।

वन०-33/50

नरश्रेष्ठ! आप तो स्वयं भीख मांगने से रोकते हैं। ब्राह्मण ही भिक्षा मांग सकता है। अतः आप तेज से ही अर्थ प्राप्त करने का यत्न कीजिये।

स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून् समागतान्।
धार्तराष्ट्रवनं पार्थ मया पार्थेन नाशय।।

वन०-33/52

हे युधिष्ठिर! अपने क्षत्रिय धर्म का पालन कीजिये, शत्रुओं का नाश कीजिये। मेरे और अर्जुन के द्वारा धृतराष्ट्र का वन कटवा दीजिये।

स क्षात्रं हृदयं कृत्वा त्यक्त्वेदं शिथिलं मनः।
वीर्यमास्थाय कौरव्य धुरमुद्वह धुर्यवत्।।

वन०-33/57

कुरुनन्दन! क्षत्रिय के बलवान हृदय से काम कीजिये। मन की शिथिलता दूर कीजिये। पराक्रम का आश्रय लेकर वीर पुरुष की भांति युद्ध का भार वहन कीजिये।

न हि केवल धर्मात्मा पृथिवीं जातु कश्चन।
पार्थिवो व्यजयद् राजन् न भूतिं न पुनः श्रियम्।।

वन०-33/58

राजन् जो कोरा धर्मवादी है वह कभी भी पृथिवी, सम्पत्ति या राज्यश्री नहीं पा सकता।

सत्त्वेन कुरुते युद्धं राजन् सुबलवानपि।
अप्रमादी महोत्साही सत्त्वस्थो भव पाण्डव।।

वन०-33/63

राजन्! अत्यधिक बलवान् पुरुष भी आत्मबल से ही युद्ध करता है। इसलिये आप प्रमाद त्यागकर महान् उत्साह और आत्मविश्वास से रहिये।

अर्थत्यागोऽपि कार्यः स्यादर्थं श्रेयांसमिच्छता।
बीजौपम्येन कौन्तेय मा ते भूदत्र संशयः।।

वन०-33/65

कुन्तीकुमार! जैसे किसान अधिक अन्न पैदा करने के लिये थोड़ा बीज पृथ्वी में बोता है वैसे ही अपनी वृद्धि चाहने वाले को अर्थ त्याग करना चाहिये।

एवमेव मनुष्येन्द्र धर्मं त्यक्त्वाल्पकं नरः।
बृहन्तं धर्ममाप्नोति स बुद्ध इति निश्चितम्।।

वन०-33/67

नरेश्वर! बड़े धर्म की प्राप्ति के लिये छोटा धर्म त्यागना बुद्धिमानी होती है।

अपेयात् किल भाः सूर्याल्लक्ष्मीश्चन्द्रमसस्तथा।
इति लोको व्यवसितो दृष्ट्वेमां भवतो व्यथाम्।।

वन०-33/74

लोग कह सकते हैं यदि धर्मराज युधिष्ठिर पर भी ऐसी विपत्ति पड़ सकती है तो प्रभा सूर्य को और कान्ति चन्द्रमा को भी छोड़ सकती है।

स भवान् रथमास्थाय सर्वोपकरणान्वितम्।
त्वरमाणोऽभिनिर्यातु विप्रेभ्योऽर्थविभावकः।।

वन०-33/84

आप शस्त्रास्त्रों से युक्त रथ में सवार होकर जल्दी ही युद्ध के लिये चलिये और विजय में प्राप्त धन ब्राह्मणों को दीजिये।

युधिष्ठिर : असंशयं भारत सत्यमेतद् यन्मां तुदन् वाक्यशलैः क्षिणोषि।
न त्वां विगर्हे प्रतिकूलमेव ममानयाद्धि व्यसनं व आगात्।।

वन०-34/2

हे भीम! तुम्हारा कहना सच है। तुमने मुझे अपने वाग्बाणों से जो बींधा है उसका मैं कुछ बुरा नहीं मानता। मेरी ही अनीति से तुम पर यह आपत्ति आई है।

अक्षांश्च दृष्ट्वा शकुनेर्यथावत् कामानुकूलानयुजो युजश्च।
शक्यो नियन्तुमभविष्यदात्मा मन्युस्तु हन्यात् पुरुषस्य धैर्यम्।।

वन०-34/5

शकुनि के सम और असम पासों को उसकी इच्छानुसार ठीक पड़ते देख मैं अपने मन को जुआ खेलने से रोक सकता तो यह अनर्थ न होता परन्तु क्रोधावेश मनुष्य के धैर्य को नष्ट कर देता है।

यन्तुं नात्मा शक्यते पौरुषेण मानेन वीर्येण च तात नद्धः।
न ते वाचो भीमसेनाभ्यसूये मन्ये तथा तद् भवितव्यमासीत्।।

वन०-34/6

प्रिय भीम! किसी विषय में आसक्त मन को पुरुषार्थ से, अभिमान से या बल से नहीं रोका जा सकता। मैं तुम्हारी बातों का बुरा नहीं मानता। मैं मानता हूँ यह होना ही था।

स नो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो न्यपातयद् व्यसने राज्यभिच्छन्।
दास्यं च नोऽगमयद् भीमसेन यत्राभवच्छरणं द्रौपदी नः।।

वन०-34/7

उस राजा धृतराष्ट्र के पुत्र ने हमारा राज्य पाने की इच्छा से हमें मुसीबत में डाल दिया। हमें दास तक बना लिया। ऐसे में द्रौपदी ने हमें उबारा।

त्वं चापि तद् वेत्थ धनंजयश्च पुनर्द्यूतायागतानां सभां नः।
यन्माऽब्रवीद् धृतराष्ट्रस्य पुत्र एकग्लहार्थं भरतानां समक्षम्।।

वन०-34/8

तुम और अर्जुन जानते हो कि दुबारा जुआ खेलने के लिये हमारे सभा में आने पर समस्त भरतवंशियों के सामने दुर्योधन ने एक ही दांव लगाने की यह शर्त रखी थी।

वने समा द्वादश राजपुत्र यथाकामं विदितमजातशत्रो।
अथापरं चाविदितं चरेथाः सर्वैः सह भ्रातृभिश्छद्मगूढः।।

वन 34/9

राजकुमार अजातशत्रु! हारने पर तुम्हें बारह वर्ष तक इच्छानुसार सब की जानकारी में वन में रहना होगा और फिर एक वर्ष तक गुप्त वेश में छिपे रहकर सभी भाइयों के साथ अज्ञातवास करना होगा।

तं सन्धिमास्थाय सतां सकाशे को नाम जह्यादिह राज्यहेतोः।
आर्यस्य मन्ये मरणाद् गरीयो यद्धर्ममुत्क्रम्य महीं प्रशासेत्।।

वन०-34/15

सज्जनों के बीच यह शर्त मानकर अब राज्य पाने के लिये उसे तोड़ना उचित नहीं। धर्म का उल्लंघन करके शासन करना श्रेष्ठ पुरुष के लिये मृत्यु से भी बुरा है।

प्रागेव चैवं समयक्रियायाः किं नाब्रवीः पौरुषमाविदानः।
प्राप्तं तु कालं त्वभिपद्य पश्चात् किं मामिदानीमतिवेलमात्थ।।

वन०-34/17

जब मैं यह शर्त मानने लगा था तो उससे पहले ही तुमने ये सब क्यों नहीं कहा था? जब शर्त मान ली और वनवास हो गया तब इस समय तुम कठोर बातें क्यों कह रहे हो?

न त्वद्य शक्यं भरतप्रवीर कृत्वा यदुक्तं कुरुवीर मध्ये।
कालं प्रतीक्षस्व सुखोदयस्य पक्तिं फलानामिव बीजवापः।।

वन34/19

कौरव वीरों के बीच मैंने जो शर्त मान ली है उसके बाद अब आक्रमण नहीं किया जा सकता। अत: सुखोदय के लिये उचित अवसर की उसी प्रकार प्रतीक्षा करो जैसे किसान बीज बोकर फसल पकने की प्रतीक्षा करता है।

मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां वृणे धर्ममममृताज्जीविताच्च।
राज्यं च पुत्राश्च यशो धनं च सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति।।

वन०-34/22

मेरी प्रतिज्ञा को तुम सच्ची प्रतिज्ञा मानो। मैं धर्म को अमृत और जीवन से भी बढ़कर मानता हूँ। राज्य, पुत्र, यश और धन ये सब सत्य के एक अंश के बराबर भी नहीं हैं।

भीम : **संधिं कृत्वैव कालेन ह्यन्तकेन पतत्रिणा।**
अनन्तेनाप्रमेयेण स्त्रोतसा सर्वहारिणा।। वन०-35/1
प्रत्यक्षं मन्यसे कालं मर्त्यः सन् कालबन्धनः।
फेनधर्मा महाराज फलधर्मा तथैव च।।

वन०-35/2

महाराज! आप झाग के समान नष्ट होने वाले, फल के समान कभी भी गिरने वाले तथा काल (मृत्यु) के बन्धन में बंधे हुए मरणधर्मा मनुष्य हैं। तो भी सबका अन्त करने वाले, बाण के समान तेज, अनन्त, अप्रमेय एवं जल के स्त्रोत के समान बहने वाले और सब कुछ समाप्त कर देने वाले काल को बीच में रखकर दुर्योधन के साथ सन्धि करके आप उस समय को अपनी आंखों के सामने आया हुआ मानते हैं। 13 वर्ष के समय में हम सब मर जायेंगे।

यो न यातयते वैरमल्पसत्त्वोद्यमः पुमान्।
अफलं जन्म तस्याहं मन्ये दुर्जातजायिनः।।

वन०-35/8

जिसका बल और उद्यम बहुत कम है, जो वैर का बदला नहीं ले सकता उस व्यक्ति का जन्म निष्फल है। ऐसे पुरुष का जन्म अत्यन्त घृणित है।

घृणी ब्राह्मणरूपोऽसि कथं क्षत्रेऽभ्यजायथाः।
अस्यां हि योनौ जायन्ते प्रायशः क्रूरबुद्धयः।।

वन०–35/20

आप तो दयालु ब्राह्मण जैसे हैं पता नहीं क्षत्रिय कुल में आप का जन्म कैसे हो गया। क्योंकि क्षत्रिय योनि में तो प्रायः क्रूर स्वभाव के पुरुष पैदा होते हैं।

धार्तराष्ट्रान् महाराज क्षमसे किं दुरात्मनः।
कर्तव्ये पुरुषव्याघ्र किमास्से पीठसर्पवत्।।

वन०–35/22

महाराज! दुष्ट धृतराष्ट्रपुत्रों को आप क्यों क्षमा कर रहे हैं। पुरुषसिंह! आप अपना कर्त्तव्य न कर अजगर सांप की तरह निश्चेष्ट क्यों बैठे हैं?

युधिष्ठिर : श्रुता मे राजधर्माश्च वर्णानां च विनिश्चयाः।
आयत्यां च तदात्वे यः पश्यति स पश्यति।।

वन०–36/2

मैंने राजधर्म और वर्णों के निश्चित सिद्धान्त सुने हैं किन्तु जो वर्त्तमान और भविष्य पर दृष्टि रखता है वही बुद्धिमान कहलाता है।

20
ब्रह्मोद्य–चर्चा

राजा जनक के दरबार में बन्दी नाम के विद्वान् थे जो ब्राह्मणों और विद्वानों को शास्त्रार्थ में हराकर उन्हें पानी में डुबा कर मरवा देते थे। अष्टावक्र बालक ही थे किन्तु कुशाग्र बुद्धि थे। उन्होंने बन्दी से शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया और राजा जनक के दरबार में पहुँच गये। बन्दी से शास्त्रार्थ करने से पहले अष्टावक्र और जनक के बीच शास्त्र चर्चा हुई। प्रस्तुत है अष्टावक्र और जनक का वार्तालाप तथा बन्दी के साथ अष्टावक्र का शास्त्रार्थ।

जनक : त्रिंशकद्वादशांशस्य चतुर्विंशतिपर्वणः।
यस्त्रिषष्टिशतारस्य वेदार्थं स परः कविः।।

वन०–133/24

जो पुरुष तीस अवयव, बारह अंश, चौबीस पर्व और तीन सौ साठ अरों वाले पदार्थ को जानता है वह उच्चकोटि का ज्ञानी है।

अष्टावक्र : चतुर्विंशतिपर्व त्वां षणनाभि द्वादशप्रधि।
तत् त्रिषष्टिशतारं वै चक्रं पातु सदागति।।

वन०–133/25

जिसमें 12 अमावस्या और 12 पूर्णिमारूपी चौबीस पर्व, ऋतु के रूप में छह नाभि, मासरूप बारह अंश और दिन रूप तीन सौ साठ अरे हैं वह निरन्तर घूमने वाला वर्ष रूप कालचक्र आपकी रक्षा करे।

जनक : वडवे इव संयुक्ते श्येनपाते दिवौकसाम्।
कस्तयोर्गर्भमाधत्ते गर्भं सुषुवतुश्च कम्।।

वन०–133/26

जो दो घोड़ियों की भांति मिली रहती है और जो बाज की तरह झपट्टा मारती हैं उन दोनों के गर्भ को कौन सा देवता धारण करता है तथा वे अपने गर्भ से किसे उत्पन्न करती है?

अष्टावक्र : मा स्म ते ते गृहे राजञ्छात्रवाणामपि ध्रुवम्।
वातसारथिरागन्ता गर्भं सुषुवतुश्च तम्।।

वन०-133/27

राजन्! वे दोनों तुम्हारे घर पर और शत्रुओं के घर पर भी कभी न गिरें। वायु जिनका सारथि है, वह मेघरूप देव ही इन दोनों के गर्भ को धारण करने वाला है और ये दोनों उस में मेघरूप गर्भ को उत्पन्न करती है।

दो तत्त्व जिन्हें वैदिक साहित्य में रयि और प्राण (प्रश्नोपनिषद्-1/4) कहा गया है तथा आधुनिक विज्ञान में पौजिटिव (धन) और नेगेटिव (ऋण) कहते हैं, वे स्वभाव से ही साथ रहने वाले हैं। इनका ही व्यक्त रूप विद्युत शक्ति है। इस शक्ति को मेघ गर्भ की भांति धारण किये रहते हैं। संघर्ष या टकराहट से यह विद्युत शक्ति प्रकट होती है और वृक्ष, पर्वत शिखर आदि ऊंची चीज का आकर्षण होने पर बाज की तरह गिरती है। जहाँ बिजली गिरती है वहाँ सब कुछ जला डालती है। इसीलिये कहा है कि वह कभी आपके और शत्रुओं के घर पर भी न गिरे। इन दो तत्त्वों की संयुक्त शक्ति से मेघ की उत्पत्ति होती है इसीलिये कहा गया है कि ये उस गर्भ रूपी मेघ को उत्पन्न करते हैं।

उपरोक्त व्याख्या के अतिरिक्त दूसरी व्याख्या यह भी है कि देवों की दो घोड़ियां, प्राण और अपान वायुओं की दो धाराएं हैं जो बाज की तरह झपटकर प्रत्येक प्राणी के शरीर में गर्भाधान के समय प्रवेश करती हैं। वायुरूपी प्राण जिसका सारथि है ऐसा वातसारथि जीव; प्राण और अपान रूपी शक्तियों को गर्भित करता है अर्थात् जीव के शरीर में आने पर ये शक्तियां भी आ जाती हैं। ये शक्तियां आकर उसी जीव को मानो उत्पन्न करती हैं अर्थात् प्राणों का आना ही जीव के अस्तित्त्व का प्रमाण है।

जनक : किंस्वित् सुप्तं न निमिषति किंस्विज्जातं न चोपति।
कस्य स्विद् हृदयं नास्ति किं स्विद् वेगेन वर्धते।।

वन०-133/28

सोते समय कौन पलक नहीं झपकता; पैदा होने के बाद कौन नही हिलता-डुलता, किसके हृदय नहीं होता और कौन एकदम बढ़ जाता है।

अष्टावक्र : मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति।
अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते।।

वन०-133/29

मछली सोते हुए पलक नहीं झपकती, अण्डा पैदा होकर हिलता नहीं, पत्थर में हृदय नहीं होता, नदी में एकदम बाढ़ आती है।

21

कुमार प्रश्न

बन्दी : एक एवाग्निर्बहुधा समिध्यते एकः सूर्यः सर्वमिदं विभाति।
एको वीरो देवराजोऽरिहन्ता यमः पितृणामीश्वरश्चैक एव।।
वन०-134/8

एक ही अग्नि कई प्रकार से प्रकाशित होती है। एक ही सूर्य इस सारे संसार को प्रकाशित करता है। शत्रुओं का नाश करने वाले देवराज इन्द्र ने सब असुरों को पछाड़ा। यमराज सब पितरों का राजा है।

अष्टावक्र : द्वाविन्द्राग्नी चरतो वै सखायौ द्वौ देवर्षी नारदपर्वतौ च।
द्वावश्विनौ द्वे रथस्यापि चक्रे भार्यापती द्वौ विहितौ विधात्रा।।
वन०-134/9

इन्द्र और अग्नि ये दो मित्र साथ रहते हैं, पर्वत और नारद दो देवर्षि हैं। दो अश्विनी कुमार हैं, रथ के दो पहिये होते हैं, तथा विधाता ने पति और पत्नी भी दो ही बनाये है, (क्योंकि अकेले से सृष्टि नहीं हुई।)

बन्दी : त्रिः सूयते कर्मणा वै प्रजेयं त्रयो युक्ता वाजपेयं वहन्ति।
अध्वर्यवस्त्रिसवनानि तन्वते त्रयो लोकास्त्रीणि ज्योतींषि चाहुः।।
134/10

यह सम्पूर्ण प्रजा अपने कर्मों के अनुसार देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी इन तीन योनियों में पैदा होती है। ऋक्, साम, यजु ये तीन वेद मिलकर वाजपेय आदि यज्ञों का निर्वहन करते हैं। अध्वर्यु लोग प्रातः सवन, मध्याह्न सवन और सायं सवन द्वारा तीन यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। स्वर्गलोक, मृत्यु लोक और नरक लोक ये लोक भी तीन ही हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीन ज्योति हैं।

अष्टावक्र : चतुष्टयं ब्राह्मणानां निकेतं चत्वारो वर्णा यज्ञमिमं वहन्ति।
दिशश्चतस्त्रो वर्णचतुष्टयं च चतुष्पदा गौरपि शश्वदुक्ता।।
वन०-134/11

ब्राह्मणों के लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण ही इस संसाररूपी यज्ञ का भार उठाते हैं। दिशाएं भी चार हैं तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और हल् ये चार वर्ण (अक्षर) हैं तथा गो अर्थात् वाणी के परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चार पाद हैं।

बन्दी : पञ्चाग्नयः पञ्चपदा च पंक्तिर्यज्ञाः पञ्चैवाप्यथ पञ्चेन्द्रियाणि।
दृष्टा वेदे पञ्चचूडाप्सराश्च लोके ख्यातं पञ्चनदं च पुण्यम्।।
वन०-134/12

यज्ञ की अग्नि पाँच होती हैं-गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य। पंक्ति छन्द भी आठ-आठ अक्षरों के पाँच पादों का होता है। यज्ञ भी पाँच ही हैं-देवयज्ञ, पितृयज्ञ, ऋषि यज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञ। पाँच ही ज्ञानेन्द्रियां हैं-त्वचा, श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा और नासिका। वेद में पाँच वेणी वाली अप्सरा का वर्णन है तथा संसार में विपाशा (व्यास), इरावती (रावी), वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा (चिनाव) और शतद्रु (सतलुज) इन पाँच नदियों वाला पंचनद (पंजाब) पवित्र प्रदेश है।

अष्टावक्र : षडाधाने दक्षिणामाहुरेके षट् चैवेमे ऋतवः कालचक्रम्।
षडिन्द्रियाण्युत षट् कृत्तिकाश्च षट् साद्यस्काः सर्ववेदेषु दृष्टाः।।
वन०-134/13

कुछ विद्वानों का मत है कि यज्ञाग्नि की स्थापना के समय छह गाएं दान करनी चाहियें। छह ऋतुओं वाला संवत्स्वरूपी कालचक्र है। मन सहित ज्ञानेन्द्रियां भी छह हैं। कृत्तिकाएं भी छह हैं और सभी वेदों में साद्यस्क नाम के छह यज्ञ ही हैं।

बन्दी : सप्त ग्राम्याः पशवः सप्त वन्याः सप्तच्छन्दांसि क्रतुमेकं वहन्ति।
सप्तर्षयः सप्त चाप्यर्हणानि सप्ततन्त्री प्रथिता चैव वीणा।।
वन०-134/14

गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ा, गदहा और कुत्ता ये सात ग्राम्य पशु हैं। जंगली पक्षु भी सात हैं-सिंह, बाघ, भेड़िया, हाथी, वानर, भालू और हिरन, खरगोश आदि। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती ये सात छन्द यज्ञ का निर्वाह करते हैं। सप्तर्षि नाम से प्रसिद्ध ऋषि भी सात हैं-मरीचि, अत्रि, पुलह,

पुलस्त्य, अग्नि, वसिष्ठ, क्रतु। पूजन के उपचार भी सात हैं–गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल। वीणा के भी सात तार होते हैं।

अष्टावक्र : अष्टौ शाणाः शतमानं वहन्ति तथाष्टपादः शरभः सिंहघाति।
अष्टौ वसूञ्शुश्रुम देवतासु यूपश्चाष्टास्त्रिर्विहितः सर्वयज्ञे ।।
वन०–134/12

तराजू में बंधी सन की आठ डोरियां ही सैकड़ों वस्तुएं तोलती हैं। सिंह को मारने वाले शरभ के भी आठ पैर होते हैं। देवताओं में वसु भी आठ ही हैं–धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। सभी यज्ञों में आठ कोणों के यूपों को ही बनाया जाता हैं।

बन्दी : नवैवोक्ताः सामिधेन्यः पितृणां तथा प्राहुर्नवयोगं विसर्गम्।
नवाक्षरा बृहती सम्प्रदिष्टा नवयोगो गणनामेति शश्वत्।।
134/16

पितृ यज्ञ में यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करने के लिये समिधा डालते हुए बोली जाने वाली सामिधेनी ऋचाएं नौ होती हैं। नाना-प्रकार का जो यह संसार दीख रहा है वह प्रकृति पुरुष, अहंकार, महत्तत्व तथा पंच तन्मात्राओं इन नौ पदार्थों के संयोग से बना है। बृहती छन्द के प्रत्येक चरण में नौ अक्षर होते हैं। एक से लेकर नौ तक के अंकों से ही गिनती की जाती है।

अष्टावक्र : दिशो दशोक्ताः पुरुषस्य लोके सहस्त्रमाहुर्दशपूर्णं शतानि।
दशैव मासान् बिभ्रति गर्भवत्यो दशैरका दश दाशा दशार्हाः।।
वन०–134/17

संसार में पुरुष के लिये दस दिशाएं कही गई हैं। दस सौ मिलकर एक हजार होते हैं। स्त्रियां दस मास तक गर्भ धारण करती हैं। निन्दा करने वाले भी दस ही होते हैं–रोगी, दरिद्र, शोक से व्याकुल, राजा से दण्ड पाया हुआ, शठ, खल, रोज़गार से रहित, पागल, ईर्ष्यालु और कामी पुरुष। शरीर की अवस्थाएं भी दस होती हैं–गर्भवास, जन्म, बचपन, कौमार, पौगण्ड, (पांच से सोलह वर्ष की अवस्था) कैशोर, यौवन, प्रौढ़, वार्धक्य तथा मृत्यु। पूजनीय पुरुष भी दस होते हैं :–अध्यापक, पिता, बड़ा भाई, राजा, मामा, श्वसुर, नाना, दादा, अपने से बड़ी आयु वाले कुटुम्बी तथा चाचा-ताऊ (पितृव्य)।

बन्दी : एकादशैकादशिनः पशूनामेकादशैवात्र भवन्ति यूपाः।
एकादश प्राणभृतां विकारा एकादशोक्ता दिवि देवेषु रुद्राः।।
वन०–138/18

जीवों के लिये ग्यारह विषय हैं–बोलना, ग्रहण करना, चलना-फिरना, मलत्याग करना और मैथुन सुख अनुभव करना ये पाँच कर्मेन्द्रियों के विषय हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं और इन सबका मनन करना मन का विषय है। इस तरह कुल मिलाकर प्राणियों के 11 विषय होते हैं। इन विषयों को बताने वाली भी ग्यारह इन्द्रियां हैं–पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन। यज्ञ में यूप भी ग्यारह होते हैं। प्राणियों के विकार भी ग्यारह होते हैं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, हर्ष, शोक, राग, द्वेष और अहंकार। स्वर्गीय देवताओं में रुद्र भी ग्यारह हैं–मृगव्याध, सूर्य, महायशस्वी-निर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, शत्रुसंतापन पिनाकी, दहन, ईश्वर, परमकान्तिमान कपाली, स्थाणु और भगवान भव।

अष्टावक्र : **संवत्सरं द्वादशमासमाहुर्जगत्याः पादो द्वादशैवाक्षराणि।**
द्वादशाहः प्राकृतो यज्ञ उक्तो द्वादशादित्यान् कथयन्तीह धीराः।।

वन०–134/19

एक वर्ष में बारह महीने होते हैं। जगती छन्द का प्रत्येक पाद बारह अक्षरों का होता है। प्राकृत यज्ञ बारह दिन का माना गया है। ज्ञानी पुरुष बारह आदित्य बताते हैं–धाता, मित्र, अर्यमा, शुक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु।

बन्दी : **त्रयोदशी तिथिरुक्ता प्रशस्ता त्रयोदशद्वीपवती मही च।**

त्रयोदशी तिथि अच्छी मानी गई है, और पृथिवी भी तेरह द्वीपों वाली है। इतना कहकर बन्दी चुप हो गया। आधे श्लोक को अष्टावक्र ने पूरा किया।

अष्टावक्र : **त्रयोदशाहानि ससारकेशी त्रयोदशादीन्यतिच्छन्दांसि चाहुः।।**

वन०–134/20

केशी नाम के दैत्य ने भगवान विष्णु के साथ तेरह दिन तक युद्ध किया था। वेद में अति शब्द वाले जो छन्द हैं उनका एक-एक पाद तेरह आदि अक्षरों वाला होता है जैसे अतिजगती छन्द का एक पाद तेरह अक्षरों का, अतिशक्वरी छन्द का एक पाद पन्द्रह अक्षरों का, अत्यष्टि का प्रत्येक पाद सत्रह अक्षरों का तथा अतिधृति छन्द का प्रत्येक पाद उन्नीस अक्षरों का होता है।

22

सर्प-युधिष्ठिर प्रश्नोत्तर

अर्जुन इन्द्र के पास पाँच वर्ष तक रहे। इन्द्र ने अर्जुन को दिव्यास्त्र चलाना सिखाया और अभेद्य दिव्य कवच, सोने की माला, दिव्य मुकुट और देवदत्त शंख दिये। इन्द्रभवन से अर्जुन कुबेर के चैत्ररथ वन में अपने भाइयों के पास लौट आये। वहाँ रहते हुए एक दिन भीम ने युधिष्ठिर से कहा 'वन में रहते हुए हमें दस वर्ष बीत गये हैं। अब हमें पृथ्वी पर लौटकर दुर्योधन को नष्ट करने का उपाय करना चाहिये।'

भीम की बात सुनकर युधिष्ठिर और सब भाई कुबेर के निवास स्थान गन्धमादन पर्वत से उतरे। वे बदरिकाश्रम, सुबाहू नगर, और विशाखयूप वन होते हुए सरस्वती नदी के तट पर द्वैतवन पहुँच गये। अब पाण्डवों के बनवास का बारहवाँ वर्ष शुरू हो गया था।

एक दिन द्वैतवन में शिकार खेलते हुए भीम की गरज सुनकर सांप डर गये। भीम साँपों का पीछा करने लगे। थोड़ी ही दूर जाकर भीम को बहुत बड़ा अजगर दिखाई दिया। अजगर ने भीम को अपनी कुण्डली में पूरी तरह जकड़ लिया। भीम के पूछने पर अजगर ने बताया कि मैं तुम्हारा पूर्वज राजा नहुष हूँ। ऋषियों का अपमान करने के कारण महर्षि अगस्त्य के शाप से अजगर बन गया हूँ। जो व्यक्ति मेरे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दे देगा वह मुझे इस शाप से मुक्ति दिला सकेगा।

भीम के वन से न लौटने पर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठे। वे महर्षि धौम्य के साथ भीम को ढूँढने के लिये चल पड़े। उन्होंने अजगर की कुण्डली में जकड़े पड़े भीम को देखा। उसे छुड़ाने के लिये युधिष्ठिर ने अजगर के प्रश्नों के उत्तर दिये–

सर्प : ब्राह्मणः को भवेद् राजन् वेद्यं किं च युधिष्ठिर।।

वन०-180/20

राजा युधिष्ठिर! ब्राह्मण कौन होता है ? जानने योग्य क्या है ?

युधिष्ठिर : सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।।

वन०-180/21

सत्य, दान, क्षमा, चरित्र, दया, तप और अहिंसा जिस व्यक्ति में हों वही ब्राह्मण है।

वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत्।
यत्र गत्वा न शोचन्ति भवतः किं विवक्षितम्।।

वन०-180/22

हे सर्प! जिसमें दुःख नहीं और सुख भी नहीं ऐसा परब्रह्म ही जानने योग्य है। जिसे जानकर मनुष्य शोक से तर जाता है। तुम्हारा क्या विचार है?

सर्प : चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च।
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर।।

वन०-180/23

समाज में चार वर्ण माने जाते हैं। तुमने जो सत्य, दान, क्षमा आदि गुण ब्राह्मणों के लक्षण कहे हैं, वे तो शुद्रों में भी होते हैं, तो क्या फिर क्या शूद्र भी ब्राह्मण कहलायेगा?

वेद्यं यच्चात्र निर्दुःखमसुखं च नराधिप।
ताभ्यां हीनं पदं चान्यन्न तदस्तीति लक्षये।।

वन०-180/24

राजन्! आपने सुख-दुःख से परे जिस जानने योग्य वस्तु की बात की मेरी समझ में तो ऐसी वस्तु नहीं है।

युधिष्ठिर : शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः।।

वन०-180/25

यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्।।

वन०-180/26

शूद्र में यदि सत्य, दान, क्षमा आदि सदाचार के लक्षण हों तो वह शूद्र नहीं रह जाता। ब्राह्मण में यदि ये लक्षण न हों तो वह ब्राह्मण नहीं होता। जिसमें चरित्र है वही ब्राह्मण है, जिसमें चरित्र नहीं, वह शूद्र है।

यदा पुनर्भवता प्रोक्तं न वेद्यं विद्यतीति च।
ताभ्यां हीनमतोऽन्यत्र पदमस्तीति चेदपि।।

वन०-180/27

एवमेतन्मतं सर्प ताभ्यां हीनं न विद्यते।
यथा शीतोष्णयोर्मध्ये भवेन्नोष्णं न शीतता।।

वन०-180/28

एवं वै सुखदुःखाभ्यां हीनमस्ति पदं क्वचित्।
एषा मम मतिः सर्प यथा वा मन्यते भवान्।।

वन०-180/29

आपने जो यह कहा कि सुख और दुःख इन दोनों से रहित (अतीत) कोई जानने योग्य वस्तु नहीं है। किन्तु मेरा यही विचार है कि एक ऐसा भी पद है जहां सुख और दुःख नहीं है जैसे शीत और उष्ण इन दोनों के बीच एक स्थिति ऐसी होती है जिसे न शीत कह सकते हैं, न उष्ण।

मर्प : यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः।
वृथा जातिस्दाऽऽयुष्मन् कृतिर्यावन्न विद्यते।।

वन०-180/30

राजन्! यदि आपके मत से चरित्र से ही ब्राह्मण माना जाता है तो बिना चरित्र या कर्म के जाति व्यर्थ ही हो जाती है।

युधिष्ठिर : जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
संकरात् सर्ववर्णनां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः।।

वन०-180/31

महामति सर्पराज! यहां मनुष्यों में जाति है ही कहां? ऐसी कौन सी जाति है जिसमें वर्ण संकर न हुआ हो? वर्णों की आपसी मिलावट के कारण जाति की ठीक-ठीक पहचान की बात कहना व्यर्थ है?

सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम्।।

वन०-180/32

इदमार्षं प्रमाणं च ये यजामह इत्यदि।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः।।

वन०-180/33

सब लोग सब प्रकार की स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में यह आर्ष प्रमाण भी मिलता है 'ये यजामहे' जाति का निश्चय न होने से श्रुति में यह कहा गया कि जो हम यज्ञ कर रहे हैं। इसलिये तत्त्वदर्शी विद्वानों के मत में शील ही मुख्य है। वाणी, मैथुन, जन्म और मृत्यु सब मनुष्यों में समान है।

कृतकृत्याः पुनर्वर्णा यदि वृत्तं न विद्यते।
संकरस्त्वत्र नागेन्द्र बलवान् प्रसमीक्षितः।।

वन०-180/36

यत्रेदानीं महासर्प संस्कृतं वृत्तमिष्यते।
तं ब्राह्मणमहं पूर्वमुक्तवान् भुजगोत्तम।।

वन०-180/37

जन्म के बाद वर्णों के जातकार्म आदि संस्कार किये भी जायें, किन्तु यदि किसी में चरित्र नहीं है तो उसे मैं वर्ण संकर ही मानूंगा। नागराज! इसीलिये मैंने पहले ही कहा था कि जिस व्यक्ति में निखरा हुआ चरित्र (संस्कृत वृत्त) है, वही ब्राह्मण है।

युधिष्ठिर : ब्रूहि किं कुर्वतः कर्म भवेद् गतिरनुत्तमा।।

वन०-181/1

बताओ, किस कर्म को करने से सर्वोत्तम गति मिल सकती है?

सर्प : पात्रे दत्त्वा प्रियाण्युक्त्वा सत्यमुक्त्वा च भारत।
अहिंसानिरतः स्वर्गे गच्छेदिति मतिर्मम।।

वन०-181/2

हे भारत! मेरा यही विचार है कि मनुष्य सत्पात्र को दान देकर, सत्य और मधुर बात कहकर और अहिंसा का पालन करके स्वर्ग प्राप्त करता है।

युधिष्ठिर : दानाद् वा सर्प सत्याद् वा किमतो गुरु दृश्यते।
अहिंसा प्रिययोश्चैव गुरुलाघवमुच्यताम्।।

वन०-181/3

हे सर्प! दान और सत्य इनमें से कौन बड़ा है? अहिंसा और प्रिय वाक्य इन दोनों में भी छोटा-बड़ा कौन है?

सर्प : दानं च सत्यं तत्त्वं वा अहिंसा प्रियमेव च।
एषां कार्यगरीयस्त्वाद् दृश्यते गुरुलाघवम्।।

वन०-181/4

दान, सत्य तत्त्व, अहिंसा और प्रियभाषण की छुटाई-बड़ाई कार्य की महत्ता (महत्त्व) के अनुसार होती है।

कस्माच्चिद् दानयोगाद् हि सत्यमेव विशिष्यते।
सत्यवाक्याच्च राजेन्द्र किंचिद् दानं विशिष्यते।।

वन०-181/5

महाराज! कभी दान से सत्य बड़ा होता है और कभी सत्य से दान भारी होता है।

एवमेव महेष्वास प्रियवाक्यान्महीपते।
अहिंसा दृश्यते गुर्वी ततश्च प्रियमिष्यते।।

वन०-181/6

इसी प्रकार कभी अहिंसा, प्रिय वचनों की अपेक्षा बड़ी होती है और कभी प्रियवचन, अहिंसा से बड़े होते हैं।

युधिष्ठिर : कथं स्वर्गे गतिः सर्प कर्मणां च फलं ध्रुवम्।
अशरीरस्य दृश्येत प्रब्रूहि विषयांश्च मे।।

वन०-181/8

सर्प! मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति और निश्चित रूप से मिलने वाला कर्मों का फल कैसे मिलता है? देह के अभिमान से रहित पुरुष की गति किस प्रकार होती है? इन सब बातों का उत्तर दीजिये।

सर्प : तिस्रो वै गतयो राजन् परिदृष्टाः स्वकर्मभिः।
मानुषं स्वर्गवासश्च तिर्यग्योनिश्च तत् त्रिधा।।

वन०-181/9

राजन्! जीवों की अपने कर्मों के अनुसार तीन गतियां देखी जाती हैं-स्वर्गलोक की प्राप्ति, मनुष्य योनि में जन्म या पशु-पक्षी आदि योनियों में जन्म। ये क्रमशः ऊर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति कहलाती हैं।

तत्र वै मानुषाल्लोकाद् दानादिभिरतन्द्रितः।
अहिंसार्थ समायुक्तैः कारणैः स्वर्गमश्नुते।।

वन०-181/10

जो जीव मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं वे यदि आलस्य छोड़कर दान, अहिंसा आदि अच्छे काम करते हैं तो उन्हें स्वर्ग मिलता हैं।

कामक्रोधसमायुक्तो हिंसालोभ समन्वितः।
मनुष्यत्वात् परिभ्रष्टस्तिर्यगयोनौ प्रसूयते।।

वन०-181/11

जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ और हिंसा में लगकर मानवता छोड़ बैठता है वह पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेता है।

जातो जातश्च बलवद् भुङ्क्ते चात्मा स देहवान्।
फलार्थस्तात निष्पृक्तः प्रजापालन भावनः।।

वन०-181/15

नित्ये महति चात्मानमवस्थापयते द्विजः।।

वन०-181/14

कर्मफल को चाहने वाला जीव बार-बार जन्म लेता है और सुख-दुःख भोगता है। किन्तु जो कार्यफल नहीं चाहता ऐसा विद्वान् अन्य जीवों की भलाई करता है और अपना मन नित्य परब्रह्म परमात्मा में लगाता है।

युधिष्ठिर : शब्दे स्पर्शे च रूपे च तथैव रसगन्धयोः।
तस्याधिष्ठानप्रव्यग्रो ब्रूहि सर्प यथातथम्।।

वन०-181/16

किं न गृह्णाति विषयान् युगपच्च महामते।।

वन०-181/17

सर्प! बताइये कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विषयों का आधार क्या है? मन एक साथ ही सब विषयों को क्यों नहीं ग्रहण करता?

सर्प : यदात्मद्रव्यमायुष्मन् देहसंश्रयणान्वितम्।
करणाधिष्ठितं भोगानुपभुङ्क्ते यथाविधि।।

वन०-181/18

आयुष्मान्! हमारे शरीर में बैठा हुआ आत्मा शरीर की इन्द्रियों के द्वारा संसार के भोग भोगता है।

ज्ञानं चैवात्र बुद्धिश्च मनश्च भरतर्षभ।
तस्य भोगाधिकरणे करणानि निबोध मे।।

वन०-181/19

भरतश्रेष्ठ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का आधार हमारा शरीर, ज्ञान, मन और बुद्धि हैं। आत्मा इन्हीं के द्वारा भोग भोगता है।

मनसा तात पर्येति क्रमशो विषयानिमान्।
विषयायतनस्थो हि भूतात्मा क्षेत्रमास्थितः।।

वन०-181/20

इन पांचों विषयों के आधार शरीर में बैठा हुआ जीवात्मा; मन के द्वारा इन विषयों का एक-एक करके उपयोग करता है।

तत्र चापि नरव्याघ्र मनो जन्तोर्विधीयते।
तस्माद् युगपदत्रास्य ग्रहणं नोपपद्यते।।

वन०-181/21

नरश्रेष्ठ! विषयों के उपभोग के समय प्राणी का मन किसी एक ही विषय पर लग जाता है इसीलिये वह एक साथ कई विषयों का उपभोग नहीं कर पाता है।

स आत्मा पुरुषव्याघ्र भ्रुवोरन्तरमाश्रितः।
बुद्धिं द्रव्येषु सृजति विविधेषु परावरम्।।

वन०-181/22

नरश्रेष्ठ! हमारा आत्मा भौहों के बीच से अनेक प्रकार के विषयों में बुद्धि को लगाता है।

युधिष्ठिर : मनसश्चापि बुद्धेश्च ब्रूहि मे लक्षणं परम्।।

वन०-181/24

मुझे मन और बुद्धि के लक्षण बताओ।

सर्प : बुद्धिरात्मानुगा तात उत्पातेन विधीयते।
तदाश्रिता हि संज्ञैषा बुद्धिस्तस्यैषिणी भवेत्।।

वन०-181/25

बुद्धिरुत्पद्यते कार्यान्मनस्तूत्पन्नमेव हि।
बुद्धेर्गुणविधानेन मनस्तद् गुणवद् भवेत्।।

वन०-181/26

तात! बुद्धि का कार्य यही है कि वह भोग और अपवर्ग पाने में आत्मा का साथ दे। बुद्धि; आत्मा की प्रेरणा से ही विषयों की ओर जाती है इसलिये कहा जाता है कि बुद्धि; आत्मा के पीछे चलती है। बुद्धि की शक्ति से ही मन किसी गुण में अर्थात् किसी विषय में लगता है। इस प्रकार शरीर का कोई काम प्रारम्भ होते ही बुद्धि उसमें लग जाती है और मन सदा प्रकट रहता ही है।

23
यक्ष प्रश्न

एक दिन पाण्डव द्वैतवन में बैठे थे। तब किसी ब्राह्मण की अरणी हिरण के सींग में अटक गई और वह उसे लेकर जंगल में भाग गया। ब्राह्मण ने पाण्डवों से सहायता करने को कहा। युधिष्ठिर और चारों भाई हथियार लेकर हरिण को मारने चल पड़े। पर वह ओझल हो गया। हरिण का पीछा करते-करते वे थक गये। उन्हें बहुत प्यास लग रही थी। युधिष्ठिर ने नकुल से कहा पेड़ पर चढ़कर देखो कि कहीं पास में पानी है। नकुल ने देखकर कहा 'थोड़ी ही दूरी पर बहुत से पेड़ दिखाई दे रहे हैं वहाँ पानी अवश्य होगा।' युधिष्ठिर ने उसे पानी लाने के लिये भेज दिया। नकुल, तालाब से ज्यों ही पानी लेने के लिये झुका कि उसे आकाश से सुनाई पड़ा 'पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पिओ।' नकुल ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और वह पानी पीते ही बेहोश हो गया। देर तक नकुल नहीं लौटा तब युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा। सहदेव की भी वही दशा हुई। अर्जुन और भीमसेन भी पानी लाने गये। वे भी नहीं लौटे। अन्त में युधिष्ठिर स्वयं गये। उन्होंने चारों भाइयों को बेहोश पड़े देखा। उनके शरीर पर कोई घाव नहीं था। वे समझ गये कि किसी यक्ष ने मेरे भाइयों की यह दशा की है। युधिष्ठिर जल पीने के लिये जब सरोवर में गये तो एक बगुले ने उनसे कहा 'पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पीना।'

युधिष्ठिर समझ गये कि यह कोई साधारण पक्षी नहीं अपितु कोई बड़ा देवता है। उन्होंने पूछा कि रुद्र, मरुत्, वसु इनमें से आप कौन हैं? इस पर यक्ष से स्वीकार किया कि तुमने ठीक पहचाना। मैं यक्ष हूँ बगुला नहीं। मैंने ही इन सबको बेहोश किया है। तभी युधिष्ठिर ने यक्ष को अपने सामने खड़े देखा। युधिष्ठिर ने कहा मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा।

यक्ष : **किं स्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः।**
कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्च प्रतितिष्ठति।।

वन०-313/45

सूर्य को कौन उठाता (उदय करता) है? उसके चारों ओर कौन साथी चलते हैं? कौन इसे अस्त करता है और यह किसके सहारे प्रतिष्ठित है?

युधिष्ठिर : **ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चराः।**
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति।।

वन०-313/46

ब्रह्म सूर्य को उदित करता है, देव उसके प्रिय साथी हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित होता है।

यक्ष : **केनस्विच्छ्रोत्रियो भवति केनस्विद् विन्दते महत्।**
केनस्विद् द्वितीयवान् भवति राजन् केन च बुद्धिमान्।।

वन०-313/47

राजन्! मनुष्य किससे श्रोत्रिय होता है? किससे महान की प्राप्ति होती है? व्यक्ति किससे साथी वाला बनता है, किससे वह बुद्धिमान होता है?

युधिष्ठिर : **श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत्।**
धृत्या द्वितीयवान् भवति बुद्धिमान् वृद्धसेवया।।

वन०-313/48

श्रुतज्ञान अर्थात् वेदाध्ययन से श्रोत्रिय बनता है। तप से महत्पद प्राप्त होता है। धैर्य से व्यक्ति दूसरे साथी वाला बनता है और वृद्धों की सेवा से बुद्धिमान।

यक्ष : **किं ब्राह्मणानां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव।**
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव।।

वन०-313/49

ब्राह्मणों में देवत्व क्या है? इनमें सत्पुरुषों जैसी बात कौन सी है? इनमें मनुष्यता क्या है? इनमें पाजीपन की कौन सी बात है?

युधिष्ठिर : **स्वाध्याय एष देवत्वं तप एषां सतामिव।**
मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव।।

वन०-313/50

स्वाध्याय ही ब्राह्मणों का देवत्व है। तप, सत्पुरुषों जैसी बात है। ये मर जाते हैं यही मनुष्यों जैसी बात है। उनका झगड़ना ही पाजीपन है।

यक्ष : किं क्षत्रियाणां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव।।

वन०-313/51

क्षत्रियों में देवत्व क्या है? इनमें सज्जनों जैसी बात क्या है? इनमें मनुष्यपने की क्या बात है और दुर्जनों जैसी बात क्या है?

युधिष्ठिर : इष्वस्त्रमेषां देवत्वं यज्ञ एषां सतामिव।
भयं वै मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव।।

वन०-313/52

बाण चलाना क्षत्रियों की देवताओं जैसी बात है। यज्ञ करना भला काम है। जब वे डरते हैं यही उनका मनुष्यपना है। जब वे कर्म छोड़ देते हैं यही उनका असत् रूप है।

यक्ष : किमेकं यज्ञियं साम किमेकं यज्ञियं यजुः।
का चैषां वृणुते यज्ञं कां यज्ञो नातिवर्तते।।

वन०-313/53

सब यज्ञों का एक साम क्या है? सब यज्ञों में ओतप्रोत एक यजु क्या है? कौन यज्ञ का वरण करती है? यज्ञ किस वस्तु का अतिक्रमण नहीं करता?

युधिष्ठिर : प्राणो वै यज्ञियं साम मनो वै यज्ञियं यजुः।
ऋगेका वृणुते यज्ञं तां यज्ञो नातिवर्तते।।

वन०-313/54

प्राण ही यज्ञों का साम है। मन ही यज्ञों का यजु है। ऋचा (वाक्-वाणी) यज्ञ का वरण करती है। यज्ञ, वाक् (ऋचा) का अतिक्रमण नहीं करता।

यक्ष : किंस्विदावपतां श्रेष्ठं किंस्विन्निवपतां वरम्।
किंस्वित् प्रतिष्ठमानानां किंचित् प्रसवतां वरम्।।

वन०-313/55

खेती करने वालों के लिये कौन सी वस्तु सर्वोत्तम है। नीचे जाने या बोने के लिये क्या श्रेष्ठ है? प्रतिष्ठित वस्तुओं में कौन उत्तम है? सन्तानोत्पादन करने वाले के लिये क्या श्रेष्ठ है?

युधिष्ठिर : वर्षमावपतां श्रेष्ठं बीजं निवपतां वरम्।
गावः प्रतिष्ठमानानां पुत्रः प्रसवतां वरम्।।

वन०-313/56

खेती करने वालों के लिये वर्षा सर्वोत्तम है। बोने के लिये बीज उत्तम है। प्रतिष्ठा प्राप्त वस्तुओं में गौ श्रेष्ठ है और सन्तानोत्पादन करने वालों के लिये पुत्र श्रेष्ठ है।

यक्ष : इन्द्रियार्थाननुभवन् बुद्धिमाँल्लोकपूजितः।
सम्मतः सर्वभूतानामुच्छ्वसन् को न जीवति।।

वन०-313/57

इन्द्रिय सुखों का अनुभव करता हुआ बुद्धिमान और संसार में पूजित ऐसा कौन है जो सांसें लेता हुआ भी नहीं जीता?

युधिष्ठिर : देवतातिथि भृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन् न स जीवति।।

वन०-313/58

देवता, अतिथि, सेवक, पितर और अपना जो व्यक्ति इन पांचों का पालन-पोषण नहीं करता वह सांस लेता हुआ भी नहीं जीता।

यक्ष : किंस्विद् गुरुतरं भूमेः किंस्विदुच्चतरं च खात्।
किंस्विच्छीघ्रतरं वायोः किंस्विद् बहुतरी तृणात्।।

वन०-313/59

पृथ्वी से भारी क्या है? आकाश से भी ऊँचा कौन है? वायु से भी तेज चलने वाला कौन है? तिनकों से भी अधिक (असंख्य) क्या हैं?

युधिष्ठिर : माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात्।।

वन०-313/60

माता की गरिमा पृथ्वी से भी भारी है। पिता आकाश से भी ऊँचा है। मन की गति वायु से भी तीव्र है और चिन्ता तिनकों से भी अधिक असंख्य हैं।

यक्ष : किंस्वित् सुप्तं न निमिषति किंस्विज्जातं न चोपति।
कस्यस्विद् हृदयं नास्ति किंस्विद् वेगेन वर्धते।।

वन०-313/61

कौन सोता हुआ पलक नहीं झपकता? कौन पैदा होकर हिलता नहीं। किसके हृदय नहीं होता और कौन एकदम बढ़ जाता है?

युधिष्ठिर : मत्स्यः सुप्तो न निमिषत्यण्डं जातं न चोपति।
अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते।।

वन०-313/62

मछली सोते हुए पलक नहीं झपकती। अण्डा पैदा होकर भी नहीं हिलता। पत्थर में हृदय नहीं होता। नदी में एकदम बाढ़ आ जाती है।

यक्ष : किंस्वित् प्रवसतो मित्रं किंस्विन्मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य च किं मित्रं किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः।।

वन०-313/63

परदेश में जाने वाले का कौन मित्र होता है? घर में रहते हुए मनुष्य का मित्र कौन है? रोगी का मित्र कौन है? मरने वाले का मित्र कौन है?

युधिष्ठिर : सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः।।

वन०-313/64

सार्थ (काफिला) या सहयात्रियों का दल प्रवासी का मित्र होता है। घर में पत्नी मित्र होती है। रोगी की मित्र दवाई होती है और मरने वाले का मित्र दान होता है।

यक्ष : कोऽतिथिः सर्वभूतानां किंस्विद् धर्मं सनातनम्।
अमृतं किंस्विद् राजेन्द्र किस्वित् सर्वमिदं जगत्।।

वन०-313/65

राजेन्द्र! सभी प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? यह सारा जगत् क्या है?

युधिष्ठिर : अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवामृतम्।
सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत्।।

वन०-313/66

अग्नि समस्त प्राणियों का अतिथि है। गाय का दूध अमृत है। अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन है और वायु यह सारा संसार है।

यक्ष : **किंस्विदेको विचरते जातः को जायते पुनः।**
किंस्विद्धिमस्य भैषज्यं किंस्विदावपनं महत्।।

वन०-313/67

कौन अकेला घूमता है? एक बार जन्म लेकर कौन फिर पैदा होता है? सर्दी का इलाज क्या है? और बीज बोने का बड़ा स्थान कौन सा है?

युधिष्ठिर : **सूर्य एको विचरते, चन्द्रमा जायते पुनः।**
अग्निर्हिमस्य भैषज्यं भूमिरावपनं महत्।।

वन०-313/68

सूर्य अकेला चलता है। चन्द्रमा बार-बार जन्म लेता है। अग्नि जाड़े-पाले का इलाज है और भूमि बीज बोने की सबसे बड़ी जगह है।

यक्ष : **किंस्विदेकपदं धर्म्यं किंस्विदेकपदं यशः।**
किंस्विदेकपदं स्वर्ग्यं किंस्विदेकपदं सुखम्।।

वन०-313/68

एक शब्द में धर्म का निचोड़ क्या है? एक शब्द में यश क्या है? एक शब्द में स्वर्ग प्राप्त कराने वाली वस्तु क्या है? एक शब्द में सुख क्या है?

युधिष्ठिर : **दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः।**
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम्।।

वन०-313/70

कर्म करने का कौशल धर्म का निचोड़ है। दान, यश का मूल है। सत्य, स्वर्ग का मूल है और चरित्र-सदाचार सुख का मूल है।

यक्ष : **किंस्विदात्मा मनुष्यस्य किंस्विद् दैवकृतः सखा।**
उपजीवनं किंस्विदस्य किंस्विदस्य परायणम्।।

वन०-313/71

मनुष्य की आत्मा क्या है? दैवकृत मित्र कौन है? मनुष्य का उपजीवन (जीविका का सहारा) क्या है? मनुष्य का आश्रय या सार क्या है?

युधिष्ठिर : **पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा।**
उपजीवनं च पर्जन्यो दानमस्य परायणम्।।

वन०-313/72

पुत्र मनुष्य की आत्मा है। पत्नी उसकी दैवकृत मित्र है। बादल मनुष्य की जीविका और जीवन का आधार है। दान मानव जीवन का सार है।

यक्ष : **धन्यानामुत्तमं किंस्विद् धनानां स्यात् किमुत्तमम्।**
लाभानामुत्तमं किं स्यात् सुखानां स्यात् किमुत्तमम्।।

वन०–313/73

सफलता के साधनों में उत्तम क्या है? धनों में उत्तम क्या है? लाभों में उत्तम क्या है? सुखों में उत्तम क्या है?

युधिष्ठिर : **धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं धनानामुत्तमं श्रुतम्।**
लाभानां श्रेयः आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा।।

वन०–313/74

कर्म का कौशल सफलता के साधनों में उत्तम है। धनों में श्रुत या विद्या सर्वश्रेष्ठ धन है। सबसे अच्छा लाभ निरोग रहना है और सन्तोष सर्वोत्तम सुख है।

यक्ष : **कश्च धर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः।**
किं नियम्य न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्यते।।

वन०–313/75

संसार में सबसे बड़ा धर्म क्या है? सदा फल देने वाला धर्म का मार्ग कौन सा है? किसे वश में रखकर शोक नहीं करना पड़ता? किसकी मित्रता नष्ट नहीं होती।

युधिष्ठिर : **आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयी धर्मः सदाफलः।**
मनो यम्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्न जीर्यते।।

वन०–313/76

दया संसार में सबसे बड़ा धर्म है। वेदोक्त धर्म सदा फल देने वाला है। मन को वश में रखकर पछताना नहीं पड़ता। सज्जनों की मैत्री नष्ट नहीं होती।

यक्ष : **किं नु हित्वा प्रियो भवति किं नु हित्वा न शोचति।**
किं नु हित्वार्थवान् भवति किं नु हित्वा सुखी भवेत्।।

वन०–313/77

किसे त्याग कर मनुष्य प्रिय बनता है? किसको त्याग कर पछताना नहीं पड़ता? किसको त्याग कर अर्थ मिलता है? किसे त्याग कर मनुष्य सुखी होता है।

युधिष्ठिर : **मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति।**
कामं हित्वार्थवान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत्।।

वन०–313/78

अभिमान को त्याग कर मनुष्य सबका प्रिय बन जाता है। क्रोध को त्यागने से पछतावा नहीं होता। काम को त्याग कर अर्थवान और लोभ त्याग कर सुखी होता है।

यक्ष : **किमर्थं ब्राह्मणे दानं किमर्थं नटनर्तके।**
किमर्थं चैव भृत्येषु किमर्थं चैव राजसु।।

वन०-313/79

ब्राह्मण को दान किसलिये दिया जाता है? नट और नर्तकों को दान क्यों देते हैं? नौकरों को और राजाओं को पैसा क्यों दिया जाता है?

युधिष्ठिर : **धर्मार्थं ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थं नटनर्तके।**
भृत्येषु भरणार्थं वै भयार्थं वै राजसु।।

वन०-313/80

ब्राह्मण को धर्म के लिये दान दिया जाता है। नट-नर्तकों को यश के लिये, नौकरों को पालन पोषण के लिये और राजा को डर कर पैसा दिया जाता है।

यक्ष : **केनस्विदावृतो लोकः केनस्विन्न प्रकाशते।**
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति।।

वन०-313/81

यह संसार किस वस्तु से ढका हुआ है? किसके कारण यह प्रकाशित नहीं होता? मनुष्य मित्रों को क्यों छोड़ देता है? वह किसलिये स्वर्ग नहीं जाता?

युधिष्ठिर : **अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते।**
लोभात् त्यजति मित्राणि संगात् स्वर्गं न गच्छति।।

वन०-313/82

यह संसार अज्ञान से ढका हुआ है। तमोगुण के कारण ज्ञान प्रकट नहीं होता। लोभ के कारण मनुष्य मित्रों को छोड़ देता है। मोह ममता के कारण स्वर्ग नहीं मिलता।

यक्ष : **मृतः कथं स्यात् पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतं भवेत्।**
श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात् कथं यज्ञो मृतो भवेत्।।

वन०-313/83

पुरुष किस बात से मृत समझा जाता है? किससे राष्ट्र की मृत्यु हो जाती है। श्राद्ध कैसे निष्प्राण हो जाता है? यज्ञ कैसे मृत हो जाता है।

युधिष्ठिर : **मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम्।**
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः।।

वन०-313/84

दरिद्र पुरुष मरे जैसा होता है। अराजकता से राष्ट्र मर जाता है। श्रोत्रिय के बिना श्राद्ध मृत होता है और दक्षिणा के बिना यज्ञ मृत होता है।

यक्ष : **का दिक् किमुदकं प्रोक्तं किमन्नं किं च वै विषम्।**
श्राद्धस्य कालमाख्याहि ततः पिब हरस्व च।।

वन०-313/85

दिशा कौन सी है? जल किसे कहते हैं? अन्न क्या है? विष क्या है? श्राद्ध का ठीक काल बताओ और पानी पियो तथा ले भी जाओ।

युधिष्ठिर : **सन्तो दिग् जलमाकाशं गौरन्नं प्रार्थना विषम्।**
श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः कथं व यक्ष मन्यसे।।

वन०-313/86

सन्त ही वह दिशा है जहाँ सबके लिये गति है। आकाश ही पानी का सच्चा स्रोत है। गाय ही अन्न का सच्चा सहारा है। किसी से मांगना विष है। जब अच्छा ब्राह्मण मिल जाये वही श्राद्ध का समय है। कहो यक्ष! तुम्हारी क्या सम्मति है?

यक्ष : **तपः किं लक्षणं प्रोक्तं को दमश्च प्रकीर्तितः।**
क्षमा च का परा प्रोक्ता का च ह्रीः परिकीर्तिता।।

वन०-313/87

तप का क्या लक्षण बताया गया है? दम किसे कहते हैं? उत्तम क्षमा क्या होती है? लज्जा किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर : **तपः स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दमः।**
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्यनिवर्तनम्।।

वन०-313/88

अपने धर्म का तत्परतापूर्वक पालन करना तप है। मन को वश में करना दम कहलाता है। गर्मी सर्दी आदि द्वन्द्वों को सहना क्षमा है। न करने वाले कामों से दूर रहना लज्जा है।

यक्ष : **किं ज्ञानं प्रोच्यते राजन् कः शमश्च प्रकीर्तितः।**
दया च का परा प्रोक्ता किं चार्जवमुदाहृतम्।।

वन०-313/89

राजन्! ज्ञान किसे कहते हैं? शम क्या होता है? उत्तम दया कौन सी होती है? सरलता किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर : ज्ञानं तत्त्वार्थसम्बोधः शमश्चित्तप्रशान्तता।
दया सर्वसुखैषित्वमार्जवं समचित्तता।।

वन०-313/90

परमात्मतत्त्व का बोध ही ज्ञान होता है। चित्त की शान्ति ही शम है। सबके सुख की इच्छा करना उत्तम दया है। मन में हर्ष विषाद न होना सरलता है।

यक्ष : कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां कश्च व्याधिरनन्तकः।
कीदृशश्च स्मृतः साधुरसाधुः कीदृशः स्मृतः।।

वन०-313/89

मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन है? समाप्त न होने वाला रोग क्या है? साधु किसे कहते हैं? असाधु कौन होता है?

युधिष्ठिर : क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः।
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निदयः स्मृतः।।

वन०-313/92

क्रोध; दुर्जय शत्रु है। लोभ कभी समाप्त न होने वाला रोग है। सभी प्राणियों का हित करने वाला साधु होता है। निर्दयी पुरुष असाधु होता है।

यक्ष : को मोहः प्रोच्यते राजन् कश्च मानः प्रकीर्तितः।
किमालस्यं च विज्ञेयं कश्च शोकः प्रकीर्तितः।।

वन०-313/93

राजन्! मोह किसे कहते हैं? मान क्या कहलाता है? आलस्य कैसे पता चलता है? शोक किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर : मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता।
धर्मनिष्क्रियताऽऽलस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते।।

वन०-313/94

ठीक धर्म को न जानना ही मोह है। आत्माभिमान ही मान होता है। धर्म का पालन न करना आलस्य है। अज्ञान ही शोक कहलाता है।

यक्ष : किं स्थैर्यं ऋषिभिःप्रोक्तम् किं च धैर्यमुदाहृतम्।
स्नानं च किं परं प्रोक्तं दानं च किमिहोच्यते।।

वन०-313/95

ऋषियों ने स्थिरता किसे कहा है? धैर्य क्या कहलाता है? परम स्नान क्या होता है? और दान किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर : स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं धैर्यमिन्द्रियनिग्रहः।
स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम्।।

वन०-313/96

अपने धर्म में स्थिर रहना ही स्थिरता है। इन्द्रियों को वश में रखना ही धैर्य है। मन की अपवित्रता का त्याग स्नान और प्राणियों की रक्षा करना ही दान कहलाता है।

यक्ष : कः पण्डितः पुमाञ्ज्ञेयो नास्तिकः कश्च उच्यते।
को मूर्खः कश्च कामः स्यात् को मत्सर इति स्मृतः।।

वन०-313/97

कौन पुरुष पण्डित होता है? नास्तिक किसे कहते हैं? मूर्ख कौन है? काम क्या है? मत्सर क्या है?

युधिष्ठिर : धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो नास्तिको मूर्ख उच्यते।
कामः संसारहेतुश्च हृत्तापो मत्सरः स्मृतः।।

वन०-313/98

धर्म के जानने वाले को पण्डित समझना चाहिये। मूर्ख नास्तिक कहलाता है। जन्म-मरण रूप संसार की कारण वासना को काम कहा जाता है। और हृदय की जलन ही मत्सर कहलाती है।

यक्ष : कोऽहङ्कार इति प्रोक्तः कश्च दम्भः प्रकीर्तितः।
किं तद् दैवं परं प्रोक्तं किं तत् पैशुन्यमुच्यते।।

वन०-313/99

अहंकार किसे कहते हैं? दम्भ क्या होता है? परम दैव क्या है? और पैशुन्य क्या होती है?

युधिष्ठिर : महाज्ञानमहङ्कारो दम्भो धर्मो ध्वजोच्छ्रयः।
दैवं दानफलं प्रोक्तं पैशुन्यं परदूषणम्।।

वन०-313/100

महान् अज्ञान को अहंकार कहते हैं। अपने को झूठे ही धर्मात्मा कहना दम्भ होता है। दान का फल दैव (भाग्य) होता है। दूसरों को दोष देना चुगली है।

यक्ष : धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्पर विरोधिनः।
एषां नित्यविरुद्धानां कथमेकत्र संगमः।।

वन०-313/101

धर्म, अर्थ और काम ये एक दूसरे के विरोधी हैं। इन तीनों नित्य विरुद्ध पुरुषार्थों का एक जगह कैसे संयोग हो सकता है?

युधिष्ठिर : यदा धर्मश्च भार्या च परस्परवशानुगौ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगमः।।

वन०-313/102

जब धर्म और पत्नी ये दोनों आपस में विरोधी न रहकर मनुष्य के अधीन हो जाते हैं तब धर्म, अर्थ और काम एक साथ रहते हैं। जिस पुरुष की धर्मानुकूल पतिव्रता पत्नी होती है वह कभी दरिद्र नहीं होता।

यक्ष : अक्षयो नरकः केन प्राप्यते भरतर्षभ।
एतन्मे पृच्छतः प्रश्नं तच्छीघ्रं वक्तुमर्हसि।।

वन०-313/103

भरतश्रेष्ठ! अक्षय नरक किसे मिलता है? मेरे इस प्रश्न का जल्दी उत्तर दो।

युधिष्ठिर : ब्राह्मणं स्वयमाहूय याचमानमकिञ्चनम्।
पश्चान्नास्ति यो ब्रूयात् सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्।।

वन०-313/104

जो व्यक्ति थोड़ी सी भिक्षा मांगने वाले ब्राह्मण को बुलाकर फिर उसे भिक्षा नहीं देता ऐसा व्यक्ति सदा नरक में रहता है।

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु मिथ्या यो वै द्विजातिषु।
देवेषु पितृधर्मेषु सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्।।

वन०-313/105

जो व्यक्ति वेदों, शास्त्रों, ब्राह्मणों, देवताओं और पितृ पालन धर्मों के प्रति आस्था नहीं रखता वह सदा नरक में रहता है।

विद्यमाने धने लोभाद् दानभोगविवर्जितः।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात् सोऽक्षयं नरकं व्रजेत्।।

वन०-313/106

जो व्यक्ति धन होने पर भी लोभ के कारण दान नहीं करता और धन का उपभोग नहीं करता, तथा मांगने वालों से कह देता है कि मेरे पास धन नहीं है। वह सदा नरक में रहता है।

यक्ष : राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन च।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम्।।

वन०-313/107

राजन्! कुल, चाल-चलन, स्वाध्याय और शास्त्रों की चर्चा सुनना इनमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व पता चलता है? यह निश्चय कर बताओ।

युधिष्ठिर : शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्याये न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः।।

वन०-313/108

प्रिय यक्ष! सुनो! ब्राह्मण के कुल में पैदा होने से, स्वाध्याय करने से या शास्त्रों के सुनने से व्यक्ति ब्राह्मण नहीं होता सदाचार युक्त व्यक्ति ब्राह्मण होता है।

वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।

वन०-313/109

हमें अपने सदाचार और चरित्र की प्रयत्न के साथ रक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मण को तो इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये। जिसका चरित्र नष्ट नहीं होता उसका ब्राह्मणत्व भी नष्ट नहीं होता। सदाचार नष्ट हो जाने पर व्यक्ति स्वयं भी नष्ट हो जाता है।

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः।।

वन०-313/110

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले तथा शास्त्रों का विचार करने वाले ये सब मूर्ख और व्यसनी हैं। वही व्यक्ति पण्डित है जो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है।

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः।।

वन०-313/111

चारों वेद पढ़ा हुआ दुराचारी व्यक्ति शूद्र ही कहलाता है। नित्य यज्ञ करने वाला और जितेन्द्रिय व्यक्ति ही ब्राह्मण होता है।

यक्ष : प्रियवचनवादी किं लभते विमृशितकार्यकरः किं लभते।
बहुमित्रकरः किं लभते धर्मरतः किं लभते कथय।।

वन०-313/112

मधुर वचन बोलने वाले को, सोच विचार कर काम करने वाले को, बहुत से मित्र बनाने वाले को और धर्मपालन करने वाले को क्या मिलता है? बताओ।

युधिष्ठिर : प्रियवचनवादी प्रियो भवति विमृशितकार्यकरोऽधिकं जयति।
बहुमित्रकरः सुखं वसते यश्च धर्मरतः स गतिं लभते।।

वन०-313/113

मीठा बोलने वाला सबका प्रिय होता है। सोच समझ कर काम करने वाले को अधिक सफलता मिलती है। बहुत मित्रों वाला सुखी रहता है। धर्मनिष्ठ की सद्‌गति होती है।

यक्ष : को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थाः का च वार्तिका।
ममैतांश्चतुरः प्रश्नान् कथयित्वा जलं पिब।।

वन०-313/114

सुखी कौन है? आश्चर्य क्या है? मार्ग क्या है? वार्ता क्या है? मेरे इन चारों प्रश्नों का उत्तर देकर जल पिओ।

युधिष्ठिर : पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते।।

वन०-313/115

हे जलचर यक्ष! जिस पुरुष पर कर्ज नहीं है, जो परदेश में नहीं रहता, वह चाहे पांचवें या छठे दिन साग-पात पकाकर अपने घर ही रहता हो वही सुखी है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

वन०-313/116

इस संसार में प्रतिदिन प्राणी यमलोक जा रहे हैं किन्तु जीवित प्राणी सदा जीते रहना चाहते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है?

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।।

वन०-313/117

तर्क कहीं समाप्त नहीं हो पाता, शास्त्रों में भी अलग-अलग बातें लिखी हैं। ऐसा कोई एक ऋषि नहीं है जिसकी बात प्रमाण मानी जाये, धर्म का तत्त्व गुफा में रखा हुआ है अर्थात् इसे कोई समझ नहीं पाता। अतः जिस रास्ते पर महापुरुष चलते रहे हैं वही मार्ग है।

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालःपचतीति वार्त्ता।।

वन०-313/118

इस संसार रूपी महामोह से भरे कड़ाह में काल सब प्राणियों को पकाकर नष्ट कर रहा है। प्राणियों को पकाने के लिये काल सूर्य से अग्नि का काम ले रहा है, रात और दिन इस आग में ईंधन बने हुए हैं और महीने तथा ऋतुएँ काल की करछी हैं। यही असली बात है।

यक्ष : व्याख्याता मे त्वया प्रश्ना याथातथ्यं परंतप।
पुरुषं त्विदानीं व्याख्याहि यश्च सर्वधनी नरः।।

वन०-313/119

शत्रुतापन्! तुमने मेरे सभी प्रश्नों के ठीक उत्तर दिये हैं। अब बताओ कि पुरुष क्या है और सबसे अधिक धनवान कौन है?

युधिष्ठिर : दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्येन कर्मणा।
यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरुष उच्यते।।

वन०-313/120

अच्छे कर्म का शब्द पृथिवी को छूकर आकाश को छू लेता है। उस पुण्य कर्म की ध्वनि जब तक सुनाई देती है तब तक पुरुष कहलाता है।

तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः।।

वन०-313/121

जिस पुरुष के लिये प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख और भूत-भविष्य दोनों ही एक जैसे होते हैं वही व्यक्ति सबसे बड़ा धनी होता है।

भूतभव्यभविष्येषु निःस्पृहः शान्तमानसः।
सुप्रसन्नः सदायोगी स वै सर्वधनीश्वरः।।

वन०-313/दा०पा०

जो भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों में कुछ नहीं चाहता, सदा शान्त चित्त, सुप्रसन्न और योगयुक्त है वही धनपति है।

यक्ष : व्याख्यातः पुरुषो राजन् यश्च सर्वधनी नरः।
तस्मात् त्वमेकं भ्रातॄणां यमिच्छसि स जीवतु।।

वन०-313/122

राजन्! तुमने सबसे धनी पुरुष की ठीक व्याख्या बता दी। इसलिये अपने इन भाइयों से जिस एक को चाहो वही जीवित हो सकता है।

युधिष्ठिर : श्यामो य एष रक्ताक्षो बृहच्छाल इवोत्थितः।
व्यूढोरस्को महाबाहुर्नकुलो यक्ष जीवतु।।

वन०-313/123

यक्ष! यह जो सांवला, अरुण नेत्रों वाला, ऊँचे शाल की तरह लम्बा, चौड़ी छाती वाला और दीर्घबाहु नकुल है वह जीवित हो जाये।

यक्ष : प्रियस्ते भीमसेनोऽयमर्जुनो वः परायणम्।
स कस्मान्नकुलं राजन् सापत्नं जीवमिच्छसि।।

वन०-313/124

राजन्! यह तुम्हारा प्रिय भाई भीम है। यह तुम्हारा सहारा अर्जुन है। इन्हें छोड़कर तुम सौतेले भाई नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो?

यस्य नागसहस्त्रेण दशसंख्येन वै बलम्।
तुल्यं तं भीममुत्सृज्य नकुलं जीवमिच्छसि।।

वन०-313/125

जिसमें दस हज़ार हाथियों जितना बल है उस भीमसेन को छोड़कर तुम नकुल को ही क्यों जिलाना चाहते हो?

यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः समुपासते।
अर्जुनं तमपाहाय नकुलं जीवमिच्छसि।।

वन०-313/127

जिसके बाहुबल का सभी पाण्डवों को भरोसा है उस अर्जुन को छोड़कर तुम नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो?

युधिष्ठिर : धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

वन०-313/128

यदि धर्म को नष्ट किया जाता है तो नष्ट हुआ धर्म ही हमें नष्ट कर देता है। यदि धर्म की रक्षा की जाये तो वह हमारी भी रक्षा करता है। इसीलिये मैं धर्म को नहीं छोड़ता कि कहीं नष्ट होकर वह मेरा भी नाश न कर दे।

आनृशंस्यं परो धर्मः परमार्थाच्च मे मतम्।
आनृशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु।।

वन०-313/129

यक्ष! दया ही सबसे बड़ा धर्म है। इसीलिये मैं सबके प्रति दया और समानता का बर्ताव करना चाहता हूँ। अतः नकुल जीवित हो जाये।

धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु।।

वन०-313/130

यक्ष! लोग मुझे धर्मात्मा समझते हैं। मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूँगा। नकुल जीवित हो जाये।

कुन्ती चैव तु माद्री च द्वे भार्ये तु पितुर्मम।
उभे सपुत्रे स्यातां वै इति मे धीयते मतिः।।

वन०-313/131

मेरे पिता की कुन्ती और माद्री दो पत्नियां हैं। वे दोनों ही पुत्रवती बनी रहें ऐसा मेरा विचार है।

यथा कुन्ती तथा माद्री विशेषो नास्ति मे तयोः।
मातृभ्यां सममिच्छामि नकुलो यक्ष जीवतु।।

वन०-313/132

यक्ष! मेरे लिये जैसी कुन्ती है वैसी ही माद्री भी है। इन दोनों माताओं में मैं कोई भेदभाव नहीं करता। अतः नकुल जीवित हो जाये।

यक्ष : तस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परं मतम्।
तस्मात् ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षभ।।

वन०-313/133

भरतश्रेष्ठ! तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया को श्रेष्ठ माना है। अतः तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायें।

24
पाण्डवों का अज्ञातवास

वनवास के 12 वर्ष बीतने पर पाण्डवों ने तेरहवां वर्ष राजा विराट के यहाँ अज्ञातवास में बिताया। पाण्डव द्वैतवन से चलकर यमुना के दाहिने किनारे से आगे बढ़ते हुए विराट की राजधानी पहुँचे। वहाँ घने वृक्ष के ऊपर अर्जुन ने हथियार छिपा दिये। पाण्डवों ने सलाह की कि वे अपने को किस रूप में छिपा कर रहेंगे। युधिष्ठिर ने कहा कि मैं कंक नाम रख कर और ब्राह्मण बनकर राजा की सभा में जुआ आदि खिलाने का काम करूँगा। भीम ने कहा मैं बल्लव नाम का रसोइया बनकर राजा के लिये भोजन तैयार करूँगा। उत्सवों के अवसर पर जो पहलवान आयेंगे उनके साथ कुश्ती लड़ूँगा और हाथियों तथा सांडों को वश में करने का काम भी करूँगा। अर्जुन ने कहा मैं नपुंसक बनकर बृहन्नला नाम रखूंगा और अन्तःपुर की रानियों को गाना, बजाना, नाचना सिखाऊंगा। नकुल ने कहा कि मैं ग्रन्थिक नाम रखकर राजा की घुड़साल की देखभाल और घोड़ों का इलाज करूँगा। सहदेव ने कहा 'मैं तन्तिपाल नाम रखकर राजा की गौओं का हिसाब-किताब रखूंगा। अब युधिष्ठिर ने द्रौपदी की ओर देखकर कहा इस राजकुमारी ने कोई काम कभी नहीं किया। किन्तु यह हार बनाना, श्रृंगार करना तथा केशों का संस्कार करना जानती है। यह सुनकर द्रौपदी ने कहा "सैरन्ध्री स्त्रियाँ रखैल नहीं होतीं, वे केवल दासी का काम करती हैं। इसलिये मैं सैरन्ध्री बनकर रानी सुदेष्णा के पास रहूँगी और उनके केशों आदि का श्रृंगार किया करूँगी।

यह निश्चय करके पाण्डव नगर में पहुँचे और अपनी योजना के अनुसार अपना-अपना परिचय देकर राजा के यहाँ काम करने लगे। द्रौपदी अपने घुंघराले केशों का जूड़ा बांधे हुए मैले कपड़े पहन कर महल के आगे से जा रही थी कि रानी सुदेष्णा ने उसे बुला कर उसका परिचय पूछा। द्रौपदी ने कहा मैं सैरन्ध्री दासी हूँ। केश संवारना, चन्दन लगाना और हार गूंथना जानती हूँ। पहले मैं कृष्ण की पटरानी

सत्यभामा और पाण्डवों की स्त्री द्रौपदी की सेवा करती थी। मेरा नाम मालिन है। रानी ने द्रौपदी को रखना तो चाहा किन्तु उसका रूप देखकर सोचने लगी कि इसके कारण महल में कोई झंझट न खड़ा हो जाये। किन्तु द्रौपदी ने कहा 'राजा विराट या कोई दूसरा पुरुष मुझे नहीं पा सकता क्योंकि पांच गन्धर्व मेरे पति हैं जो मेरी रक्षा करते हैं। यदि कोई मुझे खाने को झूठा भोजन न दे और पैर धोने को न कहे तो मेरे पति प्रसन्न रहते हैं। यदि कोई मुझे बुरी नज़र से देखेगा तो मेरे पति उसी रात उसे ठिकाने लगा देंगे।

सुदेष्णा ने उसकी बातें मानकर उसे रख लिया।

पाण्डवों को विराट के यहाँ छिपकर रहते हुए दस महीने बीत गये। सुदेष्णा की सेवा करती हुई द्रौपदी जैसे-तैसे अपना समय काट रही थी कि विराट का सेनापति कीचक उस पर मोहित हो गया किन्तु द्रौपदी ने कीचक की बात नहीं मानी। कीचक ने अपनी बहिन रानी सुदेष्णा से अपने मन की बात कही। सुदेष्णा ने कीचक को सलाह दी कि वह पूर्णिमा का उत्सव करे। मैं इस अवसर पर सैरन्ध्री को तुम्हारे पास शराब लाने के लिये भेजूंगी।

कीचक ने बहिन की सलाह से उत्सव का आयोजन किया और सुदेष्णा ने सैरन्ध्री को कीचक के निवास पर जाने को कहा। द्रौपदी ने कीचक के पास जाने से इन्कार कर दिया। किन्तु सुदेष्णा ने उसे विश्वास दिलाया कि कीचक उसके साथ गलत व्यवहार नहीं करेगा। तब द्रौपदी सवेरे कीचक के घर जाने के लिये मान गई। उसे देखते ही कीचक अपने को रोक नहीं सका। उसने जैसे ही द्रौपदी का हाथ पकड़ा, द्रौपदी ने कीचक को झिड़क कर गिरा दिया और दौड़ती हुई राजा के पास गई। कीचक ने राजा के सामने द्रौपदी को लात मारी। युधिष्ठिर और भीम ने द्रौपदी का यह हाल देखा। भीम को गुस्सा आ गया किन्तु युधिष्ठिर ने उसे कुछ करने से रोक दिया। द्रौपदी ने राजा से न्याय की प्रार्थना की किन्तु राजा ने कहा तुम दोनों के बीच क्या झगड़ा हुआ है इसे जाने बिना मैं क्या निर्णय दूँ। युधिष्ठिर और सभासदों ने समझा बुझा कर द्रौपदी को सुदेष्णा के पास भेज दिया।

इस घटना से द्रौपदी का मन बहुत दुःखी था। वह उसी रात भीमसेन के पास पहुँची और उसे जगाकर अपना दुःखड़ा सुनाया, हे भीम! युधिष्ठिर जिसका पति हो क्या वह कभी शोक रहित हो सकती है? कौरवों की सभा में दुःशासन ने, वनवास में जयद्रथ ने और अब कीचक ने मेरा अपमान किया है। यदि कीचक मुझे इसी तरह सताता रहा तो मैं प्राण छोड़ दूंगी। यदि कल सवेरा होने तक कीचक जीवित रह गया तो मैं विष पीकर मर जाऊंगी, पर कीचक के हाथ नहीं पड़ूंगी। यह सुनकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि मैं आज रात ही कीचक को मार डालूंगा।

25
द्रौपदी विलाप

द्रौपदी : येषां वैरी न स्वपिति षष्ठेऽपि विषये वसन्।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्।।

विराट०-16/22

मेरे पतियों के जिस वैरी को छठे दूर देश में रहने पर भी नींद नहीं आती उन्हीं की मानिनी पत्नी मुझको सूतपुत्र कीचक ने लात मारी है।

ये दद्युर्न च याचेयुर्ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्।।

विराट०-16/23

मेरे पति सदा देते हैं किसी से कुछ मांगते नहीं। वे ब्राह्मणों के भक्त और सत्य बोलने वाले हैं। उन्हीं की मानिनी पत्नी मुझको कीचक ने लात मारी है।

येषां दुन्दुभिनिर्घोषो ज्याघोषः श्रूयतेऽनिशम्।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्।।

विराट०-16/24

जिनके धनुष की टंकार दुन्दुभियों की गम्भीर ध्वनि की भांति रात-दिन सुनायी देती है उन्हीं की मानिनी पत्नी मुझको सूतपुत्र ने लात भारी है।

ये च तेजस्विनो दान्ता बलवन्तोऽतिमानिनः।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्।।

विराट०-16/25

जो तेजस्वी, जितेन्द्रिय, बलशाली और अत्यन्त मानी हैं उनकी मुझ मानिनी पत्नी को सूतपुत्र कीचक ने लात मारी है।

सर्वलोकमिमं हन्युर्धर्मपाशसितास्तु ये।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्।।

विराट०-16/26

मेरे पति इस सारे संसार को नष्ट कर सकते हैं किन्तु वे धर्म के बन्धन में बंधे हैं। उन्हीं की मुझ मानिनी पत्नी को कीचक ने लात मारी है।

अशोच्यत्वं कुतस्तस्य यस्या भर्ता युधिष्ठिरः।
जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि।।

विराट०-18//1

जिस स्त्री का पति युधिष्ठिर हो क्या वह कभी शोक से छुटकारा पा सकती है? भीम, तुम सब कुछ जानकर भी मुझसे क्या पूछते हो?

यन्मां दासीप्रवादेन प्रातिकामी तदानयत्।
सभापरिषदो मध्ये तन्मां दहति पाण्डव।।

विराट०-18/2

दुर्योधन के नौकर के रूप में दुःशासन मुझे घसीटता हुआ राजसभा में लाया था। उसने मुझे सभासदों के बीच दासी कहा था। अपमान की वह आग मुझे आज भी जला रही है।

पार्थिवस्य सुता नाम का नु जीवति मादृशी।
अनुभूयेदृशं दुःखमन्यत्र द्रौपदीं प्रभो।।

विराट०-18/3

स्वामिन्! मुझ द्रौपदी को छोड़कर ऐसी कौन राजकुमारी है जो इतने दुःख भोगने पर भी जी रही हो।

वनवासगतायाश्च सैन्धवेन दुरात्मना।
परामर्शो द्वितीयो वै सोढुमुत्सहते तु का।।

विराट०-18/4

वनवास में जाने पर सिन्धुराज जयद्रथ दुष्ट ने मुझे घसीटा। मेरा दूसरी बार अपमान किया गया। इन अपमानों को कौन पत्नी सह सकती है?

मत्स्यराजसमक्षं तु तस्य धूर्तस्य पश्यतः।
कीचकेन परामृष्टा का नु जीवति मादृशी।।

विराट०-18/5

मत्स्यदेश के राजा के सामने, मेरे जुआरी पति की आंखों के सामने कीचक ने मुझे लात मारी। इसे सहकर मेरी जैसी कौन राजकुमारी जीवित रह सकती हैं?

एवं बहुविधैः क्लेशैः क्लिश्यमानां च भारत।
न मां जानासि कौन्तेय किं फलं जीवितेन मे।।

विराट०-18/6

कुन्तीपुत्र भरत! मैं इसी तरह के अनेक दुःख भोग रही हूँ। क्या तुम यह सब नहीं जानते? फिर मेरे जीने से क्या लाभ है?

योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत।
सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः।।

विराट०-18/7

पुरुषसिंह भरत! राजा विराट का यह सेनापति कीचक बहुत ही खोटी बुद्धि का है। यह राजा का साला भी है।

स मां सैरन्ध्रिवेषेण वसन्तीं राजवेश्मनि।
नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै।।

विराट०-18/8

राजमहल में सैरन्ध्री के वेश में रहती हुई मुझसे यह दुष्ट कीचक रोज यही कहता है कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ।

तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन्।
कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते।।

विराट०-18/9

शत्रुहन्ता! उस मार डालने योग्य पापी कीचक द्वारा प्रतिदिन मुझसे अपनी पत्नी बनने की बात सुनते-सुनते मेरा हृदय पके फल की तरह फटा जा रहा है।

यथा यूथपतिर्मत्तः कुञ्जरः षष्टिहायनः।
भूमौ निपतितं बिल्वं पद्भ्यामाक्रम्य पीडयेत्।।
तथैव च शिरस्तस्य निपात्य धरणीतले।
वामेन पुरुषव्याघ्र मर्द पादेन पाण्डव।।

विराट०-18/9 दा०पा०

पुरुषसिंह पाण्डु पुत्र! साठ वर्ष का मतवाला यूथपति हाथी जैसे भूमि पर गिरे हुए बेल के फल को पैर से कुचल देता है। वैसे ही तुम भी इस कीचक का सिर जमीन पर पटक कर अपने बायें पैर से कुचल डालो।

स चेदुद्यन्तमादित्यं प्रातरुत्थाय पश्यति।
कीचकः शर्वरीं व्युष्टां नाहं जीवितुमुत्सहे।।

विराट०-18/9 दा०पा०

यदि कीचक यह रात बीतने पर सवेरे उठकर उदय होते हुए सूर्य को देख लेगा तो मैं जीवित नहीं रहूंगी।

भ्रातरं च विगर्हस्व ज्येष्ठं दुर्द्यूतदेविनम्।
यस्यास्मि कर्मणा प्राप्ता दुःखमेतदनन्तकम्।।

विराट०-18/10

भीम तुम अपने उस बड़े भाई को कोसो जिसकी जुए की लत से मुझे ये अनन्त दुःख झेलने पड़ रहे हैं।

यदा प्रहृष्टः सम्राट् त्वां संयोधयति कुञ्जरैः।
हसन्त्यन्तःपुरे नार्यो मम तूद्विजते मनः।।

विराट०-19/5

जब राजा प्रसन्न होकर तुम्हें हाथियों से लड़ाता है तब अन्तःपुर की स्त्रियां खूब हंसती हैं किन्तु मेरा मन बेचैन हो उठता है।

स्त्रीणां चित्तं च दुर्ज्ञेयं युक्तरूपौ च मे मतौ।
सैरन्ध्री प्रियसंवासान्नित्यं करुणवादिनी।।

विराट०-19/10

ये स्त्रियां कहती हैं कि औरतों के मन की बात समझना बहुत कठिन है किन्तु हमें तो यह जोड़ी रूपरंग से ठीक लगती है। भीम से जब हाथियों आदि को लड़ाने की बात की जाती है तभी सैरन्ध्री दया करने की बातें करने लगती है क्योंकि इन दोनों के बीच प्रेम सम्बन्ध है।

योऽतर्पयदमेयात्मा खाण्डवे जातवेदसम्।
सोऽन्तःपुरगतः पार्थ कूपेऽग्निरिव संवृतः।।

विराट०-19/15

भीम! जिसमें असीम आत्मबल है, जिसने खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया था वह अर्जुन आज कुएं में पड़ी आग की तरह अन्तःपुर में छिपा बैठा है।

किं नु मां मन्यसे पार्थ सुखिनीति परंतप।
एवं दुःखशताविष्टा युधिष्ठिरनिमित्ततः।।

विराट०-19/45

कुन्तीपुत्र शत्रुहन्ता! क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे भाइयों को इस हालत में पड़ा देखकर मुझे अच्छा लगता है? युधिष्ठिर की करतूतों के कारण मुझे तो सैकड़ों दुःख घेरे रहते हैं।

अहं सैरन्ध्रीवेषेण चरन्ती राजवेश्मनि।
शौचदास्मि सुदेष्णाया अक्षधूर्तस्यकारणात्।।

विराट०-20/1

तुम्हारे जुआरी धूर्त भाई के कारण आज मैं महल में सैरन्ध्री के वेश में रानी सुदेष्णा को स्नान करने की वस्तुएँ जुटा कर देती हूँ।

विक्रियां पश्य मे तीव्रां राजपुत्र्याः परंतप।
आत्मकालमुदीक्षन्ती सर्वं दुःखं किलान्तवत्।।

विराट०-20/2

राजकुमारी होने के बावजूद मुझे कैसे नीच काम करने पड़ रहे हैं, भीम तुम अपनी आंखों से देख लो। मैं तो अपने दिन फिरने की प्रतीक्षा कर रही हूँ क्योंकि सभी दुःखों का कभी न कभी अन्त होता है।

महिषी पाण्डुपुत्राणां दुहिता द्रुपदस्य च।
इमामवस्थां सम्प्राप्ता मदन्या का जिजिविषेत्।।

विराट०-20/11

मैं पाण्डवों की रानी हूँ और राजा द्रुपद की बेटी हूँ। फिर भी इस हालत में पड़ी हूँ। मेरे सिवाय कौन स्त्री इस हालत में रहकर जीना चाहेगी?

इदं तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत्।
या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्तनमात्मनः।। विराट०-20/23
अन्यत्र कुन्त्या भद्रं ते सा पिनष्म्यद्य चन्दनम्।
पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवाभूतां हि यौ पुरा।।

विराट०-20/24

भीम! मेरे इस असहनीय दुःख को देखो। पहले मैं माता कुन्ती को छोड़ स्वयं अपने लिये भी उबटन कभी नहीं पीसती थी। किन्तु मैं आज दूसरों के लिये चन्दन घिस रही हूँ। पार्थ! मेरे हाथ पहले ऐसे कभी नहीं थे। देखो अब तो इनमें चन्दन घिसने से घट्टे पड़ गये हैं।

बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन।
साद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किङ्करी।।

विराट०-20/25

पहले मैं माता कुन्ती से और तुम सबसे कभी भी नहीं डरती थी किन्तु आज मैं राजा विराट के आगे नौकरानी बनकर कांपती हुई खड़ी रहती हूँ।

किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा।
नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते।।

विराट०-20/26

तब मैं यही सोचती रहती हूँ कि सम्राट् न जाने मुझसे क्या कहेंगे? यह उबटन अच्छा बना है या नहीं? मत्स्यराज को मेरे सिवाय किसी दूसरे का पीसा हुआ चन्दन अच्छा नहीं लगता।

ततस्तस्याः करौ सूक्ष्मौ किणबद्धौ वृकोदरः।
मुखमानीय वै पत्न्या रुरोद परवीरहा।।

विराट०-20/30

यह सुनकर शत्रुओं को नष्ट करने वाले भीम ने अपनी पत्नी द्रौपदी के घट्टे पड़े नाजुक हाथों को अपने मुख पर लगा लिया और रोने लगा।

भीम : धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फाल्गुनस्य च।
यत् ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणाविमौ।।

विराट०-20/1

मेरे बाहुबल को और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है कि तुम्हारे हाथ जो पहले लाल थे उनमें आज घट्टे पड़ गये हैं।

द्रौपदी : आर्तयैतन्मया भीम कृतं वाष्पप्रमोचनम्।
अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे।।

विराट०-21/18

भीम! इन अनेक दुःखों को न सह सकने के कारण मुझ दुखिया ने आंसू बहाये हैं। मैं राजा युधिष्ठिर को उलाहना नहीं दे रही हूँ।

योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम सारथिः।
त्यक्तधर्मा नृशंसश्च नरस्त्रीसम्मतः प्रियः।।

विराट०-21/35

राजा विराट का यह जो कीचक नाम का सारथि है वह धर्म की परवाह नहीं करता। वह क्रूर है। राजा और रानी उसे बहुत मानते हैं। वह उनका प्रिय है।

पापात्मा पापभावश्च कामबाणवशानुगः।
अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुनः पुनः।।

विराट०-21/38

वह पापी है, उसका मन पाप से भरा है। वह काम के बाण से व्यथित है। उद्दण्ड और दुष्ट है। मैंने बार-बार इसकी प्रार्थना ठुकराई है।

दर्शने दर्शने हन्याद् यदि जह्यां च जीवितम्।
तद् धर्मे यतमानानां महान् धर्मो नशिष्यति।।

विराट०-21/39

इसलिये मैं जब भी इसके सामने आऊंगी तभी यह मुझे मारेगा। यदि मुझे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा तो धर्म की रक्षा करने वाले तुम सबका महान धर्म नष्ट हो जायेगा।

समयं रक्षमाणानां भार्या वो न भविष्यति।
भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता।।

विराट०-21/40

यदि तुम लोग तेरह वर्ष तक की अवधि वाली प्रतिज्ञा का पालन करते रहोगे तो तुम्हारी पत्नी जीवित नहीं रहेगी। पत्नी की रक्षा करने पर ही सन्तान की रक्षा होती है।

प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः।
आत्मा हि जायते तस्यां तेन जायां विदुर्बुधाः।।

विराट०-21/41

सन्तान की रक्षा होने पर ही अपनी आत्मा सुरक्षित रहती है। आत्मा ही पत्नी के गर्भ से पुत्र के रूप में जन्म लेती है। अतः विद्वान् पत्नी को 'जाया' कहते हैं।

कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत।
तमेवं कामसम्मत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि।।

विराट०-21/46

भारत! राजा का प्रिय होने के कारण ही कीचक मेरे दुःख का कारण बन गया है। ऐसे कामोन्मत्त को तुम वैसे ही मार डालो जैसे पत्थर पर घड़े को पटक कर तोड़ा जाता है।

यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत।
तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति।। विराट०-21/47
विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशं गमम्।
श्रेयो हि मरणं मह्यं भीमसेन तवाग्रतः।।

विराट०-21/48

भारत! कीचक मेरी अनेक मुसीबतों की जड़ है। यदि वह कल सवेरे सूर्योदय होने तक जीवित रहा तो मैं विष घोलकर पी लूंगी, पर कीचक के हाथ में नहीं पड़ूँगी। उसके हाथ में पड़ने की जगह भीम तुम्हारे सामने मरना मेरे लिये श्रेयस्कर है।

वैशम्पायन : इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा भीमस्योरः समाश्रिता।
भीमश्च तां परिष्वज्य महत् सान्त्वं प्रयुज्य च।।

विराट०-21/49

यह कहकर द्रौपदी, भीम की छाती पर मुंह रखकर रोने लगी। भीम ने उसे हृदय से लगाया और बहुत सान्त्वना दी।

भीम : तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सहबान्धवम्।।

विराट०-22/1

भद्रे! तुमने जैसा कहा है मैं वही करूँगा। मैं कीचक को उसके भाई बन्धुओं सहित आज ही मार डालूंगा।

26
प्रजागर पर्व या विदुर नीति

हस्तिनापुर लौटकर संजय ने धृतराष्ट्र से भेंट की और युधिष्ठिर की ओर से प्रणाम कहा। दिनभर की यात्रा से संजय थक गये थे इसलिये उन्होंने राजा से कहा अब मैं आराम करना चाहता हूँ और कल सभा में युधिष्ठिर का सन्देश कहूँगा। संजय से अधूरी बात सुनकर धृतराष्ट्र के मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठने लगीं जिनके कारण वे चिन्तित हो गये और उन्हें नींद नहीं आई। प्रजागर का अर्थ जागना है इसीलिये इस प्रकरण को प्रजागर पर्व कहा गया है। धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया। विदुर जब चाहें धृतराष्ट्र से मिल सकते थे। विदुर ने धृतराष्ट्र को नीति की जो बातें बताईं उनके कारण यह प्रकरण विदुर नीतिं भी कहा जाता है। विदुर के आते ही धृतराष्ट्र ने कहा संजय आया था। वह मुझे बुरा-भला कह कर चला गया है। कल सभा में युधिष्ठिर का सन्देश सुनायेगा। युधिष्ठिर क्री बात पता न चलने के कारण मुझे नींद नहीं आ रही है। विदुर तुम हम सबमें धर्म और अर्थ के कुशल जानकार हो इसलिये मेरे कल्याण की बात बताओ। धृतराष्ट्र की बात सुनकर विदुर ने कहा-

विदुर : अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः।।

उद्योग०-33/13

जिसका बलवान के साथ झगड़ा हो गया हो उस साधनरहित कमजोर मनुष्य को, जिसका सर्वस्व छिन गया हो उसको, काम वासना से पीड़ित पुरुष को और चोर को नींद नहीं आती।

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः।।

उद्योग०-33/15, दा०पा०

आप धर्मात्मा और धर्म के जानकार हैं किन्तु आंखों की ज्योति न होने के कारण आप युधिष्ठिर को समझ नहीं सके और उनके अत्यधिक विरोधी बन गये। आप युधिष्ठिर को राज्य का हिस्सा देने के लिये भी तैयार नहीं हैं।

दुर्योधने सौबले च कर्णे च दुःशासने तथा।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि।।

उद्योग०-33/15 दा०पा०

आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन जैसे अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में राज्यश्री सौंपकर अपना कल्याण कैसे चाहते हैं?

पण्डित (बुद्धिमान)

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डित लक्षणम्।।

उद्योग०-33/16

पण्डित या प्राज्ञ वह है जो जीवन में प्रशस्त लक्ष्य को चुनता है, निन्दा के योग्य कामों में नहीं पड़ता है। उसके कर्मों में श्रद्धा होती है। और वह ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/17

वह जो लक्ष्य सामने रखता है उससे क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता या सम्मान की इच्छा उसे हटा नहीं पाती। ऐसा व्यक्ति पण्डित कहा जाता है।

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/19

गर्मी-सर्दी, भय-अनुराग, गरीबी-अमीरी आदि बातें उसके कार्य में बाधा नहीं डाल सकतीं। वही पण्डित कहलाता है।

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/20

पण्डित की बुद्धि संसारिणी होती है अर्थात् वह प्रत्येक बात पर सामाजिक

परिस्थिति और जीवन के दृष्टिकोण से विचार करती है। वह धर्म और अर्थ का अनुसरण करता है और भोग को छोड़ पुरुषार्थ करता है।

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किंचिदवमन्यन्ते नराः पण्डित बुद्धयः।।

उद्योग०-33/21

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार ही इच्छा करते है और अपनी सामर्थ्य के अनुसार की कार्य करते हैं। वे किसी भी बात की अवहेलना नहीं करते।

क्षिप्रं विजानाति चिरं श्रृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।।

उद्योग०-33/22

पण्डित की सबसे बड़ी पहिचान यही है कि वह कोई बात देर तक सुनता है किन्तु उसे जल्दी ही समझ लेता है। वह समझ बूझकर अपने कार्यों का निश्चय करता है कामना के वश में आकर नहीं। वह बिना पूछे ही किसी दूसरे के काम में दखल नहीं देता।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।

उद्योग०-33/23

जो वस्तु मिल नहीं सकती उसे वह नहीं चाहता। जो नष्ट हो गया है उसके बारे में शोक नहीं करता। वह संकटों में घिरने पर घबराता नहीं।

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्य कालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/24

वह कोई निश्चय करके उस पर चलता जाता है। वह कोई काम शुरू करके बीच में रुकता नहीं। वह समय नष्ट नहीं करता और मन को वश में रखता है।

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ।।

उद्योग०-33/25

वह अच्छे कामों में रुचि लेता है, उन्नति के कार्य करता है और भलाई करने वालों के दोष नहीं निकालता।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/26

उसे अपने सम्मान से न तो प्रसन्नता होती है और न ही अपमान से दुःख होता है। गंगा के गहरे गड्ढे की तरह उसका चित्त क्षुब्ध नहीं होता।

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/27

उसे सभी भौतिक वस्तुओं की अच्छी जानकारी होती है। वह काम करने का ढंग और मनुष्यों से व्यवहार करना जानता है।

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/28

वह धाराप्रवाह बोल सकता है, तरह-तरह की बातें कर सकता है, तर्क में निपुण और प्रतिभाशाली होता है तथा पुस्तक की बातें जल्दी बता सकता है।

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः।।

उद्योग०-33/29

जिसकी विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है और बुद्धि विद्या का अनुसरण करती है। जो आर्य जीवन की मर्यादाओं को नहीं तोड़ता वही पण्डित होता है।

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते।।

उद्योग०-33/40

जो व्यक्ति अत्यधिक सम्पत्ति, विद्या और भोग-ऐश्वर्यों को प्राप्त करके भी उद्दण्ड व्यवहार नहीं करता वही पण्डित या प्राज्ञ कहलाता है।

मूर्ख

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः।।

उद्योग०-33/30

बिना पढ़े लिखे ही गर्व करने वाले, गरीब होकर भी बड़े मनसूबे बांधने वाले और काम किये बिना ही पैसा चाहने वाले को विद्वान् लोग मूर्ख बताते हैं।

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते।।

उद्योग०-33/31

जो अपना काम छोड़कर दूसरों के कामों में फंसा रहता है, जो मित्र के काम में गलत व्यवहार करता है वह मूर्ख होता है।

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम्।।

उद्योग०-33/32

जो न चाहने वालों से मिलना चाहता है और मिलना चाहने वालों को छोड़ देता है तथा बलवान व्यक्ति से वैर बांधता है वह मूर्ख होता है।

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम्।।

उद्योग०-33/33

जो शत्रु से मित्रता करता है और मित्र से द्वेष करता है तथा उसे कष्ट देता है। जो बुरे काम करता है वह मूर्ख कहलाता है।

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ।।

उद्योग०-33/34

जो कामों को टालता रहता है, सब जगह सन्देह करता रहता है और जल्दी किये जाने वाले काम को देर से करता है वह मूर्ख होता है।

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः।।

उद्योग०-33/36

जो बिना बुलाये जाता है, बिना पूछे बहुत बोलता है और विश्वास न करने लायक मनुष्य का विश्वास करता है वह नीच पुरुष मूर्ख होता है।

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः।।

उद्योग०-33/37

जो अपने दोष न देखकर उन दोषों के लिये दूसरों पर कटाक्ष करता है और असमर्थ होते हुए भी गुस्सा करता है वह सबसे बड़ा मूर्ख होता है।

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन् नैष्कर्म्यान्मूढ बुद्धिरिहोच्यते।।

उद्योग०-33/38

जो अपनी समार्थ्य जाने बिना धर्म और अर्थ के विरुद्ध प्राप्त न हो सकने वाली वस्तु निठल्ला रहकर भी पाना चाहता है वह मूर्ख होता है।

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम्।।

उद्योग०-33/39

राजन! जो अनधिकारि व्यक्ति को उपदेश देता है, शून्य की उपासना करता है तथा कंजूसी करता है उसे मूर्ख कहा जाता है।

क्रूर व्यक्ति

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः।।

उद्योग०-33/41

जो अपने सेवकों को अपना धन बांटे बिना ही अकेले उत्तम भोजन करता है और अच्छे कपड़े पहनता है उससे अधिक क्रूर व्यक्ति कौन होगा?

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते।।

उद्योग०-33/42

मनुष्य अकेला पाप करके धन कमाता है किन्तु उस धन का उपभोग कई लोग करते हैं। उपभोग करने वाले तो दोष से छूट जाते हैं किन्तु गलत काम करने वाला फंस जाता है।

राजनीति

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम्।।

उद्योग०-33/43

धनुर्धारी का छोड़ा हुआ बाण एक भी व्यक्ति को मार सके या न मार सके, किन्तु बुद्धिमान की युक्ति राजा सहित सारे राष्ट्र को नष्ट कर देती है।

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भवेत्।।

उद्योग०-33/44

एक (बुद्धि) से दो (कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य) का निश्चय करके चार (साम, दाम, दण्ड, भेद) से तीन (शत्रु, मित्र, उदासीन) को वश में करना चाहिये। पांच (इन्द्रियों) को जीतकर छह (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय) गुणों को जानकर सात (स्त्री, जुआ, शिकार, मद्यपान, कठोर वचन, कठोर दण्ड और अन्याय से पैसा कमाना) को छोड़कर सुखी होना चाहिये।

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च बध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः।।

उद्योग०-33/45

विष का रस एक (पीने वाले) को मारता है, शस्त्र से भी एक का वध होता है। किन्तु गुप्त मन्त्रणा पता चल जाने से राजा, राष्ट्र और सारी प्रजा नष्ट हो जाती है।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्।।

उद्योग०-33/46

अकेले ही स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेला ही किसी समस्या पर विचार न करे, अकेले ही रास्ता न चले और सोये हुए अनेक लोगों में अकेला न जागता रहे।

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।।

उद्योग०-33/47

राजन्! इस विश्व का कर्ता एक अद्वितीय ब्रह्म है जिसे तुम नहीं जानते। जैसे समुद्र पार करने के लिये नाव उपयोगी है उसी तरह अकेला सत्य स्वर्ग तक पहुंचने की सीढ़ी है।

क्षमा

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः।।

उद्योग०-33/48

क्षमाशील पुरुषों का एक ही दोष है कि लोग उन्हें निर्बल समझते हैं।

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।।

उद्योग०-33/49

किन्तु क्षमाशील पुरुषों का वह दोष नहीं माना जाना चाहिये क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा निर्बलों का गुण और समर्थों का आभूषण है।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः।।

उद्योगा-33/50

इस संसार में क्षमा से सभी को अपने वश में किया जा सकता है। क्षमा से क्या काम नहीं बन सकता? जिसके हाथ में शान्ति की तलवार है दुष्ट उसका क्या कर लेगा।

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मनं चैव योजयेत्।।

उद्योग०-33/51

तिनकों से रहित जगह पर गिरी हुई आग स्वयं ही बुझ जाती है किन्तु क्षमाहीन पुरुष अपने को तथा दूसरों को भी दोष का भागी बना लेता है।

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा।।

उद्योग०-33/52

केवल धर्म ही परम कल्याणकारी है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का श्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष देने वाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देने वाली है।

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्।।

उद्योग०-33/53

जैसे सांप, बिल में घुसे चूहे को खा जाता है, वैसे ही जो राजा शत्रु का मुकाबला नहीं करता और जो ब्राह्मण परदेश जाकर अपना पाण्डित्य नहीं दिखाता उन दोनों को यह भूमि ग्रस लेती है।

दो गुण

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते।
अब्रुवचन् परुषं किंचिदसतोऽनर्चयंस्तथा।।

उद्योग०-33/54

कठोर न बोलने वाला और दुष्ट पुरुषों का आदर न करने वाला व्यक्ति इस संसार में प्रतिष्ठा पाता है।

दो दोष

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ।।
यश्चाधमः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः।।

उद्योग०-33/56

दो नोकीले कांटे इस शरीर को सुखाने वाले हैं एक निर्धन पुरुष की इच्छाएँ और दूसरा निर्बल पुरुष का क्रोध।

द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः।।

उद्योग०-33/57

दो व्यक्ति अपने विपरीत कर्मों के कारण प्रतिष्ठा नहीं पाते-कुछ काम न करने वाला गृहस्थ और कामों में फंसा हुआ संन्यासी।

गुणी पुरुष

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्।।

उद्योग०-33/58

राजन्! दो तरह के लोग स्वर्ग से भी ऊंचा स्थान पाते हैं-शक्तिशाली होने पर भी क्षमा करने वाला और निर्धन होने पर भी दान देने वाला।

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्।।

उद्योग०-33/59

न्यायपूर्वक कमाये हुए धन के दो ही दुरुपयोग समझने चाहिये-एक-अपात्र व्यक्ति को देना और दो-सत्पात्र को धन न देना।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्धवा दृढां शिलाम्।
धन्वन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।।

उद्योग०-33/6

जो व्यक्ति धनी होने पर भी दान न दे और जो निर्धन व्यक्ति कष्ट सहन न करे उन दोनों को गले में पत्थर बांधकर डुबा देना चाहिये।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः।।

उद्योग०-33/61

पुरुष श्रेष्ठ! दो प्रकार के पुरुष सूर्यमण्डल को भेद कर ऊर्ध्वगति को प्राप्त करते हैं–योग करने वाला संन्यासी और शत्रु के सामने युद्ध करके मारा गया वीर।

तीन प्रकार के मनुष्य

त्रयो न्याया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान् मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः।।

उद्योग०-33/62

भरतश्रेष्ठ! तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं अधम, मध्यम और उत्तम।

त्रयं एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः।
यत् ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद् धनम्।।

उद्योग०-33/64

राजन्! पत्नी, दास तथा पुत्र ये तीन धन के अधिकारी नहीं होते इसलिये उन्हें जो धन मिलता है वह उसी का होता है जिसके अधीन वे होते हैं।

तीन बुराइयां

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्षणम्।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।

उद्योग०-33/65

दूसरों का धन छीनना, दूसरे की स्त्री से संसर्ग तथा अपने मित्र को छोड़ देना ये तीन काम (मनुष्य की आयु, धर्म, कीर्ति) नाश करने वाले हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

उद्योग०-33/66

काम, क्रोध और लोभ ये तीन दोष आत्मा का नाश करने वाले हैं इसलिये इन तीनों को छोड़ देना चाहिये।

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात् त्रीणि चैकं च तत्समम्।।

उद्योग०-33/67

वर प्राप्त करना, राज्य मिलना और पुत्र का जन्म होना ये तीन लाभ तथा शत्रु के कष्ट से छूटना इन तीनों लाभों के समान है।

अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च।।

उद्योग०-33/69

अल्प बुद्धि, दीर्घसूत्री, जल्दबाज, और चापलूसों के साथ सलाह नहीं करनी चाहिये।

गृहस्थ धर्म

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थ धर्मे।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सदा दरिद्रो भगिनी चानपत्या।।

उद्योग०-33/70

तात! गृहस्थ धर्म वाले आप जैसे लक्ष्मी सम्पन्न के घर में इन चार प्रकार के लोगों का पालन सदा होना चाहिये-अपने परिवार के बूढ़ों, संकट में पड़े कुलीन, गरीब मित्र और सन्तानहीन बहिन का।

चत्वार्याह महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः।
देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम्।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम्।।

उद्योग०-33/71-72

महाराज! बृहस्पति ने इन चार बातों को तत्काल फल देने वाला बताया है-देवताओं का संकल्प, बुद्धिमान की युक्ति, विद्वान् की नम्रता और पाप कर्मों का नाश।

पांच अग्नियां

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ।।

उद्योग०-33/74

मनुष्य को पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु इन पांच अग्नियों की प्रयत्नपूर्वक सेवा करनी चाहिये।

पञ्चैव पूजयँल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम्।
देवान् पितृन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान्।।

उद्योग०-33/75

देवता, पितर, मनुष्य, संन्यासी और अतिथि इन पांचों का आदर-सत्कार करने वाला पुरुष उत्तम यश प्राप्त करता है।

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्यच्छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।।
ततोऽस्य स्त्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्।।

उद्योग०-33/77

मनुष्य की पांच ज्ञानेन्द्रियों में से यदि एक भी दोषपूर्ण हो तो उसी के रास्ते मनुष्य की प्रज्ञा नष्ट हो जाती है जैसे मशक के छेद से सारा पानी बह जाता है।

छह दोष

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।।

उद्योग०-33/78

नींद, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और काम को टालने की आदत इन छह दोषों को छोड़ने में ही मनुष्य की भलाई है।

षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ।। उद्योग०-33/79

अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्।।

उद्योग०-33/80

मनुष्य जैसे समुद्र में छेदवाली नाव को छोड़ देता है वैसे ही उसे इन छह लोगों को छोड़ देना चाहिये-उपदेश न देने वाले आचार्य को, मन्त्र न बोलने वाले होता को, रक्षा न करने वाले राजा को, कटु बोलने वाली स्त्री को, गांव में रहना चाहने वाले ग्वाले को और वन में रहना चाहने वाले नाई को।

छह गुण

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः।।

उद्योग०-33/81

सत्य, दान, कर्मण्यता, ईर्ष्या न करना, क्षमा तथा धैर्य इन छह गुणों को कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

जीवन के छह सुख

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

उद्योग०-33/82

राजन्! धन मिलना, सदा नीरोग रहना, अनुकूल और मधुर बोलने वाली पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र और धन देने वाली विद्या ये छह चीजें सुख देती हैं।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

उद्योग०-33/89

राजन्! स्वस्थ रहना, ऋणी न होना, विदेश में न रहना, अच्छे लोगों का साथ, अपनी वृत्ति से निर्वाह करना और निर्भय होकर रहना ये छह मनुष्यलोक के सुख हैं।

छह शत्रु

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः।।

उद्योग०-33/83

मन में सदा रहने वाले (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर) इन छह शत्रुओं को जो वश में कर लेता है ऐसा जितेन्द्रिय पुरुष पापों और अनर्थों से दूर रहता है।

रोजगार के छह साधन

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः।।

उद्योग०-33/84

प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः।।

उद्योग०–33/85

निम्नलिखित छह प्रकार के मनुष्य छह प्रकार के लोगों से अपनी जीविका चलाते हैं–असावधान पुरुषों से चोर, रोगियों से वैद्य, कामोन्मत्त स्त्रियां कामी पुरुषों से; यजमानों से पुरोहित, झगड़ने वालों से राजा, मूर्खों से विद्वान्।

छह वस्तुओं की देखरेख

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः।।

उद्योग–33/86

थोड़ी तेर तक भी देखरेख न करने से गाय, सेवा, खेती, पत्नी, विद्या और नीच पुरुषों से मेल ये छह नष्ट हो जाती हैं।

उपकार न मानने वाले

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्।। उद्योग०–33/87

नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्।।

उद्योग०–33/88

ये छह प्रकार के मनुष्य अपना उपकार करने वालों का सम्मान नहीं करते–शिक्षा समाप्त करने पर शिष्य आचार्य का, विवाहित बेटा माता का, कामवासना शान्त हो जाने पर पुरुष स्त्री का, काम बन जाने पर सहायता करने वाले का, नदी की धार पार कर लेने पर नाव का, स्वस्थ हो जाने पर वैद्य का।

दुखी पुरुष

ईर्ष्यी घृणी न संतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः।।

उद्योग०–33/90

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शंकित रहने वाला और दूसरे के भाग्य पर निर्वाह करने वाला सदा दुःखी रहता है।

सात दोष

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः।। उद्योग०-33/91

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्यापारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च।।

उद्योग०-33/92

स्त्रियों में आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, कठोर वचन, अत्यन्त कठोर दण्ड और धन का दुरुपयोग इन सात दोषों से सदा दूर रहना चाहिये क्योंकि जमे हुए राजा भी इन दोषों के कारण नष्ट हो जाते हैं।

सुख की वस्तुएँ

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि।।

उद्योग०-33/96

समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः संनिपातश्च मैथुने।।

उद्योग०-33/97

समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि।।

उद्योग०-33/98

भारत! ये आठ बातें आनन्द का मथा हुआ मक्खन हैं–मित्रों का साथ, पर्याप्त धन मिलना, पुत्र का आलिंगन, स्त्री समागम का सुख, समय पर मीठी बातें, अपने लोगों में उन्नति, इष्ट वस्तु की प्राप्ति और समाज में सम्मान।

आठ गुण

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च।।

उद्योग०-33/99

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, यथाशक्तिदान, अधिक न बोलना और कृतज्ञता, ये आठ गुण पुरुष का यश बढ़ाते हैं।

मनुष्य शरीर

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः।।

उद्योग०-33/100

जो विद्वान् पुरुष आंख, कान आदि नौ दरवाजों वाले, सत्व, रज और तम रूपी तीन खम्भों वाले, पांच ज्ञानेन्द्रिय रूप साक्षियों या सेवकों वाले आत्मा के निवास स्थान इस शरीर रूपी घर को अच्छी तरह जानता है वही परम ज्ञानी है।

दस नीच पुरुष

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः।।

उद्योग०-33/101

त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः।।

उद्योग०-33/102

धृतराष्ट्र! नशे में धुत्त, असावधान, पागल, थका हुआ, गुस्से में भरा हुआ, भूखा, जल्दबाज, लोभी, डरा हुआ और कामवासना से ग्रस्त ये दस प्रकार के लोग धर्म को नहीं जानते। अतः इनसे वास्ता नहीं रखना चाहिये।

राजा के गुण

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम्।।

उद्योग०-33/104

जो राजा काम और क्रोध को छोड़ देता है, सुपात्र को दान देता है, विशेष बातों का जानकार है और कर्त्तव्य काम जल्दी करता है उसे लोग प्रामाणिक मानते हैं।

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान् विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा।।

उद्योग०-33/105

जो राजा मनुष्यों में विश्वास पैदा करना जानता है, अपराधी को दण्ड देता है तथा कितना दण्ड देना चाहिये और किस सीमा तक क्षमा करना चाहिये यह बात जानता है उसके पास परिपूर्ण समृद्धि चली आती है।

धीर पुरुष

सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद् युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः।।

उद्योग०-33/106

जो किसी कमजोर का अपमान नहीं करता, सावधान रहकर बुद्धिपूर्वक शत्रु से निपटता है, बलवानों के साथ युद्ध नहीं करता, समय आने पर पराक्रम दिखाता है, ऐसा ही पुरुष धीर होता है।

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः।।

उद्योग०-33/107

जो महापुरुष आपत्ति आने पर विचलित नहीं होता, सावधान रहकर प्रयत्न करता है; दुःख आने पर उसे सहन करता है ऐसे व्यक्ति के शत्रु पराजित ही रहते हैं।

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव।।

उद्योग०-33/108

जो व्यक्ति बिना किसी काम के विदेश वास, बुरे लोगों से मित्रता, परस्त्री-गमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी, मदिरापान नहीं करता वह सदा सुखी रहता है।

न संरम्भेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्त्वमेव।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः।।
न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।
नात्याह किंचित् क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम्।।

उद्योग०-33/109-110

जो व्यक्ति बिना सोचे समझे धर्म, अर्थ और काम से सम्बद्ध कोई कार्य शुरू नहीं करता, पूछने पर सही बात बताता है, मित्र के कारण झगड़ा नहीं करता, सम्मान न पाने पर गुस्सा नहीं करता, अपना विवेक नहीं खोता, दूसरों को दोष नहीं देता, दया करता है, असमर्थ होते हुए किसी की जमानत नहीं देता, बढ़-चढ़ कर बातें नहीं बनाता, और किसी विवाद या झगड़े को सहन कर लेता है उसकी सभी प्रशंसा करते हैं।

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किंचित् प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि।।

उद्योग०–33/111

जो उल्टे सीधे कपड़े नहीं पहनता, जो दूसरों के सामने अपने पराक्रम की बड़ाई नहीं करता, बहुत गुस्से में होने पर भी कड़वी बात नहीं कहता, वह व्यक्ति सबका प्रिय होता है।

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः।।

उद्योग०–33/112

जो बुझी हुई वैर की आग नहीं भड़काता, गर्व नहीं करता, दीनता नहीं दिखाता, मैं मुसीबत में पड़ा हूँ ऐसा सोचकर गलत काम नहीं करता ऐसे पुरुष को श्रेष्ठ पुरुष अच्छे चरित्र का श्रेष्ठ व्यक्ति मानते हैं।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्थशीलः।।

उद्योग०–33/113

जो अपने सुख से बहुत प्रसन्न नहीं होता और दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न नहीं होता और दान देकर पछताता नहीं वही सज्जन कहलाता है।

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुजनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः।।

उद्योग०–33/115

जो बुद्धिमान पुरुष अभिमान, मोह, ईर्ष्या, बुरे काम, राजद्रोह, चुगली, किसी गुट के साथ वैर, मदोन्मत्त, पागल तथा दुष्ट लोगों के साथ झगड़ा नहीं करता है वही श्रेष्ठ होता है।

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टाश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः।।

उद्योग०–33/117

जो अपने समान लोगों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार और बोलचाल करता है नीच लोगों के साथ सम्बन्ध नहीं रखता और विशिष्ट पुरुषों के गुणों को अपना आदर्श बनाता है ऐसे बुद्धिमान के काम सफल होते हैं।

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः।।

उद्योग०-33/118

जो अपने आश्रितों को देकर थोड़ा ही खाता है, बहुत काम करके कम समय तक सोता है और मांगने पर अपने से पराये लोगों को भी पैसा देता है ऐसे मनस्वी पुरुष के पास अनर्थ नहीं आते।

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः।।

उद्योग०-33/120

जो सभी प्राणियों की शान्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है, सत्यवादी, सौम्य व्यवहार वाला, आदर देने वाला और पवित्र हृदय है। ऐसा व्यक्ति श्रेष्ठ रत्न की भांति अपनी जाति के लोगों के बीच चमकता है।

शुभचिन्तक व्यक्ति

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम्।।

उद्योग०-34/4

जो मनुष्य जिस व्यक्ति की हार न चाहता हो उसे बिना पूछे भी अच्छी या अनिष्टकारी, हितकारी या बुरी लगने वाली बात बता देनी चाहिये।

कपट के कामों से दूर

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः।।

उद्योग०-34/6

धृतराष्ट्र! कपट से किये हुए काम सफल दीखते भी हों तो भी ऐसे कामों में मन मत लगाओ।

तथैव योगविहितं यत् तु कर्म न रिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः।।

उद्योग०-34/7

अच्छे उपायों से सावधानी के साथ किया गया काम यदि सफल न भी हो तब भी बुद्धिमान पुरुष को ऐसी असफलता से दुःखी नहीं होना चाहिये।

विवेकपूर्ण कार्य

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्।।

उद्योग०-34/8

किसी उद्देश्य से किये गये कामों के उद्देश्यों और रुकावटों को भलीभांति समझ कर ही काम शुरू करने चाहिये, जल्दबाजी में काम नहीं करने चाहिये।

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा।।

उद्योग०-34/19

यह काम करने से मेरा क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी। इस तरह भलीभांति सोचकर ही कोई काम करना या नहीं करना चाहिये।

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथागताः।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद् येषु निरर्थकः।।

उद्योग०-34/20

कुछ ऐसी बातें होती हैं जो कभी भी पूरी नहीं हो सकतीं, इसलिये इस तरह के कामों में हाथ ही नहीं डालना चाहिये, क्योंकि इन कामों को पूरा करने के लिये किया गया परिश्रम व्यर्थ जाता है।

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम्।।

उद्योग०-34/12

राज्य मिल जाना ही पर्याप्त नहीं होता। इसकी रक्षा के लिये अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये। उद्दण्ड व्यवहार से राज्य लक्ष्मी वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे बुढ़ापे से सुन्दरता।

अच्छा भोजन

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता।।

उद्योग०-34/14

खाने योग्य ऐसी वस्तु ही खानी चाहिये जो पच जाये और पचने पर हितकारी हो। ऐसी वस्तु खाने में ही भलाई है।

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति।।

उद्योग०–34/15

जो व्यक्ति कच्चा फल तोड़ता है उसे फल का रस नहीं मिलता और वह फल के बीज को भी नष्ट कर देता है।

उचित कर संग्रह

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान् मनुष्येभ्यः आदद्यादविहिंसया।।

उद्योग०–34/17

जैसे भौंरा फूलों से रस पीता है किन्तु फूलों को नष्ट नहीं करता वैसे ही राजा को मृदु उपायों से प्रजा से कर आदि के रूप में धन लेना चाहिये।

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः।।

उद्योग०–34/18

जैसे माली बाग में फूल चुनता है, कोयला बनाने वाले की तरह पेड़ों की जड़ नहीं काटता उसी तरह राजा को प्रजा से कर लेना चाहिये।

अप्रिय राजा

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः।।

उद्योग०–34/21

जिस राजा की प्रसन्नता और क्रोध से कुछ नहीं होता ऐसे राजा को लोग नहीं चाहते जैसे स्त्रियाँ नपुंसक पुरुष को पति नहीं बनातीं।

कांश्चिदर्थान् नरः प्राज्ञो लघुमूलान् महाफलान्।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान्।।

उद्योग०–34/22

बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे कामों को सोचता है जो आरम्भ में छोटे होते हैं किन्तु जिनका परिणाम बहुत बड़ा या अच्छा होता है। वह ऐसे काम जल्दी शुरू कर देता है और इन्हें पूरा करने में विघ्न नहीं आने देता।

सफल राजा

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित्।।

उद्योग०-34/24

राजा को पेड़ की तरह फूलने (प्रसन्न) वाला होना चाहिये किन्तु फल वाला (अधिक देने वाला) नहीं होना चाहिये। यदि वह फल वाला हो भी तो वृक्ष की भांति उस पर चढ़ना कठिन होना चाहिये। अर्थात् वह फल सबकी पहुँच में नहीं होना चाहिये। राजा कच्चे फल (शक्ति कम होने पर भी) की भांति पका हुआ (शक्ति सम्पन्न) दीखे। ऐसा व्यवहार करने से वह नष्ट नहीं होता।

चक्षुषा मनसावाचाकर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति।।

उद्योग०-34/25

जो राजा दृष्टि, मन, वचन और कर्म से प्रजा को प्रसन्न रखता है उसे ही प्रजा चाहती है।

क्रूर और अन्यायी राजा

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते।।

उद्योग०-34/26

जैसे शिकारी से हरिण डरते हैं वैसे ही जिस राजा से प्रजा डरती है ऐसे राजा को समुद्र तक की पृथ्वी का राज्य पा लेने पर भी प्रजा छोड़ देती है।

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः।।

उद्योग०-34/27

जैसे वायु बादलों को छितरा देती है वैसे ही अन्यायी राजा बाप-दादों से प्राप्त राज्य को नष्ट कर देता है।

धार्मिक राजा

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी।।

उद्योग०-34/34/28

जिस रास्ते पर सज्जन पहले से चलते आ रहे हैं उस धर्म के रास्ते पर चलने वाले राजा के लिये पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण हो जाती है और ऐश्वर्य बढ़ाती है।

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने।।

उद्योग०-34/30

पराए राष्ट्र को नष्ट करने में जितना प्रयत्न किया जाता है यदि उतना ही प्रयत्न अपने राज्य को बनाने में किया जाये तो क्या कहना।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते।।

उद्योग०-34/31

धर्मपूर्वक राज्य पाना चाहिये और धर्मानुसार राज्य का पालन करना चाहिये। धर्मपूर्वक राज्यलक्ष्मी प्राप्त करके राजा उसे नहीं छोड़ता और लक्ष्मी राजा को नहीं छोड़ती।

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा।।

उद्योग०-34/33

जैसे शिलोञ्छवृत्ति से पेट भरने वाला अनाज का एक-एक दाना चुनता है वैसे ही धीर पुरुष को इधर-उधर से अच्छी बातों और सत्कर्मों का संग्रह करना चाहिए।

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः।।

उद्योग०-34/34

गाएं गन्ध से, विद्वान् वेद से, राजा गुप्तचरों से और अन्य लोग आंखों से देखते हैं।

यदतप्तं प्रणमति न तत् संतापयन्त्यपि।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत् संनमयन्त्यपि।।

उद्योग०-34/36

एतयोपमया धीरः संनमेत बलीयसे।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे।।

उद्योग०-34/37

जो बिना गर्म किये झुक जाता है उसे कौन तपाता है? जो लकड़ी स्वयं मुड़ जाती है उसे कौन झुकाता है। इन उपमाओं को ध्यान में रखकर जो बलवान के आगे झुक जाता है वह मानों इन्द्र को प्रणाम करता है।

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः।।

उद्योग०–34/38

पशुओं के बन्धु बादल हैं राजाओं के बन्धु उनके मन्त्री होते हैं। स्त्रियों के बन्धु पति होते हैं और ब्राह्मणों के बन्धु वेद हैं।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते।।

उद्योग०–34/39

सत्य से धर्म की रक्षा होती है, विद्या की योग और नियमित स्वाध्याय से रक्षा होती है। सौन्दर्य की साज श्रृंगार से और कुल की आचार से रक्षा होती है।

ईर्ष्यालु व्यक्ति

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः।।

उद्योग०–34/42

जो पराये धन, रूप, बल, कुल, सुख, सौभाग्य और सम्मान में ईर्ष्या करता है उसका यह रोग असाध्य होता है।

सज्जन और दुर्जन का भेद

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः।।

उद्योग०–34/44

विद्यामद, धनमद और कुलमद मूर्खों के लिये तो ये मद हैं किन्तु ये तीनों मद सज्जनों के लिये दम अर्थात् संयम के साधन होते हैं।

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः।।

उद्योग०–34/46

मनस्वी पुरुषों का सहारा सन्त ही हैं, सन्तों के आश्रय भी सत्पुरुष हैं। सन्त लोग दुष्टों को भी सहारा देते हैं किन्तु दुष्ट व्यक्ति सन्तों का सहारा नहीं होता।

चरित्रवान् पुरुष

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्।।

उद्योग०-34/47

अच्छे कपड़ों वाला सभा का ध्यान खींच लेता है। जिसके पास गाय होती है उसकी मिठाई आदि खाने की इच्छा पूरी हो जाती है। जिसके पास सवारी होती है वह रास्ते में कहीं भी जा सकता है किन्तु चरित्रवान सबको जीत लेता है।

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः।।

उद्योग०-34/48

मनुष्य का शील ही प्रधान होता है। जिसका चरित्र नष्ट हो जाता है उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है चाहे उसके पास कितना ही धन और बन्धु-बान्धव क्यों न हों।

धनी और निर्धन का भोजन

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तमम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ।।

उद्योग०-34/49

भरतश्रेष्ठ! धनी लोगों के भोजन में मांस की, मध्यम वर्ग के लोगों के भोजन में दूध घी की तथा दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है।

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा।।

उद्योग०-34/50

गरीब लोग ही सदा स्वादिष्ट भोजन करते हैं क्योंकि भूख में ही स्वाद होता है और भूख धनियों को लगती ही नहीं।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते।।

उद्योग०-34/41

राजन्! संसार में धनियों के शरीर में प्रायः खाने की सामर्थ्य नहीं होती। किन्तु गरीबों के पेट में लकड़ी भी पच जाती है।

मनुष्यों के भय

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्।।

उद्योग०-34/52

अधम पुरुषों को जीविका न होने से डर लगता है, मध्यम पुरुषों को मृत्यु से और उत्तम पुरुषों को अपमान से बहुत डर लगता रहता है।

विलासपूर्ण जीवन

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नपतित्वा विबुध्यते।।

उद्योग०-34/53

शराब आदि पीने से भी नशा होता है किन्तु ऐश्वर्य का नशा सबसे बुरा होता है क्योंकि ऐश्वर्यमद से बेहोश व्यक्ति ठोकर खाये बिना नहीं जागता।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव।।

उद्योग०-34/54

विषयों में रमने वाली इन्द्रियों के वश में न होने से लोग उसी प्रकार दुःख भोगते हैं जैसे सूर्य आदि ग्रहों से नक्षत्रों की चमक फीकी पड़ जाती है।

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्।।

उद्योग०-34/55

जो मनुष्य प्राणियों को वश में करने वाली आंख, नाक, कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रियों के वश में रहता है उसकी कठिनाइयां शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ती जाती हैं।

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते।।

उद्योग०-34/56

जो राजा अपनी इन्द्रियों को जीते बिना अपने मन्त्रियों को वश में करना चाहता

है अथवा मन्त्रियों को जीते बिना शत्रुओं को वश में करना चाहता है वह असंयमी राजा दु:ख पाता है।

जितेन्द्रिय पुरुष

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते।।

उद्योग०-34/58

इन्द्रियों तथा मन को जीतने वाले, अपराधियों को दण्ड देने वाले और जांच परख कर काम करने वाले धीर पुरुष की लक्ष्मी खूब सेवा करती है।

रथ: शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वा:।
तैरप्रमत्त: कुशली सदश्वैर्दान्तै: सुखं याति रथीव धीर:।।

उद्योग०-34/59

राजन्! यह शरीर रथ है आत्मा सारथि है इन्द्रियां इस रथ के घोड़े हैं। कुशल व्यक्ति सधे हुए घोड़ों से धीर रथी की तरह सुख से यात्रा करता है।

असंयमी पुरुष

धर्मार्थौ य: परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुग:।
श्रीप्राणधनदारेभ्य: क्षिप्रं स परिहीयते।।

उद्योग०-34/62

जो व्यक्ति धर्म और अर्थ को छोड़कर इन्द्रियों के वश में हो जाता है वह ऐश्वर्य, प्राण, धन और स्त्री से जल्दी ही हाथ धो बैठता है।

अर्थानामीश्वरो य: स्यादिन्द्रियाणामनीश्वर:।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि स:।।

उद्योग०-34/63

यदि इन्द्रियां वश में न हों और बहुत पैसा पास हो तो इन्द्रियां वश में न होने के कारण ऐसे व्यक्ति का ऐश्वर्य समाप्त हो जाता है।

आत्मा बन्धु और शत्रु

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतै:।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:।।

उद्योग०-34/64

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने वश में करके अपनी आत्मा को पहिचानना चाहिये, क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है।

काम और क्रोध

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः।।

उद्योग०-34/66

जैसे छोटे छेद वाले जाल में फंसी हुई दो बड़ी मछलियाँ मिलकर जाल काट देती हैं वैसे ही काम और क्रोध ये दोनों मनुष्य का विवेक नष्ट कर देते हैं।

नीच की संगति

असंत्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात्।।

उद्योग०-34/70

यदि मनुष्य पापियों का साथ नहीं छोड़ता तो उसे पाप न करने पर भी पापियों के साथ रहने के कारण बराबर का दण्ड भुगतना पड़ता है जैसे सूखी लकड़ी के साथ गीली लकड़ी भी जल जाती है इसलिये पापी लोगों के साथ नहीं रहना चाहिये।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधाः बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते।।

उद्योग०-34/74

मूर्ख और नीच पुरुष बुद्धिमानों को गाली और निन्दा से कष्ट देते हैं। गाली देने वाले को पाप लगता है और क्षमा करने वाला पाप से छूट जाता है।

बल

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्।।

उद्योग०-34/75

दुष्टों का बल हिंसा है, राजाओं का बल है दण्ड देना। स्त्रियों का बल सेवा है और गुणवानों का बल क्षमा है।

वाणी संयम

वाक्संयमो राजन् सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहुभाषितम्।।

उद्योग०-34/76

राजन्! अपनी वाणी पर संयम रखना बहुत ही कठिन होता है। अर्थ युक्त और चमत्कारपूर्ण बात बहुत देर तक नहीं कही जा सकती।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते।।

उद्योग०-34/77

राजन्! मधुर शब्दों में कही हुई बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है किन्तु कटु शब्दों में कही गई वही बात अनर्थ कर देती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।।

उद्योग०-34/78

तीरों से हुआ घाव भर जाता है। फरसे से काटा हुआ जंगल फिर उग आता है किन्तु कटु वचनों से किया गया घाव कभी नहीं भरता।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः।।

उद्योग०-34/80

मुंह से निकले हुए कटु वचनों के बाण दूसरों के मर्मस्थलों पर चोट करते हैं जिनकी मार से मनुष्य रात दिन घुलता रहता है अतः विद्वान् को दूसरों पर कटुवचनों से चोट नहीं करनी चाहिये।

बुद्धि का नाश

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति।।

उद्योग०-35/81

देवता जिसकी हार चाहते हैं वे उसकी बुद्धि हर लेते हैं इसलिये ऐसा मनुष्य नीच कर्मों के बारे में ही सोचता रहता है।

बुद्धौ कलुष भूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति।।

उद्योग०-35/82

विनाश काल आने पर बुद्धि मलिन हो जाती है तब न्याय जैसा दीखने वाला अन्यायपूर्ण विचार हृदय से नहीं निकल पाता है।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्।।

उद्योग०-35/40

देवता चरवाहे की तरह लाठी लेकर किसी की रक्षा नहीं करते। वे जिसको बचाना चाहते हैं उसे अच्छी बुद्धि दे देते हैं।

शिव संकल्प

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः।।

उद्योग०-35/41

मनुष्य जैसे-जैसे अच्छी बातों में मन लगाता है वैसे-वैसे ही उसकी मनचाही सभी बातें पूरी हो जाती हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हैं।

बुरी आदतें

मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्ययोरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः।।

उद्योग०-35/43

शराब पीना, झगड़ना, समूह के साथ वैर, स्त्री और सन्तान के बीच मनमुटाव, संबन्धियों से भेदभाव, राजा से द्वेष, स्त्री और पुरुष की कलह और बुरा रास्ता इन सबको छोड़ देना चाहिये।

गवाह

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सदा।।

उद्योग०-35/44

हस्तरेखा देखने वाले ज्योतिषी, चोरी का माल बेचने वाले, जुआरी, चिकित्सा

या इलाज करने वाले, शत्रु, मित्र और नर्तक इन सात को कभी भी गवाह नहीं बनाना चाहिये।

पहिचान

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च।।

उद्योग०-35/49

जलती हुई आग से सोने की पहिचान होती है। सदाचार से सज्जन की और व्यवहार से श्रेष्ठ पुरुष की, भय के अवसर पर वीर पुरुष की, अर्थ संकट में धीर पुरुष की और कठिन विपत्ति में शत्रु तथा मित्र की पहिचान होती है।

नष्ट करने वाले पदार्थ

जरारूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्य सेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः।।

उद्योग०-35/50

बुढ़ापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, ईर्ष्या धर्म को, क्रोध बड़प्पन को, नीच पुरुष की सेवा चरित्र को, काम वासना लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

सम्पत्ति बढ़ाने के उपाय

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात् तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति।।

उद्योग०-35/51

अच्छे कार्यों से लक्ष्मी पैदा होती है, परिश्रम से बढ़ती है, चतुराई से जड़ जमा लेती है और संयमपूर्वक रहने से सुरक्षित रहती है।

राज सम्मान

राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति।।

उद्योग०-35/53

राजा जब किसी पुरुष का सत्कार करता है तब यह गुण सब गुणों से अधिक हो जाता है।

सज्जनों और सन्तों के गुण

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः।।

उद्योग०-35/55

यज्ञ, दान, स्वाध्याय और तप ये चार गुण सज्जनों के साथ सदा रहते हैं। इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता और दया ये चार गुण सन्तों में पाये जाते हैं।

धर्म का रास्ता

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।

उद्योग०-35/56

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तपस्या, सत्य, क्षमा, दया और लोभ न करना ये आठ गुण धर्म पर चलने के मार्ग हैं।

सभा

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्।।

उद्योग०-35/58

जिस सभा में अनुभवी वृद्ध न हों वह सभा नहीं होती। जो धर्म की बात न कहें वे वृद्ध नहीं कहलाते, जिस बात में सत्य न हो वह धर्म नहीं होती और जिस बात में छल-कपट हो वह सत्य नहीं होती।

पाप-पुण्य का फल

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते।।

उद्योग०-35/60

पाप करने वाला पापकीर्ति मनुष्य पाप का फल ही पाता है। पुण्य करने वाला पुण्यकीर्ति मनुष्य पुण्यफल का खूब उपभोग करता है।

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः।।

उद्योग०-35/61

बार बार किया हुआ पाप बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है।

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः।।

उद्योग०-35/62

नष्ट हुई बुद्धि वाला सदा पाप कर्म ही करता रहता है। बार-बार किया हुआ पुण्य का काम बुद्धि को बढ़ाता है।

बुद्धिमान का साथ

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम्।।

उद्योग०-35/66

जो व्यक्ति बुद्धिमान पुरुषों से सद्बुद्धि प्राप्त करता है वही पण्डित है। बुद्धिमाान व्यक्ति धर्म और अर्थ को प्राप्त करके अनायास ही उन्नति कर लेता है।

उचित समय पर काम

दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तु तत् कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत्।।

उद्योग०-35/67

दिन में ही सब काम कर लेने चाहियें ताकि रात आराम से बिताई जा सके। वर्ष के आठ महीनों में ही सारे काम निपटा लेने चाहियें जिससे वर्षा के महीने आराम से बीत सकें।

पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्।।

उद्योग०-35/68

आयु के प्रारम्भ में ऐसे काम करने चाहियें जिनसे बुढ़ापा आराम से बीते। जीवन भर ऐसे काम करने चाहियें जिनसे परलोक में सुख मिले।

प्रशंसित पदार्थ

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम्।।

उद्योग०-35/69

सज्जन; पच जाने पर अन्न की, यौवन बीत जाने पर पत्नी की, संग्राम जीत लेने पर वीर की और संसार सागर पार करने पर तपस्वी की प्रशंसा करते हैं।

पाप की कमाई

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृत्तं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।।

उद्योग०-35/70

अधर्म से प्राप्त धन से जो अपना छिद्र ढकता है वह छिद्र ढका नहीं जाता अपितु उसमें और भी दरार पड़ जाती है।

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।।

उद्योग०-35/71

मन और इन्द्रियों को वश में करने वाले शिष्यों के शासक गुरु होते हैं, दुष्टों के शासक राजा और छिपकर पाप करने वालों के शासक सूर्यपुत्र यमराज होते हैं।

उत्पत्ति स्थान

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च।।

उद्योग०-35/72

ऋषियों, नदियों, वंशों, महात्माओं और स्त्रियों के दुश्चरित्र का उत्पत्ति स्थान पता नहीं चल सकता।

सफल व्यक्ति

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।।

उद्योग०-35/74

वीर, विद्वान् और सेवा धर्म जानने वाले मनुष्य पृथ्वी के सुवर्ण पुष्प लेते हैं।

श्रेष्ठ और नीच कर्म

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च।।

उद्योग०-35/75

भारत! बुद्धि बल से किये गये काम श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबल से किये गये काम मध्यम श्रेणी के, जांघ से किये गये काम अधम तथा भार ढोने का काम सबसे बुरा है।

धर्मोपदेश

एतत् कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत।।

उद्योग०-36/4

देवताओ! मैंने सुना है कि धैर्य, मनोनिग्रह और सत्य धर्मों के पालन से ही हृदय की ग्रन्थि (संशय) खुल सकती है। प्रिय और अप्रिय को अपनी आत्मा के समान ही समझना चाहिये।

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति।।

उद्योग०-36/5

किसी के गाली देने पर भी जवाब में गाली नहीं देनी चाहिये। गाली सहन करने वाले का सात्विक क्रोध (मन्यु) गाली देने वाले को जला देता है और उसका पुण्य भी ले लेता है।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचां रुषतीं वर्जयीत।।

उद्योग०-36/6

दूसरों को न तो गाली दे और न ही उनका अपमान करे। मित्रों से द्रोह तथा नीच लोगों की सेवा न करे। सदाचार से हीन और अभिमानी न हो। रूखी और रोषयुक्त वाणी कभी भी न बोले।

कड़वी बात

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।।

उद्योग०-36/7

रूखी वाणी मनुष्यों के मर्म स्थलों, हड्डियों, हृदय तथा प्राणों को जला डालती है।

अरुन्तुदं परुषं रुक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुन्दन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वै वहन्तम्।।

उद्योग०-36/8

मर्मस्थल को बींधने वाली, कठोर और रूखी वाणी के कांटों से मनुष्यों को कष्ट देने वाला सबसे बड़ा लक्ष्मीनाशक होता है, उसके मुंह में डायन (निर्ऋति) बैठी रहती है।

संगति का प्रभाव

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति।।

उद्योग०-36/10

कपड़े को जिस रंग में रंगा जाता है वह उसी रंग का हो जाता है वैसे ही जो पुरुष सज्जन, दुष्ट, तपस्वी या चोर के सम्पर्क में रहता है वह उन्हीं के जैसा बन जाता है।

सज्जन

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद् योऽनाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय।।

उद्योग०-36/11

जो किसी को बुरी बात नहीं कहता या कहलाता, बिना मार खाये किसी को नहीं मारता या मरवाता, जो पापी को भी नहीं मारना चाहता ऐसे पुरुष की देवता स्वर्ग में प्रतीक्षा करते हैं।

वाणी के गुण

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहु सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्।।

उद्योग०-36/12

बोलने से न बोलना ही अच्छा है। यदि बोलना ही पड़े तो सत्य कहना चाहिये यह दूसरा पक्ष है। सत्य कथन से भी प्रिय वचन तीसरा पक्ष है और धर्मानुसार बोलना अन्तिम पक्ष है।

यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः।।

उद्योग०-36/13

मनुष्य जैसा बनना चाहता है वह वैसा ही बन जाता है।

मनोनिग्रह

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि।।

उद्योग०-36/14

मनुष्य जिन-जिन बातों से मन हटा लेता है वह उनसे मुक्त हो जाता है। सभी विषयों से मन मोड़ लेने पर मनुष्य को तनिक भी दुःख नहीं होता।

श्रेष्ठ पुरुष

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान् न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम्।।

उद्योग०-36/15

जो स्वयं न तो किसी से जीता जाता है और न ही और लोगों को जीतने की इच्छा करता है। जो किसी से वैर नहीं करता और बदले में चोट नहीं करता, निन्दा और स्तुति में समान भाव से रहता है ऐसा व्यक्ति हर्ष और शोक से ऊपर उठ जाता है।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः।।

उद्योग०-36/16

जो सबका कल्याण चाहता है, किसी का बुरा होने की बात मन में नहीं लाता, जो सत्यवादी, सरल और जितेन्द्रिय है वही श्रेष्ठतम पुरुष है।

मध्यम पुरुष

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः।।

उद्योग०-36/17

जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, प्रतिज्ञा करके दे देता है और दूसरों के दोष जानता है वह मध्यम श्रेणी का व्यक्ति होता है।

नीच पुरुष

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः।।

उद्योग०-36/18

जो कठोर शासक अनेक दोषों से युक्त, कलंकित, क्रोध में भरकर बुरे काम को नहीं छोड़ता, किसी का उपकार नहीं मानता, किसी का मित्र नहीं होता और दुष्टात्मा है ऐसा व्यक्ति नीच होता है।

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशंकितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः।।

उद्योग०-36/19

जो अपने ऊपर भी विश्वास न होने के कारण दूसरों से भी कल्याण होने का विश्वास नहीं करता और मित्रों को दूर रखता है वह नीच पुरुष होता है।

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्मान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद भूतिमात्मनः।।

उद्योग०-36/20

जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है उसे उत्तम पुरुषों की सेवा करनी चाहिये। समय आ पड़ने पर मध्यम पुरुषों की भी सेवा करे किन्तु नीच पुरुषों का साथ भूलकर भी न करे।

उत्तम कुल

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततमन्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि।।

उद्योग०-36/23

तप, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रों का स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्न दान और सदाचार ये सात गुण जिनमें होते हैं वे उत्तम कुल कहलाते हैं।

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ते कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि।।

उद्योग०-36/24

जिनका सदाचार कम नहीं होता, जो अपने दोषों से माता-पिता को कष्ट नहीं

देते, प्रसन्न मन से धर्मपालन करते हैं तथा असत्य को छोड़कर अपने कुल की विशेष कीर्ति चाहते हैं वे कुलीन होते हैं।

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।।

उद्योग०-36/28

गायों, मनुष्यों और धन से सम्पन्न कुल भी यदि सदाचार से रहित हों तो वे अच्छे कुल (महाकुल) नहीं माने जाते।

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः।।

उद्योग०-36/29

कम धन वाले कुल यदि सदाचार सम्पन्न होते हैं तो वे उत्तम कुल माने जाते हैं और बहुत यश कमाते हैं।

चरित्र की रक्षा

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।

उद्योग०-36/30

अपने चरित्र की रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये। सम्पत्ति तो आती जाती रहती है। धन से रहित चरित्रवान व्यक्ति हीन नहीं माना जाता किन्तु चरित्र और सदाचार से भ्रष्ट पुरुष नष्ट ही हो जाता है।

कुलीन व्यक्ति

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।

उद्योग०-36/34

तिनकों का आसन, पृथ्वी, जल और मीठी वाणी ये चार चीजें सन्तों के घर में सदा रहती हैं।

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वे शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः।।

उद्योग०-36/36

राजन्! जैसे सैंदन (स्यन्दन) के पेड़ की छोटी लकड़ी भी रथ का भार उठा लेती हैं दूसरे पेड़ों की लकड़ी यह नहीं कर सकती उसी प्रकार जो कुलीन होते हैं वही समाज का उत्तरदायित्व संभालते हैं दूसरे लोग नहीं।

मित्र

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति यद् वा मित्रं शंकितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत तद् वै मित्रं संगतानीतराणि।।

उद्योग०–36/37

जिसके क्रोध से डर लगे तथा आशंकित रहकर जिसकी सेवा करनी पड़े। ऐसा व्यक्ति मित्र नहीं होता। मित्र तो वही है जिसका पिता की भांति विश्वास किया जा सके। अन्य व्यक्ति तो साथी ही हैं।

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम्।।

उद्योग०–36/38

कोई सम्बन्ध न होने पर भी जो व्यक्ति मित्र की तरह व्यवहार करता है, वही भाई, मित्र, सहायक और सहारा होता है।

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः।।

उद्योग०–36/39

चंचल चित्त, वृद्धों की सेवा न करने वाला और अस्थिर बुद्धि वाला पुरुष स्थायी रूप से मित्र नहीं बना सकता।

दुर्जन

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा।।

उद्योग०–36/41

दुष्ट पुरुषों का स्वभाव बादल की तरह चंचल होता है। वे सहसा गुस्सा हो जाते हैं और बिना बात प्रसन्न हो जाते हैं।

शोक

संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते बलम्।
संतापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद् व्याधिमृच्छति।।

उद्योग०-36/44

शोक से रूप, शक्ति और ज्ञान नष्ट हो जाता है तथा बीमारी लग जाती है।

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः।।

उद्योग०-36/45

मनचाही वस्तु शोक करने से नहीं मिलती। शोक से शरीर को ही कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं अतः शोक नहीं करना चाहिये।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत्।।

उद्योग०-36/47

सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु ये बारी-बारी आते रहते हैं। अतः धीर पुरुष को हर्ष या शोक नहीं करना चाहिये।

शान्ति

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ।।

उद्योग०-36/51

हे पाप रहित! विद्या, तप, इन्द्रिय संयम और लोभ त्याग के सिवाय और किसी उपाय से आपकी शान्ति का उपाय मुझे नहीं दीख रहा है।

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन गच्छति।।

उद्योग०-36/52

मनुष्य बुद्धि से भय को दूर करता है, तपस्या से महत्पद प्राप्त करता है, गुरुजनों की सेवा से ज्ञान और योगाभ्यास से शान्ति पाता है।

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते।।

उद्योग०-36/54

भलीभांति अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्य कर्म और भलीभांति की गई तपस्या के अन्त में सुख बढ़ता है।

वैर

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः।।

उद्योग०-36/55

राजन्! आपस में फूट वाले लोगों को अच्छे बिछौनों पर भी नींद नहीं आ पाती। इन्हें स्त्रियों के साथ से और चारणों की स्तुति से भी प्रसन्नता नहीं होती।

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति।।

उद्योग०-36/56

परस्पर फूट वाले धर्म पर नहीं चलते, उन्हें सुख भी नहीं मिलता, उन्हें सम्मान भी नहीं मिलता। उन्हें शान्ति की बात अच्छी नहीं लगती।

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात्।।

उद्योग०-36/57

आपस में लड़ने वालों को हित की बात अच्छी नहीं लगती, उनका योग और क्षेम सिद्ध नहीं हो पाता। आपसी भेदभाव वालों की विनाश के सिवाय और कोई गति नहीं होती।

सम्बन्धियों से आशंका

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम्।।

उद्योग०-36/58

जैसे गौओं में दूध, ब्राह्मणों में तप, युवती स्त्रियों में चंचलता की सम्भावना होती है वैसे ही अपनी जाति वालों से भय की सम्भावना रहती है।

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ।।

उद्योग०-36/60

भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियां अलग पड़कर धुआं देती है किन्तु मिलकर जलने लगती है इसी प्रकार जाति बन्धु अलग होकर दु:ख पाते हैं और एक रहकर सुख।

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्।।

उद्योग०-36/62

अकेला खड़ा हुआ बहुत बड़ा और जमी हुई जड़ वाला पेड़ भी एक ही क्षण में आंधी के झोंके से तने सहित गिर पड़ता है।

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्।।

उद्योग०-36/63

जो वृक्ष झुण्ड में एक साथ मिलकर खड़े होते हैं वे एक दूसरे के सहारे से प्रचण्ड वायु के झोंके भी सह लेते हैं।

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः।।

उद्योग०-36/66

ब्राह्मण, गाय, सम्बन्धी, शिशु, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत ये अबध्य होते हैं।

रोगी

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः।।

उद्योग०-36/67

मनुष्य में धन और आरोग्य के सिवाय और कोई गुण नहीं है। रोगी मनुष्य तो मुर्दे जैसा ही होता है। राजन् आपका भला हो।

रोगार्दिता न फलान्यादियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान् न सौख्यम्।।

उद्योग०-36/69

रोगी मनुष्यों को फल अच्छे नहीं लगते, न ही उन्हें विषय भोगों का सुख

मिलता है। रोगी सदा दु:खी रहते हैं। वे धन का और सुख सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते।

धर्माचरण

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्य:।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्।।

उद्योग०-36/71

वह बल नहीं होता जिसका मृदु स्वभाव वाले से विरोध हो। सूक्ष्म धर्म का तत्परता से पालन करना चाहिये। क्रूर उपायों से प्राप्त लक्ष्मी नष्ट हो जाती है किन्तु मृदु उपायों से प्राप्त लक्ष्मी पुत्र पौत्रों तक जाती है।

बुद्धि के शत्रु

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नत:।। उद्योग०-37/1
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत्।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा।।

उद्योग०-37/2

विचित्रवीर्यपुत्र हे राजन्! स्वायम्भव मनु ने इन सत्रह प्रकार के मनुष्यों को बुद्धि का शत्रु बताया है-जो आकाश पर मुट्ठी से प्रहार करता है, जो इन्द्र धनुष को झुकाना चाहता है या जो पकड़ में न आने वाली सूर्य की किरणों को पकड़ना चाहता है।

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद् यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम्।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते यश्चायाच्यं याचते कत्थते च।।

उद्योग०-37/3

जो अशिष्य को सिखाता है, जो मर्यादा का उल्लंघन करके सन्तुष्ट रहता है, जो शत्रु की सेवा करता है। जो अयोग्य स्त्री की रक्षा करके अपना कल्याण चाहता है, जो याचना करने के अयोग्य पुरुष से कुछ मांगता है, जो आत्म प्रशंसा करता है।

यश्चाभिजात: प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र।।

उद्योग०-37/4

जो अच्छे कुल में पैदा होकर भी बुरे काम करता है, जो दुर्बल होकर भी बलवान से वैर बांधता है, जो श्रद्धा से रहित (सुनना न चाहने वाले को) पुरुष को उपदेश देता है, जो अवांछनीय वस्तु की कामना करता है।

वध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो वध्वा वसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति स्वबीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम्।।

उद्योग०-37/5

जो श्वसुर होकर पुत्रवधु के साथ हंसी मजाक करता है और पुत्रवधु के साथ अकेले रहकर भी समाज में अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, जो दूसरे के खेत में बीज बोता है और जो आचार-विचार हीन स्त्री के मुंह लगता है।

यश्चापि लब्ध्वापि न स्मरामीति वादी दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत एतान् नयन्ति निरयं पाशहस्ताः।।

उद्योग०-37/6

जो किसी से कोई चीज लेकर लौटाना नहीं चाहता और कह देता है मैं भूल गया। जो मांगने पर दान देकर अपनी डींग हांकता है और जो झूठ को सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। इन सबको यमदूत नरक में ले जाते हैं।

जैसे को तैसा

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारो साधुना प्रत्युपेयः।।

उद्योग०-37/7

जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। छलकपट का सहारा लेने वाले के साथ कपट का और अच्छा व्यवहार करने वाले के साथ भली तरह व्यवहार करना चाहिये।

आयु घटने के छह कारण

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्।। उद्योग०-37/10

एत एवासयस्तीक्ष्णा कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवानि घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तुते।।

उद्योग०-37/11

राजन् आपका कल्याण हो। अत्यधिक अभिमान, बहुत बोलना, त्याग न करना, क्रोध, अपना ही पेट पालना और मित्रद्रोह यह छह तीखी तलवारें प्राणियों की देह को काटती हैं मृत्यु नहीं। इसीलिये मनुष्य सौ वर्ष नहीं जी पाता।

नीच पुरुष

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत।। उद्योग०-37/12

आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।।

उद्योग०-37/13

भारत! जो विश्वास करने वाले पुरुष की स्त्री के साथ और गुरुपत्नी के साथ सम्भोग करता है, ब्राह्मण होकर शूद्रा से विवाह करता है, शराब पीता है, ब्राह्मणों पर हुक्म चलाता है, उनकी जीविका नष्ट करता है और उन्हें काम करने के लिये इधर-उधर भेजता है तथा शरणागत को मारता है ये सब लोग ब्रह्महत्या के अपराधी होते हैं।

श्रेष्ठ व्यक्ति

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्।।

उद्योग०-37/14

बड़ों की आज्ञा मानने वाला, नीतिज्ञ, उदार, यज्ञशेष का अन्न खाने वाला, हिंसा न करने वाला, अनर्थकारी काम न करने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल वाणी बोलने वाला विद्वान् पुरुष स्वर्ग में जाता है।

हितकारी बात कहने वाला

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

उद्योग०-37/15

राजन्! सदा प्रिय बोलने वाले मनुष्य आसानी से मिल जाते हैं किन्तु अप्रिय होने पर भी हितकारी बात कहने वाला और ऐसी बात सुनने वाला मुश्किल से मिलता है।

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्।।

उद्योग०-37/16

जो धर्म के अनुसार तथा स्वामी को अच्छा लगेगा या बुरा इस बात पर ध्यान न देकर अप्रिय किन्तु हितकारी बात कहता है उसी से राजा को सच्ची सहायता मिलती है।

अपनी रक्षा

आपदार्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।

उद्योग०-37/18

आपत्ति के लिये धन बचाना चाहिये, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करनी चाहिये किन्तु धन और स्त्री इन दोनों से अपनी रक्षा सदा करनी चाहिये।

जुआ

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।।

उद्योग०-37/19

प्राचीन समय में जुआ खेलने से मनुष्यों में वैर होता हुआ देखा गया है इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को हंसी खेल में भी जुआ नहीं खेलना चाहिये।

सेवक

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति।।

उद्योग०-37/22

तात! जो सदा हित में लगे रहने वाले अपने भक्त सेवक पर कभी क्रोध नहीं करता उसका सेवक विश्वास करते हैं और उसे आपत्ति में नहीं छोड़ते हैं।

न भृत्यानां वृत्ति संरोधनेन राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीन भोगाः।।

उद्योग०-37/23

सेवकों की जीविका बन्द करके राज्य और धन का अपहरण नहीं करना चाहिये क्योंकि अपनी जीविका छिन जाने से भोगों से वंचित मंत्री जो पहले राजा से स्नेह करते थे वे भी राजा के विरोधी बन जाते हैं और राजा का साथ छोड़ देते हैं।

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः।।

उद्योग०-37/25

जो सेवक, स्वामी का अभिप्राय समझ कर उसके सारे काम आलस्यरहित होकर करता है, जो हितकारी बात कहता है, स्वामीभक्त, सज्जन है और स्वामी की सामर्थ्य को जानता है ऐसे सेवक को अपने समान मानकर उस पर कृपा करनी चाहिये।

नीच सेवक

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः।।

उद्योग०-37/26

जो सेवक, स्वामी की आज्ञा नहीं मानता, किसी काम में लगाने पर उस काम को करने से इन्कार कर देता है, जो अपनी बुद्धि पर अभिमान करता है और उल्टा बोलता है ऐसे सेवक को जल्दी ही छोड़ देना चाहिये।

दूत

अस्तब्धमक्लीवमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम्।।

उद्योग०-37/27

अहंकाररहित, कायरतारहित, काम जल्दी करने वाला, दयालु, शुद्ध हृदय, दूसरों से प्रभावित न होने वाला, नीरोग और बात करने में कुशल इन आठ गुणों वाला व्यक्ति दूत बनाने योग्य होता है।

उपयोगी सलाह

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत।।

उद्योग०-37/28

सावधान मनुष्य किसी का विश्वास करके असमय में दूसरे के घर न जाये। रात में चौराहे पर छिपकर खड़ा न हो और जिस स्त्री को राजा चाहता हो उसे न चाहे।

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते।।

उद्योग०–37/29

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चे वाली विधवा, सैनिक और अधिकार छिने हुए व्यक्ति के साथ लेन देन न करे।

स्नान

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः।।

उद्योग०–37/33

नित्य स्नान करने वाले को बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दर स्त्रियां ये दस लाभ मिलते हैं।

मिताहार

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति।।

उद्योग०–37/34

थोड़ा भोजन करने वाले को नीरोगता, दीर्घायु, बल और सुख प्राप्त होते हैं। उसकी सन्तान उत्तम होती है, उसे लोग पेटू नहीं कहते। मिताहार के ये छंह लाभ हैं।

नीच पुरुष

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत।।

उद्योग०–37/35

काम न करने वाले, बहुत खाने वाले, लोगों से वैर करने वाले, अत्यधिक छलकपट करने वाले, क्रूर, देश और काल को न जानने वाले और अनुचित वस्त्र पहनने वाले व्यक्ति को अपने घर में नहीं ठहराना चाहिये।

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम्।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत्।।

उद्योग०–37/36

बहुत कठिनाई में पड़ने पर भी कंजूस, गाली-गलौज करने वाले, मूर्ख, जंगल में रहने वाले, धूर्त, नीच पुरुषों के साथी, क्रूर, वैर बांधने वाले और उपकार न मानने वाले से सहायता नहीं मांगनी चाहिये।

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान् न सेवेत नराधमान् षट्।।

उद्योग०-37/37

दुःख देने वाले काम करने वाले, अत्यधिक आलसी, सदा झूठ बोलने वाले, अस्थिर वफादारी वाले, स्नेहरहित और अपने को चतुर माानने वाले इन छह नीच लोगों के पास न रहे।

धन प्राप्ति

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिद्ध्यतः।।

उद्योग०-37/38

धन कमाने के लिये सहायक की जरूरत होती है और सहायक धन पाने की आशा करता है। धन और सहायक एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं इनके परस्पर सहयोग के बिना धन प्राप्त नहीं होता।

कर्त्तव्य पालन

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित्।
स्थाने कुमारी प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत्।।

उद्योग०-37/39

पुत्र उत्पन्न करके उन्हें ऋण के भार से मुक्त करके उनके लिये जीविका का प्रबन्ध कर दे और पुत्रियों का योग्य परिवार में विवाह करके मुनिवृत्ति से वन में रहे।

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थ सिद्धये।।

उद्योग०-37/44

जो काम सभी प्राणियों के लिये हितकारी हो और अपने को सुख देने वाला हो उसे ईश्वरार्पण बुद्धि से करे। सभी सिद्धियों का यही मूल मन्त्र है।

योग्य पुरुष

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः।।

उद्योग०-37/41

जिसमें आगे बढ़ने की शक्ति, प्रभाव, तेजस्विता, पराक्रम, उद्योगशीलता, और अपने कर्तव्य का बोध है उसे अपनी जीविका नष्ट होने का भय नहीं होता।

पापी मनुष्य

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः।।

उद्योग०-37/47

जिन लोगों का मन पापकर्मों में लगा रहता है वे दूसरों के कल्याणकारी गुणों को उसी तरह नहीं जानना चाहते जैसे वे दूसरों के दोष जानना चाहते हैं।

धर्माचरण से धन

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्।।

उद्योग०-37/48

जो पर्याप्त धन चाहता हो उसे शुरू से ही धर्म पालन करना चाहिये। जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं है वैसे ही धर्म से अर्थ दूर नहीं होता।

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या।।

उद्योग०-37/49

जिसका मन पाप से हटकर कल्याण में लग जाता है वह संसार में प्रकृति और इसके सभी विकारों (प्रकृति से बने पदार्थों) को जान लेता है।

संयमी पुरुष

संनियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति।।

उद्योग०-37/51

राजन्! जो व्यक्ति क्रोध और प्रसन्नता के वेग को रोक लेता है और विपदाओं में घबराता नहीं है वह लक्ष्मी प्राप्त करता है।

पाँच बल

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत् तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते।।

उद्योग०-37/52

अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः।।

उद्योग०-37/53

यत् त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम्।।

उद्योग०-37/54

येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते।।

उद्योग०-37/55

राजन्! आपका भला हो। मनुष्यों में पांच तरह का बल होता है। बाहुबल निकृष्ट होता है। दूसरा बल मन्त्री का मिलना होता है। तीसरा बल धन प्राप्ति होता है। बाप दादों से प्राप्त स्वाभाविक बल 'अभिजात' बल कहलाता है जो चौथा बल है। किन्तु सर्वश्रेष्ठ बल बुद्धिबल होता है।

बुद्धिबल

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मंगलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः।।

उद्योग०-37/58

जिसे बुद्धि के बल से मारा जाता है उसके लिए न तो कोई वैद्य है, न दवा है, न यज्ञ, न मन्त्र, न कोई मांगलिक कार्य, न अथर्ववेद का कोई प्रयोग और न ही कोई सिद्ध की हुई जड़ी बूटी है।

अविश्वास

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति।।

उद्योग०-37/57

ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो स्त्री, राजा, सांप, पढ़े हुए पाठ, शक्तिशाली व्यक्ति, शत्रु, भोग ऐश्वर्यों और अपनी आयु का विश्वास कर सकता है।

तेजस्वी पदार्थ

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः।।

उद्योग०-37/59

भारत! मनुष्य को सांप, आग, सिंह और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर या उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि ये सब बहुत तेजस्वी होते हैं।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद् दारु यावन्नोदीप्यते परैः।।

उद्योग०-37/60

संसार में तेजस्वी अग्नि लकड़ियों में छिपी रहती है। अग्नि तब तक लकड़ी को नहीं जलाती जब तक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न कर दें।

शिष्टाचार

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।।

उद्योग०-38/1

जब कोई माननीय वृद्ध पुरुष किसी युवक के पास आता है तब उस युवक के प्राण ऊपर उठने लगते हैं। उस युवक को उठकर वृद्ध को प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करने से उसके प्राणों में फिर सन्तुलन आ जाता है।

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः।।

उद्योग०-38/2

अभ्यागत सज्जन को पहले आसन देना चाहिये, फिर पैर धोने के लिये पानी।

कुशल पूछकर अपने पास जो कुछ सुलभ हो उस वस्तु से और अन्नादि से उसका सत्कार करे।

श्रेष्ठ साधक

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः प्रहीणशोको गत सन्धिविग्रहः।
निन्दा प्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः।।

उद्योग०-38/6

जो क्रोध न करे, मिट्टी, लोहे और सोने को एक सा मानता हो, शोक रहित, सन्धिविग्रह से दूर, निन्दा-प्रशंसा से रहित, प्रिय-अप्रिय का त्याग करने वाला तथा संसार से उदासीन व्यक्ति भिक्षुक होता है।

नीवार मूलेङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः।।

उद्योग०-38/7

जो जंगली चावल, कन्दमूल, इंगुदी फल और शाक खाता है, मन को वश में रखता है, अग्निहोत्र करता है, वन में रहता हुआ भी अतिथि सत्कार करता है, ऐसा पुण्यात्मा तपस्वी श्रेष्ठ होता है।

बुद्धिमान का अपमान

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः।।

उद्योग०-38/8

बुद्धिमान पुरुष का बुरा करके यह न समझ बैठे कि मैं उससे दूर हूँ, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष के हाथ बड़े लम्बे होते हैं वह सताया जाने पर पूरा बदला लेता है।

विश्वास

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।।

उद्योग०-38/9

जो विश्वास करने योग्य नहीं है उसका विश्वास नहीं करना चाहिये और विश्वस्त पुरुष का भी बहुत विश्वास नहीं करना चाहिये। विश्वास से उत्पन्न भय जड़ को भी काट डालता है।

आदर्श पुरुष

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्षणो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्।।

उद्योग०-38/10

मनुष्य को ईर्ष्या रहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का उचित बंटवारा करने वाला, प्रियवादी, स्वच्छ, स्त्रियों से मीठी बात करने वाला किन्तु उनके वश में न आने वाला होना चाहिये।

गृहलक्ष्मी

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः।।

उद्योग०-38/11

स्त्रियां आदर योग्य, सौभाग्यशालिनी, पवित्र और घर की शोभा होती हैं। वे गृहलक्ष्मी होती हैं अतः उनकी विशेषरूप से रक्षा करनी चाहिये।

क्रोध नहीं

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च।।

उद्योग०-38/30

देवताओं, राजाओं, ब्राह्मणों, बूढ़ों, बच्चों और रोगियों पर क्रोध नहीं करना चाहिये।

कलह

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते।।

उद्योग०-38/31

मूर्खों को अच्छी लगने वाली व्यर्थ की कलह में बुद्धिमान को नहीं पड़ना चाहिये। ऐसा करने से उसे यश मिलता है, और वह संकटों से दूर रहता है।

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः।।

उद्योग०-38/33

बुद्धि से धन मिलता है और मूर्खता के कारण मनुष्य दरिद्र होता है ऐसा कोई नियम नहीं है। संसारचक्र की गति को बुद्धिमान ही जानता है अन्य लोग नहीं।

मूर्ख

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते।।

उद्योग०-38/34

भारत! मूर्ख व्यक्ति; विद्या, चरित्र, आयु, बुद्धि, धन और कुल में बड़े माननीय पुरुषों का सदा अनादर किया करता है।

संकट के कारण

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा।।

उद्योग०-38/35

चरित्रहीन, मूर्ख, ईर्ष्यालु, अधार्मिक, कटुभाषी और क्रोधी व्यक्ति पर मुसीबतें जल्दी ही आती हैं।

सभ्य आचरण

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक्।।

उद्योग०-38/36

ठगी न करने, दान देने, वचन पूरा करने और अच्छी तरह बोलने से सभी प्राणी अपने बन जाते हैं।

सम्पत्ति बढ़ाने वाले काम

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः।।

उद्योग०-38/38

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, दया, मधुर वाणी और मित्रों से द्रोह न करना ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ाती हैं।

संशय में पड़ा धन

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः।।

उद्योग०-38/42

जो धन आदि वस्तुएँ स्त्रियों, प्रमादी पुरुषों, पतितों और नीच लोगों को सौंप दी जाती हैं वे संशय में पड़ जाती हैं।

बुद्धिमान पुरुष

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः।।

उद्योग०-38/44

भारत! जो लोग अपने ही कामों में लगे रहते हैं और दूसरे कामों में नहीं उलझते उन्हें ही मैं पण्डित मानता हूँ क्योंकि दूसरे कामों में दखल देने से संघर्ष पैदा हो जाता है।

नीच पुरुष

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः।।

उद्योग०-38/45

जिस व्यक्ति की प्रशंसा जुआरी, भाट और वेश्याएँ करती हैं वह व्यक्ति मुर्दे जैसा होता है।

बेसुरी बात

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत।।

उद्योग०-39/2

भारत! यदि बृहस्पति भी अवसर के अनुकूल बात न कहें तो लोग उनकी बुद्धि पर हंसेंगे और उनका तिरस्कार करेंगे।

प्रिय व्यक्ति

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः।।

उद्योग०-39/3

कोई मनुष्य दान देने से प्रिय बनता है तो कोई मधुर वाणी या मन्त्र बल से प्रिय होता है। किन्तु जो वास्तव में प्रिय है वह सदा प्रिय रहता है।

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह।।

उद्योग०-39/4

जिससे द्वेष होता है वह न तो सज्जन, न बुद्धिमान और न ही विद्वान् लगता है। प्रिय व्यक्ति के सभी काम अच्छे लगते हैं और शत्रु के सभी काम बुरे लगते हैं।

समृद्धि

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहुमन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।।

उद्योग०-39/6

जो समृद्धि भविष्य में नाश का कारण बने उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। किन्तु उस क्षय का बहुत आदर करना चाहिये जिससे आगे समृद्धि मिले।

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्।।

उद्योग०-39/7

महाराज! उस नाश को नाश नहीं मानना चाहिये जिससे समृद्धि होती है। वास्तव में वही क्षय होता है जिसे पाकर बहुत कुछ नष्ट हो जाता है।

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय।।

उद्योग०-39/8

कुछ लोग गुणों से भरपूर होते हैं और कुछ धन से। धृतराष्ट्र! आप धन से भरपूर किन्तु गुणों से रहित पुरुषों को त्याग दीजिये।

नीच पुरुष

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः।।

उद्योग०-39/11

सदोषं दर्शनं येषां संवार्से सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम्।।

उद्योग०-39/12

जो लोग दूसरों की निन्दा में लगे रहते हैं, दूसरों को दुःख देने और आपस में फूट कराने के लिये सदा प्रयत्न करते रहते हैं। जिनको देखना भी अशुभ होता है, जिनके साथ रहने में भी बहुत खतरा होता है। ऐसे लोगों से पैसा लेना बहुत बुरा होता है उन्हें धन देने में भी बहुत खतरा होता है।

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः।।

उद्योग०-39/13

जो फूट डालते हैं, कामी, निर्लज्ज, धूर्त तथा पापी हैं उनके साथ रहना अच्छा नहीं होता।

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति।।

उद्योग०-39/14

जिन लोगों में और भी बुराइयाँ हों उनका साथ छोड़ देना चाहिये। मित्रता समाप्त हो जाने पर नीच लोगों का प्रेम भी नष्ट हो जाता है।

यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति।।

उद्योग०-39/15

नीच पुरुष अपना थोड़ा सा भी बुरा हो जाने पर निन्दा और विनाश के लिये प्रयत्न करने लगता है उस मूर्ख को शान्ति नहीं मिलती।

सम्बन्धी का सत्कार

श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्।।

उद्योग०-39/19

राजन्! अपने कुटुम्बी जनों का सत्कार करने वाले का कल्याण होता है।

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन।।

उद्योग०-39/24

कुटुम्बी जनों के साथ भोजन, बातचीत और स्नेह करना चाहिये विरोध नहीं।

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च।।

उद्योग०-39/25

इस जगत् में सम्बन्धी ही तारते या डुबाते हैं। सदाचारी कुटुम्बी तो तार देते हैं किन्तु दुश्चरित्र सम्बन्धी डुबा देते हैं।

अनुचित कार्य

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति।।

उद्योग०-39/29

इस जीवन का कोई ठिकाना नहीं है इसलिये शुरू से ही ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिसके कारण खाट पर बैठ कर पछताना पड़े।

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते।
यस्तु पूर्वंकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते।।

उद्योग०-39/35

जो बुद्धिमान पुरुष बुरे परिणामों वाला काम नहीं करता वह फलता-फूलता है। किन्तु जो पहले किये हुए बुरे कामों को ही करता जाता है वह मूर्ख घोर कीचड़ से भरे नरक में गिर पड़ते हैं।

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम्।।

उद्योग०-39/40

समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है। न सुनने वाले से कही गई बात नष्ट हो जाती है। असंयमी का ज्ञान और राख में किया गया यज्ञ भी नष्ट हो जाता है।

गुण

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्।।

उद्योग०-39/42

विनय, अपयश को नष्ट कर देती है और पराक्रम, मुसीबत को। क्षमा, क्रोध को और सदाचार, बुरे आचरण को नष्ट कर देता है।

कुल की पहचान

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया।
परीक्षेत् कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च।।

उद्योग०–39/43

राजन्! नाना प्रकार की ऐश्वर्य सामग्री, माता, घर, सत्कार, भोजन तथा वस्त्र से किसी कुल की परीक्षा करनी चाहिये।

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः।।

उद्योग०–39/44

देहाभिमान से मुक्त संयमी पुरुष को भी यदि वांछनीय वस्तुएं मिलती हैं तो वह इन्हें अस्वीकार नहीं करता फिर कामना युक्त पुरुष इन वस्तुओं को कैसे भुला सकता है?

मित्रता

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत्।।

उद्योग०–39/45

विद्वानों का साथ करने वाले, वैद्य, धार्मिक, सुन्दर, मित्रों से युक्त और अच्छा बोलने वाले मित्र का साथ नहीं छोड़ना चाहिये।

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यते।।

उद्योग०–39/47

जिन दो व्यक्तियों का चित्त से चित्त, रहस्य से रहस्य और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है उनकी मित्रता नहीं टूटती।

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति।।

उद्योग०–39/48

बुद्धिमान् पुरुष को तिनकों से ढके हुए कुएं की तरह बुरी बुद्धि वाले और सोच समझकर काम न करने वाले पुरुष का साथ छोड़ देना चाहिये क्योंकि ऐसे व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं निभती।

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद बुधः।।

उद्योग०-39/49

अभिमानी, मूर्ख, बिना सोचे समझे साहस के काम करने वाले और अधार्मिक पुरुष से बुद्धिमान को मित्रता नहीं करनी चाहिये।

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत्।।

उद्योग०-39/41

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि से परख कर और भले-बुरे का बार-बार निश्चय कर, दूसरों से सुनकर और देखभाल कर विद्वानों और बुद्धिमानों के साथ मित्रता करे।

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते।।

उद्योग०-39/50

कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग वाला, जितेन्द्रिय, मर्यादा में रहने वाला और मित्रता को न ठुकराने वाला अच्छा मित्र होता है।

संयम

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि।।

उद्योग०-39/51

इन्द्रियों को पूरी तरह वश में करना मृत्यु को वश में करने से भी कहीं कठिन है। किन्तु इन्हें खुली छूट दे देने से देवता भी नष्ट हो जाते हैं।

आयु बढ़ाने वाले गुण

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना।।

उद्योग०-39/52

सब प्राणियों के प्रति कोमल व्यवहार करने, ईर्ष्या न करने, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करने से आयु बढ़ती है।

सावधान व्यक्ति

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते।।

उद्योग०-39/54

जो आने वाली मुसीबत रोकने का उपाय जानता है, वर्तमान कर्त्तव्य का पालन दृढ़ निश्चय से करता है और पहले के बचे हुए कामों को जानता है ऐसे व्यक्ति के पास पैसे की कमी नहीं रहती।

कल्याण के उपाय

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्।।

उद्योग०-39/55

मनुष्य जिस बारे में मन, वचन और कर्म से निरन्तर लगा रहता है वह वस्तु या काम उस मनुष्य को अपना बना लेती है। अतः कल्याण के कामों में लगे।

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम्।।

उद्योग०-39/56

मंगलमयी वस्तुओं का संसर्ग, चित्तवृत्ति का निरोध, स्वाध्याय, उद्यमशीलता, सरल व्यवहार और सज्जनों का संग मनुष्य का कल्याण करते हैं।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चात्यन्तमश्नुते।।

उद्योग०-39/57

आलस्य छोड़ उद्योगशील रहना सम्पत्ति, लाभ और कल्याण का आधार है। उद्यमशील मनुष्य उन्नति करता है और खूब सुख भोगता है।

क्षमा

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा।।

उद्योग०-39/58

तात! प्रभावशाली व्यक्ति के लिये सब जगह और सभी समय क्षमा से बढ़कर अन्य कोई हितकारी और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनाने वाली वस्तु नहीं है।

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमाः हिता।।

उद्योग०-39/59

शक्तिहीन व्यक्ति को सभी को क्षमा करना चाहिये, शक्तिशाली को धर्म के कारण क्षमा करना चाहिये और जिसकी दृष्टि में अर्थ और अनर्थ दोनों ही एक जैसे हैं उसके लिये तो क्षमा सदा हितकारिणी होती है।

सात्विक सुख

यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्।।

उद्योग०-39/60

जिस सुख को भोगने से मनुष्य धर्म और अर्थ से भ्रष्ट नहीं होता उस सुख का यथेष्ट सेवन करना चाहिये किन्तु निद्रा और आलस्य में समय नष्ट न करे।

लक्ष्मी

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः।।

उद्योग०-39/61

दुःख से पीड़ितों, असावधान, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साह रहित पुरुषों के पास लक्ष्मी नहीं रहती।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति।।

उद्योग०-39/63

अत्यन्त श्रेष्ठ, अत्यधिक दानशील, अत्यन्त पराक्रमी, व्रत नियमों का बहुत पालन करने वाले और बुद्धि के घमण्ड में चूर रहने वाले पुरुष के पास डरी हुई लक्ष्मी नहीं आती।

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते।।

उद्योग०-39/64

लक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणी पुरुषों के पास रहती है और न ही गुणहीनों के पास। इसे न तो गुण अच्छे लगते हैं और न ही दोष। उन्मत्त गाय की तरह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है।

दुष्ट व्यक्ति

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः।।

उद्योग०-39/62

दुष्ट बुद्धि वाले लोग सरल व्यवहार वाले पुरुष को और सरलता के कारण संकोचशील व्यक्ति को कमजोर समझ कर तंग करते हैं।

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्।।

उद्योग०-39/65

वेदों का फल यज्ञ करना है और शास्त्रों के अध्ययन का फल चरित्र तथा सदाचार है। स्त्री का फल रतिसुख और पुत्र है तथा धन का फल दान और भोग है।

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शास्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्।।

उद्योग०-39/67

गहन वन में, दुर्गम रास्ते में, कठिन आपत्ति में, घबराहट में और युद्ध के लिये शस्त्र उठा लेने के अवसर पर आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति को डर नहीं लगता।

उन्नति के उपाय

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु।।

उद्योग०-39/68

उत्साह और उद्योग, संयम, चतुराई, सावधानी, धैर्य, स्मरण शक्ति तथा सोच-समझ कर कार्य प्रारम्भ करना ये गुण उन्नति के मूल मन्त्र हैं।

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्।।

उद्योग०-39/69

तपस्वियों का बल तपस्या है। ब्रह्मवेत्ताओं का बल ब्रह्म होता है। दुष्टों का बल हिंसा होती है और गुणी पुरुषों का बल क्षमा होती है।

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।।

उद्योग०-39/70

जल, कन्द-मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की इच्छापूर्ति, गुरु की आज्ञा और औषधि इन आठ वस्तुओं से व्रत नहीं टूटता।

धर्म

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते।।

उद्योग०-39/71

ज़ो बात अपने लिये बुरी लगे वह दूसरे के लिये भी न करे। संक्षेप में यही धर्माचरण है। जिस काम में किसी इच्छा से प्रवृत्ति होती हो वह अधर्म है।

सद्व्यवहार

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्।।

उद्योग०-39/72

अक्रोध से क्रोध पर विजय पाये और दुष्ट को अच्छे व्यवहार से वश में करे, कंजूस को दान से और झूठ को सत्य से जीते।

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके।।

उद्योग०-39/73

स्त्रीलम्पट, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक पुरुषों का विश्वास नहीं करना चाहिये।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

उद्योग०-39/74

नित्य गुरुजनों को प्रणाम करने वाले, वृद्धों की सेवा करने वाले पुरुष की आयु, विद्या, कीर्ति और बल बढ़ते हैं।

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः।।

उद्योग०-39/75

जो धन बहुत कष्ट उठाने से, धर्म का त्याग करने से या शत्रु के सामने सिर झुकाने से मिले उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

शोचनीय स्थिति

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्।।

उद्योग०-39/76

विद्याहीन पुरुष, सन्तानोत्पत्ति से रहित मैथुन, भूखी प्रजा और राजा से रहित राष्ट्र शोचनीय होता है।

दुःख

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा।।

उद्योग०-39/77

देहधारियों के लिये बहुत चलना, दुःख देने वाले बुढ़ापे जैसा है। अधिक वर्षा पर्वतों के लिये दुःखदायी होती है। सम्भोग से वंचित रहना स्त्रियों के लिये कष्टदायी होता है और कटु वचन मन को दुःखी करता है।

बुराई

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः।।

उद्योग०-39/79

बाह्लीक (यवन 'बलख-बुखारा') देश पृथ्वी का मल है और पुरुष का मल झूठ है। हास-परिहास पतिव्रता नारी का दोष है और पति के बिना परदेश में रहना स्त्री का मल है।

काम की बात

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्।।

उद्योग०-39/81

बहुत सोकर नींद को जीतने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये और बहुत सम्भोग से स्त्रियों को जीतने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। ईंधन डाल कर आग पर वश पाने की और खूब शराब पीकर शराब को जीतना नहीं चाहिये।

सफल व्यक्ति

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्।।

उद्योग०-39/82

जिसने धन देकर मित्र को वश में कर लिया है और शत्रु को युद्ध में जीत लिया है तथा स्त्रियों को खान-पान देकर वश में कर लिया है उसका जीवन सफल है।

लोभ-मोह

सहस्त्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।।

उद्योग०-39/83

हजार रुपये वाले भी जीते हैं और सौ रुपये वाले भी अतः लोभ नहीं करना चाहिये।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन् न मुह्यति।।

उद्योग०-39/84

पृथिवी पर जितना अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब भी एक मनुष्य के लिये पर्याप्त नहीं होते ऐसा सोचने वाला मोह में नहीं पड़ता।

बुरे काम

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया।।

उद्योग०-40/3

झूठ बोलकर उन्नति करना, राजा से चुगली करना, गुरुजन पर भी झूठा दोषारोपण करना ये तीनों काम ब्रह्महत्या जैसे हैं।

विद्या के शत्रु

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः।।

उद्योग०-40/4

गुणों में दोष देखना मृत्यु के समान होता है, निन्दा करना लक्ष्मी के वध जैसा होता है। सेवा का अभाव, उतावलापन और आत्म प्रशंसा ये तीनों विद्या के शत्रु हैं।

विद्यार्थी के दोष

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानत्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।।

उद्योग०-40/5

आलस्य, मद-मोह, चञ्चलता, बैठकबाजी, उद्दण्डता, अभिमान तथा स्वार्थ को न छोड़ना ये सात दोष विद्यार्थियों के लिये हैं।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।

उद्योग०-40/6

सुख चाहने वाला विद्या प्राप्त नहीं कर सकता और विद्यार्थी को सुख नहीं मिलता। सुख चाहने वाले को पढ़ना छोड़ देना चाहिये या विद्यार्थी को सुख छोड़ देना चाहिये।

अतृप्ति

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना।।

उद्योग०-40/7

आग की तृप्ति लकड़ियों से नहीं होती। नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता। मृत्यु की समस्त प्राणियों से और कुलटा स्त्री की पुरुषों से कभी तृप्ति नहीं होती।

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्।।

उद्योग०-40/8

आशा धैर्य को, यमराज समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कंजूसी यश को, देखभाल न करने से पशु और अकेला क्रुद्ध ब्राह्मण सारे देश को नष्ट कर देता है।

धर्माचरण

न जातु कामान्न भयान्नलोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।।

उद्योग०-40/12

किसी कामना से, भय से, लोभ से या जीवन के लिये भी धर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः।।

उद्योग०-40/13

धर्म नित्य है किन्तु सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है पर इसका कारण यह शरीर अनित्य है। अनित्य को छोड़कर नित्य का आश्रय लेना चाहिये। सन्तोष धारण करना चाहिये क्योंकि सन्तोष सबसे बड़ा लाभ है।

मृत पुरुष

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः।।

उद्योग०-40/16

मृत पुरुष के धन का उपभोग दूसरे लोग करते हैं, उसके शरीर को पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य अपने पाप और पुण्य कर्मों से बंधा हुआ परलोक में जाता है।

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः।।

उद्योग०-40/17

तात! जैसे पक्षी फल-फूल रहित पेड़ों को छोड़कर चले जाते हैं वैसे ही संबंधी, मित्र और पुत्र, मृत पुरुष को चिता में छोड़कर चले आते हैं।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात् तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः।।

उद्योग०-40/18

अग्नि में डाले हुए पुरुष का साथ उसके किये हुए कर्म ही देते हैं इसलिये पुरुष को प्रयत्नपूर्वक धीरे-धीरे धर्म का संग्रह करना चाहिये।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव।।

उद्योग०-40/21

भारत! यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ हैं, सत्य जल है, धैर्य इसके किनारे हैं और दया लहरें। पुण्य कर्म करने वाला इसमें स्नान करके पवित्र हो जाता है क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र है।

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर।।

उद्योग०-40/22

काम, क्रोध रूपी मगरमच्छों से भरी और पांच ज्ञानेन्द्रियों के जलवाली इस संसार नदी के जन्म-मरण रूप दुर्गम प्रवाह को धैर्य की नाव से पार कीजिये।

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्।।

उद्योग 40/23

जो बुद्धि, धर्म, विद्या और आयु में बड़े अपने बन्धु बान्धवों को आदर सत्कार से प्रसन्न करके कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के बारे में उनसे सलाह लेता है वह कभी मोह में नहीं पड़ता।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा।।

उद्योग 40/24

अपने शिश्न और पेट की धैर्य से रक्षा करे। हाथ-पैर की आँखों से, आँख-कान की मन से और मन तथा वाणी की सत्कर्म से रक्षा करे।

27
सनत्सुजात पर्व

विदुर की बुद्धिमत्तापूर्ण बातें सुनकर भी धृतराष्ट्र पर कोई असर नहीं हुआ। वे बोले विदुर! तुमने जो बातें कहीं वे ठीक हैं। तुम्हारे विचारों का मैं पालन भी करना चाहता हूँ किन्तु दुर्योधन को देखते ही मेरी बुद्धि पलट जाती है। भाग्य के विपरीत जाने की शक्ति किसी में नहीं है। मैं तो प्रारब्ध को ही अटल मानता हूँ। उसके सामने पुरुषार्थ बेकार है। फिर भी विदुर यदि तुम कुछ और कहना चाहते हो तो कहो। मुझे तुम्हारी बातें अच्छी लगती हैं।

विदुर ने अपने प्रयत्न को निष्फल देखा तो उनकी फिर कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने सनत्सुजात का परिचय देते हुए धृतराष्ट्र को बताया कि सनत्सुजात मृत्यु को नहीं मानते और वे ही आपके हृदय में उठने वाले प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा विदुर! क्या तुम उस रहस्य को नहीं जानते जिसे सनत्सुजात मुझे बतायेंगे?

विदुर ने उत्तर दिया महाराज! मेरा जन्म शूद्रा स्त्री के गर्भ से हुआ है इसलिये मैं और कोई उपदेश देने का साहस नहीं कर सकता।

कुमार सनत्सुजात की बुद्धि सनातन है। इसीलिये मैं आपसे कह रहा हूँ कि आप उन्हीं से अपने प्रश्नों का उत्तर पूछिये।

यह कहकर विदुर ने सनातन ऋषि सनत्सुजात का स्मरण किया। विदुर मुझे याद कर रहे हैं यह जानकर सनत्सुजात वहाँ उपस्थित हो गये। विदुर ने ऋषि का यथायोग्य सत्कार कर उनसे निवेदन किया भगवन्! धृतराष्ट्र के मन में कुछ सन्देह हैं, जिनका समाधान मेरे द्वारा करना उचित नहीं है। आप ही इस बारे में कुछ कहने की

कृपा कीजियेगा। आपका उपदेश सुनकर महाराज धृतराष्ट्र सब दु:खों से पार हो जायें और लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, बुढ़ापा-मृत्यु, भय-क्रोध, भूख-प्यास, मद-ऐश्वर्य, चिन्ता-आलस्य, काम-क्रोध और अवनति-उन्नति इन्हें कष्ट न पहुँचा सकें।

यह सुनकर महर्षि सनत्सुजात ने धृतराष्ट्र को अध्यात्मविद्या का उपदेश दिया। सनत्सुजात पर्व महाभारत के अत्यधिक विशिष्ट प्रकरणों में से है। श्रीशंकराचार्य ने भी इस प्रकरण पर भाष्य लिखा है। महाभारत का 'सनत्सुजातीय प्रकरण' भारत की प्राचीन अध्यात्म विद्या का नवनीत है। इसमें सबसे पहले मृत्यु की समस्या पर विचार किया गया है। जीवन में प्रमाद या स्खलन का नाम ही मृत्यु है। अगले अध्याय में बताया गया है कि वेद का शाब्दिक ज्ञान ब्रह्म साक्षात्कार के लिये पर्याप्त नहीं है। जीवन को संयम में ढालकर सत्य का आचरण करना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। उस अक्षर ब्रह्म के साक्षात्कार के लिये ब्रह्मचर्य की लम्बी साधना करनी होती है। अक्षर-ब्रह्म से सम्बद्ध यह सनातनी अव्यक्त विद्या; प्रज्ञा और ब्रह्मचर्य से प्राप्त की जाती है। वेद पढ़ने के बाद भी हमें यत्नपूर्वक अपनी देह के भीतर छिपे आत्मतत्त्व का साक्षात् दर्शन करना चाहिये। हमारा भौतिक शरीर तो माता-पिता से मिल जाता है किन्तु सत्य के संसार में नया जन्म आचार्य की कृपा से ही होता है। इसलिये आचार्य के ज्ञानगर्भ में प्रविष्ट होकर ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। जो शिष्य; गुरु के पास रहकर अपने मन और शरीर को तपस्या से शुद्ध कर लेता है वही अमरत्व का ज्ञान प्राप्त कर मृत्यु पर विजय पा लेता है।

हमें जीवन में कभी न कभी ब्रह्म को जानना ही होगा इसके सिवाय कोई और रास्ता या गति नहीं है-

'नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।'

मृत्यु से कैसे बचें?

धृतराष्ट्र : सनत्सुजात यदिदं शृणोमि न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम्।
देवासुरा ह्याचरन् ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत् कतरन्नु सत्यम्।।

उद्योग०-42/4

सनत्सुजात जी मैंने सुना है कि मृत्यु नहीं है यह आपका मानना है। किन्तु देवता और असुरों ने मृत्यु को जीतने के लिये ब्रह्मचर्य धारण किया था। इन दोनों में से क्या बात सत्य है?

सनत्सुजात : उभे सत्ये क्षत्रियैतस्य विद्धि मोहान्मृत्युः सम्मतोऽयं कवीनाम्।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।।

उद्योग०-42/4

क्षत्रिय! इस प्रश्न के दोनों ही पक्ष सत्य हैं। विद्वान् मोह को मृत्यु मानते हैं, किन्तु मैं स्खलन या प्रमाद को ही मृत्यु मानता हूँ और अप्रमाद को अमरता।

प्रमादाद् वै असुराः पराभवन्नप्रमादाद् ब्रह्मभूताः सुराश्च।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून् न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि।।

उद्योग०-42/5

प्रमाद से असुर हारे और अप्रमाद से देवताओं ने ब्रह्मपद पा लिया। मृत्यु बाघ की तरह प्राणियों को नहीं खाती और न ही मृत्यु का कोई प्रकट रूप है।

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहुरात्मावसन्नमृतं ब्रह्मचर्यम्।
पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम्।।

उद्योग०-42/6

एक विचार यह है कि यम ही मृत्यु है। कुछ लोगों का कहना है कि ब्रह्मचर्य पूर्वक रहता हुआ आत्मा अमृत का रूप है। यमदेव पितृलोक में शासन कर रहे हैं। वे पुण्यात्माओं के लिये मंगलमय और पापियों के लिये अमंगलमय है।

अस्यादेशान्निःसरते नराणां क्रोधः प्रमादो लोभरूपश्च मृत्युः।
अहंगतेनैव चरन् विमार्गान् न चात्मनो योगमुपैति कश्चित्।।

उद्योग०-42/7

यम के आदेश से ही क्रोध, प्रमाद और लोभ के रूप में मृत्यु मनुष्यों को नष्ट कर रही है। अहंकार के कारण उल्टे रास्तों पर चलता हुआ मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति।
ततस्तान् देवा अनुविप्लवन्ते अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति।।

उद्योग०-42/8

मनुष्य क्रोध, लोभ और प्रमाद से मोहित होकर और अहंकार के वश में पड़कर इस लोक से जाकर फिर जन्म मरण के चक्र में पड़ते हैं। मरने पर मनुष्य के प्राण, इन्द्रियां और मन भी साथ जाते हैं। शरीर से प्राण और इन्द्रियों का वियोग हो जाने से मृत्यु 'मरण' कहलाती है।

कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रानुयान्ति न तरन्ति मृत्युम्।
सदर्थयोगानवगमात् समन्तात् प्रवर्तते भोगयोगेन देही।।

उद्योग०-42/9

प्रारब्ध कर्म का उदय होने पर कर्मफल में आसक्ति रखने वाले लोग परलोक में जाते हैं किन्तु वे मृत्यु को पार नहीं करते हैं। देह को ही सब कुछ मानने वाले ये लोग परमात्मा के साक्षात्कार का उपाय न जानने के कारण और विषयों के उपभोग में लगे रहने के कारण नाना योनियों में भटकते रहते हैं।

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात्।।

उद्योग०-42/10

सांसारिक विषयों का भोग निश्चय ही इन्द्रियों को मोह में डाल देता है। इन झूठे या अनित्य विषय भोगों में आसक्ति वाले मनुष्य की इनके लिये आसक्ति होना स्वाभाविक ही है। इन अनित्य भोगों में आसक्ति होने से अन्तःकरण की ज्ञान शक्ति नष्ट हो जाती है और मनुष्य भोगों का मन ही मन स्मरण करता हुआ उनका आस्वादन करता है।

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति लोकान् कामक्रोधावनुगृह्याशु पश्चात्।
एते बालान् मृत्यवे प्रापयन्ति धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम्।।

उद्योग०-42/11

पहले तो भोगों का चिन्तन ही लोगों को मार देता है। वह काम-क्रोध के साथ फिर मारता है। विषय भोगों का चिन्तन ही मूर्खों को मृत्यु के पाश में डालता है किन्तु धीर पुरुष धैर्य के द्वारा मृत्यु के पार हो जाते हैं।

सोऽभिध्यायन्नुत्पतितान् निहन्यादनादरेणाप्रतिबुध्यमानः।
नैनं मृत्युर्मृत्युरिवात्ति भूत्वा एवं यो विद्वान् विनिहन्ति कामान्।।

उद्योग०-42/12

मृत्यु को जीतना चाहने वाले मनुष्य को परमात्मा का ध्यान करके विषय भोगों को तुच्छ मानकर इन विषयों की कामना पैदा होते ही इस इच्छा को नष्ट कर देना चाहिये। जो विवेकशील मनुष्य भोगों की इच्छा को नष्ट कर देता है उसे मृत्यु साधारण मनुष्यों की तरह नहीं खाती अर्थात् वह जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है।

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति।
कामान् व्युदस्य धुनुते यत् किंचित् पुरुषो रजः।।

उद्योग०-42/13

विषय भोगों की इच्छाओं के पीछे भागने वाला पुरुष इन कामनाओं के साथ ही नष्ट हो जाता है किन्तु इन कामनाओं का त्याग कर देने वाला मनुष्य जन्म-मरण का जो कुछ दु:ख है उसे नष्ट कर देता है।

तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते।
मुह्यन्त इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत् सुखम्।।

उद्योग०-42/14

विषयों की कामना या काम ही प्राणियों को मोह में डालता है इसीलिये यह काम तमोमय है और अज्ञानरूप है तथा नरक के समान दु:खदायी दिखाई देता है। जैसे शराब के नशे में धुत्त मनुष्य चलते-चलते गड्ढे की ओर दौड़ पड़ता है वैसे ही विषय भोगों की कामना वाला मनुष्य इन्हें सुख समझ कर भोगों की ओर दौड़ रहा है।

अमूढवृत्तेः पुरुषस्येह कुर्यात् किं वै मृत्युस्तार्ण इवास्य व्याघ्रः।
अमन्यमानः क्षत्रिय किंचिदन्यन्नाधीयीत निर्णुदन्निवास्य चायुः।।

उद्योग०-42/15

जिस मनुष्य की चित्तवृत्तियां विषय भोगों से मोहित नहीं हुई हैं उस ज्ञानी पुरुष का तिनकों के बाघ की तरह मृत्यु क्या बिगाड़ लेगी? इसलिये विषयों के मूल कारण अज्ञान को नष्ट करने की इच्छा से किसी भी सांसारिक पदार्थ या भोग को कुछ भी न समझ कर सांसारिक विषयों का चिन्तन छोड़ देना चाहिये।

स क्रोधलोभौ मोहवानन्तरात्मा स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः।
एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञाने तिष्ठन् न बिभेतीह मृत्योः।
विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः।।

उद्योग०-42/16

तुम्हारे शरीर में यह जो अन्तरात्मा है वह मोह में फंसकर क्रोध, लोभ और मृत्यु का रूप हो जाता है। इस प्रकार मोह से उत्पन्न होने वाली मृत्यु को जानकर ज्ञानवान पुरुष मृत्यु से नहीं डरता। उसके पास आकर मृत्यु वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे विषय-भोगों के वश में पड़ा मनुष्य नष्ट हो जाता है।

परमात्मा और जगत् व्यवहार

धृतराष्ट्र : **कोऽसौ नियुङ्क्ते तमजं पुराणं स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण।**
किं वास्य कार्यमथवा सुखं च तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत्।।

उद्योग०-42/19

विद्वान्! यदि परमात्मा ही क्रमशः इस समस्त जगत् के रूप में प्रकट होता है। तो उस अजन्मा और पुराण पुरुष को कौन नियुक्त करता है? उसके इस रूप में आने का क्या प्रयोजन है? उसे इससे क्या सुख मिलता है? यह बताइये।

सनत्सुजात : **दोषो महानत्र विभेदयोगे ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः।**
तथास्य नाधिक्यमपैति किञ्चिदनादियोगेन भवन्ति पुंसः।।

उद्योग०-42/20

तुम्हारे इस प्रश्न में जीव और ब्रह्म का भेद है जिसे मान लेने से बड़ा दोष होगा। इसलिये अनादि माया के सम्बन्ध से जीवों का सुख आदि से संबंध होता है। ऐसा होने पर भी जीव की महत्ता कम नहीं होती, क्योंकि अनादि माया के संबंध से जीव के शरीर आदि उत्पन्न होते रहते हैं।

य एतद् वा भगवान् स नित्यो विकारयोगेन करोति विश्वम्।
तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्यते तथार्थयोगे च भवन्ति वेदाः।।

उद्योग०-42/21

ये जो नित्यस्वरूप भगवान हैं, वे ही माया के सहयोग से इस विश्व को बनाते हैं। यह माया भी उन्हीं परब्रह्म की शक्ति है ऐसा सभी मानते हैं और वेद भी इसी तरह का अर्थ प्रतिपादित करते हैं।

पाप-पुण्य

धृतराष्ट्र : **येऽस्मिन् धर्मान् नाचरन्तीह केचित् तथा धर्मान् केचिदिहाचरन्ति।**
धर्मः पापेन प्रतिहन्यते स्विदुताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम्।।

उद्योग०-42/22

संसार में कुछ लोग धर्माचरण करते हैं, कुछ धर्म पर नहीं चलते। क्या धर्म को पाप नष्ट कर देता है या पाप को धर्म नष्ट कर देता है?

सनत्सुजात : **उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च।।**

उद्योग०-42/23

धर्म और अधर्म दोनों का ही फल भोगना पड़ता है।

तस्मिन् स्थितो वाप्युभयं हि नित्यं ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम्।
तथान्यथा पुण्यमुपैति देही तथागतं पापमुपैति सिद्धम्।।

उद्योग०-42/24

परमात्मा में स्थित होने पर विद्वान् परमात्मा के ज्ञान से अपने पाप और पुण्य दोनों ही तरह के कर्मों का नाश कर देता है। यदि मनुष्य को परमात्मा का ज्ञान नहीं हो पाता है तो वह कभी अपने पुण्य कर्मों का फल पाता है, कभी पाप कर्मों का।

गत्वोभयं कर्मणा युज्यतेऽस्थिरं शुभस्य पापस्य स चापि कर्मणा।
धर्मेण पापं प्रणुदतीह विद्वान् धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः।।

उद्योग०-42/25

पाप और पुण्य कर्मों के स्वर्ग-नरकादि जो अस्थिर फल हैं उनका भोग करके वह फिर जन्म लेकर कर्म करने लगता है। विद्वान् धर्म से पापों को नष्ट कर देता है। अत: धर्म ही बलवान है।

स्वर्ग आदि लोक

धृतराष्ट्र : यानिहाहुः स्वस्य धर्मस्य लोकान् द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान्।
तेषां क्रमान् कथय ततोऽपि चान्यान् नैतद् विद्वन् वेत्तुमिच्छामि कर्म।।

उद्योग०-42/26

पुण्य कर्म करने वाले ब्राह्मणों को अपने-अपने धर्म के परिणामस्वरूप जिन सनातन लोकों की प्राप्ति होती है उनका क्रम बताइये और अन्य लोकों के बारे में भी बताइये, अब मैं सकाम कर्म की बात नहीं जानना चाहता।

सनत्सुजात : येषां व्रतेऽथ विस्पर्धा बले बलवतामिव।
ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य ब्रह्मलोकप्रकाशकाः।।

उद्योग०-42/27

जैसे दो बलवान पुरुष अपना अपना बल बढ़ाने की स्पर्धा करते हैं वैसे ही जो ब्राह्मण यम नियमादि के व्रतों से आपस में एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं वे इस लोक से विदा लेकर ब्रह्मलोक में अपना प्रकाश फैलाते हैं।

येषां धर्मे च विस्पर्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम्।
ते ब्राह्मणा इतो मुक्तः स्वर्गं यान्ति त्रिविष्टपम्।।

उद्योग०-42/28

जो ब्राह्मण धर्म पालन में स्पर्धा करते हैं उनके लिये यह स्पर्धा ज्ञान प्राप्त करने का साधन होती है। ऐसे ब्राह्मण मृत्यु के बाद देवताओं के निवास स्थान स्वर्ग में जाते हैं।

ब्राह्मण का आचार

तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः।
नैनं मन्येत भूयिष्ठं बाह्यमाभ्यन्तरं जनम्।।

उद्योग०–42/29

यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोपलम्।
अन्नं पानं ब्राह्मणस्य तज्जीवेन्नानुसंज्वरेत्।।

उद्योग०–42/30

ब्राह्मण के ठीक आचार की वेदवेत्ता प्रशंसा करते हैं। जो व्यक्ति दिखावा करके धर्मपालन करता है उसे अच्छा नहीं माना जाता किन्तु अन्तर्मुख हो धर्मपालन करने वाला श्रेष्ठ होता है। जहाँ वर्षा ऋतु के घास-पात की भांति अन्न और पान ब्राह्मण को सुविधा से मिल सके वहीं रहना चाहिये। किन्तु अन्न पान के लिये दुःखी नहीं होना चाहिये।

नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः।
ज्ञातीनां तु वसन् मध्ये तं विदुर्ब्राह्मणं बुधाः।।

उद्योग०–42/34

जो सम्बन्धियों के बीच रहकर भी अपनी साधना को सदा गुप्त रखता है उसे ही विद्वान् सच्चा ब्राह्मण मानते हैं।

अश्रान्तः स्यादनादाता सम्मतो निरुपद्रवः।
शिष्टो न शिष्टवत् स स्याद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित् कविः।।

उद्योग०–42/38

जो कर्तव्य पालन से थकता नहीं, दान नहीं लेता, सत्पुरुष जिसका सम्मान करते हैं, जो कोई उपद्रव नहीं करता और शिष्ट होकर भी अपनी शिष्टता की डींग नहीं हांकता वही ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता और विद्वान होता है।

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या दैवे तथा क्रतौ।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्यास्तान् विद्याद् ब्रह्मणस्तनुम्।।

उद्योग०–42/39

जिनके पास लौकिक धन नहीं किन्तु दैवी सम्पत्ति और यज्ञ उपासना की सम्पदा है उन्हें कोई दबा नहीं सकता, वे किसी विषय भोग से चलायमान नहीं होते, वे ब्रह्म की साक्षात् प्रतिमा ही हैं।

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः।
न मान्यमानो मन्येत न मान्यमभिसंज्वरेत्।।

उद्योग०–42/41

जो सम्मान के लिये प्रयत्न नहीं करता फिर भी उसका सम्मान किया जाए वही सच्चा सम्मान होता है। जो सम्मान पाकर अभिमान नहीं करता और सम्मानित पुरुष से ईर्ष्या नहीं करता वही सम्मानीय होता है।

लोकः स्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत् सदा।
विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः।।

उद्योग०–42/42

जब विद्वान् आदर करें तब सम्मानित व्यक्ति को यह मानना चाहिये कि पलक झपकने की तरह अच्छे लोगों का स्वभाव ही आदर देना है।

न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा।
अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद् विदुः।।

उद्योग०–42/44

मान और मौन सदा साथ नहीं रहते। मान से इस संसार में सुख मिलता है और मौन से परलोक में सुख मिलता है। ज्ञानी यह बात जानते हैं।

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी।
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय।।

उद्योग०–42/45

राजन्! इस संसार में लक्ष्मी सुख का घर समझी जाती है किन्तु वह कल्याण मार्ग में विघ्न डालती है। ब्रह्मज्ञान की लक्ष्मी मूर्ख मनुष्य को नहीं मिल सकती।

द्वाराणि तस्येह वदन्ति सन्तो बहुप्रकाराणि दुराधराणि।
सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौच विद्या यथा न मोहप्रतिबोधनानि।।

उद्योग०–42/46

सन्त लोग उस ब्रह्मज्ञान की लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये अनेक द्वार बताते हैं। ये द्वार मोह उत्पन्न नहीं करते किन्तु इन का पालन करना बहुत कठिन है। ये द्वार हैं–सत्य, सरलता, लज्जा, इन्द्रिय निग्रह, शौच और विद्या।

मौन क्या है?

धृतराष्ट्र : **कस्यैष मौनः कतरन्नु मौनं प्रब्रूहि विद्वन्निह मौनभावम्।
मौनेन विद्वानुत याति मौनं कथं मुने मौनमिहाचरन्ति।।**

उद्योग०-43/1

विद्वान्! मौन किसका नाम है? वाणी के संयम का या परमात्मा के स्वरूप का? इन दोनों में से कौन सा मौन है? मुझे मौन का भाव (अर्थ) बताइये। क्या विद्वान् पुरुष मौन धारण करने से मौन स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है? लोग संसार में मौन का किस तरह पालन करते हैं?

सनत्सुजात : **यतो न वेदा मनसो सहैनमनुप्रविशन्ति ततोऽथमौनम्।
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं स तन्मयत्वेन विभाति राजन्।।**

उद्योग०-43/2

राजन्! जहाँ मन के साथ वाणीरूप वेद नहीं पहुँच पाते उस परमात्मा का नाम ही मौन है। जिससे वैदिक और लौकिक शब्द प्रकट हुए हैं वे परमात्मा तन्मयतापूर्वक ध्यान लगाने से प्रकाशित होते हैं।

वेद और पाप

धृतराष्ट्र : **ऋचो यजूंषि यो वेद सामवेदं च वेद यः।
पापानि कुर्वन् पापेन लिप्यते किं न लिप्यते।।**

उद्योग०-43/3

जो ऋक्, यजु और सामवेद को पढ़कर पाप करता है उसे पाप लगता है या नहीं।

सनत्सुजात : **नैनं सामान्यृचो वापि न यजूंष्यविचक्षणम्।
त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम्।।**

उद्योग०-43/4

ऋग्वेद, सामवेद या यजुर्वेद कोई भी पाप करने वाले अज्ञानी को नहीं बचा सकता।

**नच्छन्दांसि वृजिनात् तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहन्त्यकाले।।**

उद्योग०-43/5

कपटपूर्ण आचरण करने वाले को वेद पाप से नहीं उबारते। पंख निकल आने पर जैसे पक्षी घोंसला छोड़ देते हैं वैसे ही पापी को अन्त समय में वेद छोड़ देते हैं।

धृतराष्ट्र : न चेद् वेदा विना धर्मं त्रातुं शक्ता विचक्षण।
अथ कस्मात् प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः।।

उद्योग०-43/6

बुद्धिमान्! यदि वेद धर्म के बिना रक्षा नहीं कर सकते तो ब्राह्मणों का सनातन प्रलाप क्यों होता चला आ रहा है?

सनत्सुजात : तस्यैव नामादि विशेषरूपैरिदं जगद् भाति महानुभाव।
निर्दिश्य सम्यक् प्रवदन्ति वेदास्तद् विश्ववैरूप्यमुदाहरन्ति।।

उद्योग०-43/7

महानुभाव! परमात्मा के ही नाम आदि विशेष रूपों से इस जगत् का पता चलता है। यही बात वेद भलीभांति बताते हैं किन्तु उसका स्वरूप तो इस संसार से विलक्षण बताते हैं।

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्।
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात् संजायते ज्ञान विदीपितात्मा।।

उद्योग०-43/8

उसी परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये तप और यज्ञ करने को कहा गया है। तप और यज्ञों से विद्वान् पुण्य प्राप्त करता है और पुण्य से अपने पाप कर्मों को नष्ट करके उसका अन्तःकरण ज्ञान से प्रकाशित हो उठता है।

ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वानथान्यथा वर्गफलानुकाङ्क्षी।
अस्मिन् कृतं तत् परिगृह्य सर्वममुत्र भुङ्क्त्वा पुनरेति मार्गम्।।

उद्योग०-43/9

विद्वान् पुरुष ज्ञान से परमात्मा को जान लेता है किन्तु जो पुरुष धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग को फल पाना चाहते है वे इस लोक में किये हुए अपने सभी कर्मों को साथ ले जाकर परलोक में उनका फल भोगते हैं। फिर यहाँ लौट आते हैं।

अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते।
ब्राह्मणानामिमे लोका ऋद्धे तपसि तिष्ठताम्।।

उद्योग०-43/10

इस लोक में जो तपस्या की जाती है उसका फल परलोक में भोगा जाता है

किन्तु जो निष्काम भाव से तपस्या करते हैं उन्हें इसी लोक में परमात्मा का तत्त्वज्ञान रूपी फल मिल जाता है।

तपस्या के शत्रु

धृतराष्ट्र : कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः।
सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम्।।

उद्योग०–43/14

सनत्सुजात जी! मैंने निष्पाप तप के बारे में सुन लिया। अब तपस्या के दोष बताइये जिससे मैं सनातन रहस्यमय तत्त्व को जान सकूं।

सनत्सुजात : क्रोधः कामो लोभमोहौ विवित्साकृपासूये मानशोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम्।।

उद्योग०–43/16

क्रोध, काम, लोभ, मोह, संग्रह करने की इच्छा, दीनता, असूया, मान, स्पृहा, शोक, ईर्ष्या और घृणा ये बारह दोष मनुष्य को सदा छोड़ देने चाहियें।

एकैकः पर्युपास्ते ह मनुष्यान् मनुजर्षभ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः।।

उद्योग०–43/17

नरश्रेष्ठ! जैसे शिकारी हरिणों को मारने के लिये अवसर (छिद्र) देखता रहता है वैसे ही इनमें से प्रत्येक दोष मनुष्यों की कमजोरी देखकर आक्रमण करता है।

पापी और क्रूर पुरुष

विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी बिभ्रत् कोपं चपलोऽरक्षणश्च।
एतान् पापान् षण्नराः पापधर्मान् प्रकुर्वते नो त्रसन्तः सुदुर्गे।।

उद्योग०–43/18

अपनी बड़ाई करने वाला, लोभी, तनिक भी अपमान न सहने वाला, सदा क्रोधी, चंचल और शरणागत की रक्षा न करने वाला ये छह प्रकार के लोग पापी हैं। संकट में पड़ने पर भी ये लोग निडर होकर पाप करते हैं।

सम्भोग संविद् विषमोऽतिमानी दत्तानुतापी कृपणो बलीयान्।
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा एते परे सप्त नृशंस वर्गाः।।

उद्योग०–43/19

सम्भोग में लिप्त, विषम व्यवहार करने वाला, बहुत अभिमानी, दान देकर पछताने वाला, महाकंजूस, अर्थ और काम इन दो वर्गों की प्रशंसा करने वाला तथा स्त्रियों से द्वेष करने वाला ये तेरह प्रकार के (पिछले छह और ये सात) मनुष्य क्रूर होते हैं।

बारह महाव्रत

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितीक्षानसूया।
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य।।

उद्योग०-43/20

धर्म, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, तपस्या, ईर्ष्या न करना, लज्जा, दुःख सहन करना, डाह न करना, यज्ञ, दान, धैर्य और स्वाध्याय ये ब्राह्मण के बारह महाव्रत हैं।

सत्य के मुख

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम्।
तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।।

उद्योग०-43/22

इन्द्रियं संयम, त्याग और अप्रमाद इन तीन गुणों में अमृत भरा है। विद्वान् ब्राह्मणों का कहना है कि ये तीनों गुण सत्य के मुख हैं।

सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः।
तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम्।।

उद्योग०-43/37

राजेन्द्र! आप सत्य स्वरूप हो जाइये। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। इन्द्रिय संयम, त्याग और अप्रमाद सत्य के मुख हैं। सत्य में ही अमृत स्थापित है।

विद्वान् पुरुष

धृतराष्ट्र : आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कथ्यते जनः।
तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथा परे।।

उद्योग०-43/41

कोई इतिहास-पुराण नामक पांचवें वेद का ज्ञाता होने से प्रसिद्ध होता है। कोई चतुर्वेदी, त्रिवेदी, होते हैं।

द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाप्यनृचश्च तथा परे।
तेषां तु कतरः स स्याद् यमहं वेद वै द्विजम्।।

उद्योग०–43/42

कुछ लोग द्विवेदी, एक वेदी तथा अनृच अर्थात् वेद की ऋचाओं का अध्ययन न करने वाले हैं। इनमें से किसे मैं ब्राह्मण समझूं?

सनत्सुजात : एकस्य वेदस्याज्ञानाद् वेदास्ते बहवः कृताः।
सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः।।

उद्योग०–43/43

राजन्! सृष्टि के प्रारम्भ में एक ही वेद था, परन्तु उसे समझ न सकने के कारण वेद के कई विभाग कर दिये गये। उस सत्यस्वरूप एक वेद के सारतत्त्व परमात्मा में कोई–कोई ही स्थित होता है।

ज्ञानं वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः।
विद्याद् बहु पठन्तं तु द्विजं वै बहुपाठिनम्।।

उद्योग०–43/48

परमात्मा के ज्ञान का फल प्रत्यक्ष है और तप का फल परोक्ष में परलोक में मिलता है। बहुत पढ़ने वाले ब्राह्मण को बहुपाठी ही समझना चाहिये।

तस्मात् क्षत्रिय मा मंस्था जल्पितेनैव वै द्विजम्।
य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया।।

उद्योग०–43/49

इसलिये महाराज, केवल बात बनाने से किसी को ब्राह्मण नहीं मान लेना चाहिये। जो सत्यस्वरूप परमात्मा से अलग नहीं होता उसे ही आप ब्राह्मण समझिये।

छन्दांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा पुरा जगौ महर्षिसङ्घ एषः।
छन्दोविदस्ते य उत नाधीतवेदा न वेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम्।।

उद्योग०–43/50

क्षत्रिय! प्राचीन काल में अथर्वा और अन्य महर्षियों ने जिन ऋचाओं का गान किया था वे ऋचाएं ही वेद हैं। जो सम्पूर्ण वेद पढ़ लेने पर भी वेदों द्वारा जानने योग्य परमतत्त्व परमात्मा को नहीं जानते वे छन्दोविद् हैं किन्तु वेदवित् विद्वान् नहीं हैं।

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति कश्चित् त्वेतान् बुध्यते वापि राजन्।
यो वेद वेदान् न स वेद वेद्यं सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम्।।

उद्योग०–43/52

राजन्! वेदों का तत्त्व जानने वाला कोई नहीं है। कोई बिरला ही वेदों का वास्तविक तत्त्व जान पाता है। जो केवल वेद के वाक्यों को जानता है वह वेदों के द्वारा जानने योग्य परमात्मा को नहीं जानता, किन्तु जो सत्य में स्थित है वह वेद से जानने योग्य परमात्मा को जानता है। वह वेद्यवित् है और छन्दोवित् तथा वेदवित् से श्रेष्ठ है।

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति वेद्येन वेदं न विदुर्न वेद्यम्।
यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम्।।

उद्योग०-43/53

जानने वालों में से कोई भी वेदों के रहस्य को नहीं जानता; क्योंकि जानने के साधन (वेद्य) अर्थात् मन और बुद्धि के द्वारा कोई भी वेदों के रहस्य को तथा जानने योग्य (वेद्य) परमात्मतत्त्व को नहीं जान पाता है। जो व्यक्ति वेदों के कर्मकाण्ड को जानता है वह मन-बुद्धि द्वारा जानने योग्य बातों को (वेद्य) ही जानता है। जो व्यक्ति वेद्य अर्थात् मन बुद्धि द्वारा जानने योग्य पदार्थों को जानता है वह सत्य स्वरूप परमात्मा को नहीं जानता।

यो वेद वेदान् स च वेद वेद्यं न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः।
तथापि वेदेन विदन्ति वेदं ये ब्राह्मणा वेदविदो भवन्ति।।

उद्योग०-43/54

जो वेदों का रहस्य जान लेता है वह जानने योग्य (वेद्य) परमात्मा को भी जान लेता है किन्तु इस जानने योग्य परमात्म तत्त्व को न तो वेदों के शब्दों का अर्थ जानने वाला (वेदवित्) जानता है और न ही वेद जानते हैं। लेकिन वेदों का रहस्य जानने वाले ब्रह्मवेत्ता (ब्राह्मण) वेदों के द्वारा वेद को जान लेते हैं। शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् प्रभु कृपा से ही वेदों का और परमात्म तत्त्व का रहस्य जान पाते हैं।

धामांशभागस्य तथा हि वेदा यथा च शाखा हि महीरुहस्य।
संवेदने चैव यथाऽऽमनन्ति तस्मिन् हि सत्ये परमात्मनोऽर्थे।।

उद्योग०-43/55

दूज के चन्द्रमा की सूक्ष्म कला को दिखाने के लिये जैसे किसी पेड़ की शाखा की ओर संकेत किया जाता है वैसे ही सत्यस्वरूप परमात्मा को बताने के लिये वेदों का उपयोग किया जाता है।

नास्य पर्येषणं गच्छेत् प्राचीनं नोत दक्षिणम्।
नार्वाचीनं कुतस्तिर्यङ् नादिशं तु कथञ्चन।।

उद्योग०-43/57

इस आत्मा को ढूंढने के लिये पूर्व, पश्चिम या दक्षिण की ओर जाने की आवश्यकता नहीं है। आग्नेय आदि कोणों और दिशा रहित प्रदेश की बात की क्या है।

तस्य पर्येषणं गच्छेत् प्रत्यर्थिषु कथञ्चन।
अविचिन्वन्निमं वेदे तपः पश्यति तं प्रभुम्।।

उद्योग०-43/58

आत्मा की खोज अनात्म सांसारिक पदार्थों में या वेद के वाक्यों में भी ढूंढ कर नहीं करनी चाहिये। तप के द्वारा ही उस प्रभु का साक्षात्कार करना चाहिये।

तूष्णीम्भूत उपासीत न चेष्टेन्मनसापि च।
उपावर्तस्व तद् ब्रह्म अन्तरात्मनि विश्रुतम्।।

उद्योग०-43/59

मौन रहकर परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। मन से भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। अपने अन्तरात्मा या हृदय में उस प्रसिद्ध ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये।

मौनान्न स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः।
स्वलक्षणं तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते।।

उद्योग०-43/60

मौन धारण करने से या जंगल में रहने से कोई मुनि नहीं हो जाता। जो अपने आत्मा का स्वरूप जान लेता है वही श्रेष्ठ मुनि कहलाता है।

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।
सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद् विद्वान् सर्वविद् भवेत्।।

उद्योग०-43/61

जो योगी सम्पूर्ण लोकों को प्रत्यक्ष देख लेता है वह सब लोकों को देखने वाला कहलाता है किन्तु जब ब्राह्मण सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है तब वह सर्वज्ञ अर्थात् ब्रह्म का दर्शन करने वाला बन जाता है।

धर्मादिषु स्थितोऽप्येवं क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति।
वेदानां चानुपूर्व्येण एतद् बुद्धया ब्रवीमि ते।।

उद्योग०-43/63

राजन्! धर्म आदि में स्थित होने से तथा वेदों का क्रमपूर्वक अध्ययन करने से भी ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। यह मैं बुद्धिपूर्वक कह रहा हूँ।

धृतराष्ट्र : **सनत्सुजात यामिमां परां त्वं ब्राह्मीं वाचं वदसे विश्वरूपाम्।**
परां हि कामेन सुदुर्लभां कथां प्रब्रूहि मे वाक्यमिदं कुमार।।

उद्योग०-44/1

कुमार सनत्सुजात! आप जिस सर्वोत्तम ब्रह्म सम्बन्धी विद्या का उपदेश दे रहे हैं वह विश्वरूपा है। इसे कामनायुक्त पुरुष नहीं पा सकता। आप इस ब्राह्मी वाक् या अव्यक्त विद्या को फिर स्पष्ट कीजिये।

सनत्सुजात : **नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छन्नतिहृष्यतीव।**
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या।।

उद्योग०-44/2

आप मुझ से बार-बार प्रश्न करके अत्यन्त प्रसन्न हो उठते हैं, किन्तु ऐसी जल्दबाजी से ब्रह्म तत्त्व को कोई नहीं पा सकता। मन के बुद्धि में विलीन हो जाने पर मन की सभी वृत्तियों का निरोध होने वाली जो स्थिति है वही ब्रह्मविद्या है और यह ब्रह्मचर्य पालन से प्राप्त होती है।

धृतराष्ट्र : **अत्यन्तविद्यामिति यत् सनातनीं ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्।**
अनारभ्यां वसतीह कार्यकाले कथं ब्राह्मण्यममृतत्त्वं लभेत।।

उद्योग०-44/3

जो कर्मों द्वारा आरम्भ करने योग्य नहीं है किन्तु काम के समय में भी इस आत्मा में रहती है उस अनन्त ब्रह्म से सम्बद्ध इस सनातन विद्या को यदि आप ब्रह्मचर्य से प्राप्त करने योग्य बताते हैं तो मुझ जैसे लोग इस ब्रह्म सम्बन्धी अमरता (मोक्ष) को कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

सनत्सुजात : **अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं बुद्ध्या च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्।**
यां प्राप्यैनां मर्त्यलोकं त्यजन्ति या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या।।

उद्योग०-44/4

मैं अव्यक्त ब्रह्म से सम्बद्ध उस प्राचीन अव्यक्त ब्रह्म विद्या को बताता हूँ जो बुद्धि और ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त होती है। इस विद्या को जान कर मनुष्य इस मरणधर्मा शरीर को सदा के लिये छोड़ देता है। यह विद्या ज्ञान से वृद्ध गुरुओं के पास सदा रहती है।

ब्रह्मचर्य

धृतराष्ट्र : **ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमञ्जसा।**
तत् कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतद् ब्रह्मन् ब्रवीमि मे।।

उद्योग०-44/5

ब्रह्मन्! यदि वह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्य से सुगमता से प्राप्त की जा सकती है तो आप मुझे बताइये कि ब्रह्मचर्य पालन कैसे किया जाता है?

सनत्सुजात : **आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति।**
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम्।।

उद्योग०-44/6

जो लोग आचार्य के ज्ञानगर्भ में प्रवेश करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे यहीं शास्त्र रचने वाले बन जाते हैं और देह छोड़कर परब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान् ब्राह्मीं स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः।
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुञ्जादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः।।

उद्योग०-44/7

जो इस जगत् में सम्पूर्ण कामनाओं को जीत लेते हैं और ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने के लिये सुख-दुःख, गर्मी सर्दी आदि द्वन्द्वों को सहन करते हैं वे सत्व गुण में स्थित होकर देह के अन्दर बैठे आत्मतत्त्व का वैसे ही साक्षात्कार कर लेते हैं जैसे मूंज के भीतर से प्रयत्नपूर्वक सींक निकाली जाती है।

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत।
आचार्यशास्ता या जातिः सा पुण्या साजरामरा।।

उद्योग०-44/8

भारत! यह भौतिक देह तो माता पिता से मिल जाता है किन्तु आचार्य के उपदेश से जो जन्म प्राप्त होता है वह पवित्र, अजर और अमर जन्म होता है।

यः प्रावृणोत्यवितथेन वर्णानृतं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्।।

उद्योग०-44/9

जो अपने उपदेश से सत्य ज्ञान को प्रकट करके, अमरत्व प्रदान करके ऋत के शाश्वत नियमों का प्रतिपादन करते हैं और ब्राह्मण आदि वर्णों का वर्गीकरण करते हैं। ऐसे गुरु को अपना माता-पिता ही मानना चाहिये और उनके उपकारों को स्मरण करके उनसे कभी भी विरोध नहीं करना चाहिये।

गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः।
मानं न कुर्यान्नादधीत रोषमेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

उद्योग०-44/10

शिष्य को सदा गुरु का अभिवादनपूर्वक सम्मान करना चाहिये, उसे आलस्य छोड़कर और शरीर तथा मन को स्वच्छ रखकर अध्ययन करना चाहिये। उसे अभिमान और क्रोध नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचर्य पालन का यह पहला पाद है।

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते।।

उद्योग०-44/12

अपने प्राणों और धन से भी तथा मन, वचन और कर्म से आचार्य को प्रसन्न रखना चाहिये। ब्रह्मचर्य पालन का यह दूसरा चरण है।

समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाऽऽचरेत्।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीय पाद उच्यते।।

उद्योग०-44/13

शिष्य का गुरु के प्रति श्रद्धा और सम्मान का जैसा भाव होता है वैसा ही भाव गुरु की पत्नी और पुत्र के प्रति होना चाहिये। ब्रह्मचर्य का यह भी दूसरा पाठ है।

आचार्येणात्मकृतं विजानन् ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन।
यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

उद्योग०-44/14

आचार्य ने हमारा जो उपकार किया है तथा उस ज्ञान से हमारा जो लाभ हुआ है उसे ध्यान में रखकर आचार्य के प्रति प्रसन्न मन से कृतज्ञ रहना ब्रह्मचर्य पालन का तीसरा पाठ है।

नाचार्यस्यानपाकृत्य प्रवासं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि।
इतीव मन्येत न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः।।

उद्योग०-44/15

आचार्य के उपकारों से मुक्त हुए बिना अर्थात् गुरुदक्षिणा दिये बिना विद्वान् शिष्य गुरुकुल से न जाये। वह अपने मन में कभी यह न सोचे कि मैं गुरु का उपकार कर रहा हूँ, न ही ऐसी बात कभी कहे। यह ब्रह्मचर्य का चौथा पाठ है।,

कालेन पादं लभते तथार्थं ततश्च पादं गुरुयोगतश्च।
उत्साहयोगेन च पादमृच्छेच्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति।।

उद्योग०-44/16

इस ब्रह्मविद्या का एक अंश तो समय बीतने के साथ अपने अनुभव से मिलता है, एक अंश गुरु की कृपा से, कुछ विद्या अपने उत्साह से प्राप्त करनी पड़ती है और इस विद्या का शेष भाग शास्त्र चर्चा से मिलता है।

य आश्रयेत् पावयेच्चापि राजन् सर्वं शरीरं तपसा तप्यमानः।
एतेन वै बाल्यमभ्येति विद्वान् मृत्युं तथा स जयत्यन्तकाले।।

उद्योग०-44/23

राजन्! जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्रह्मचारी अपने शरीर को तपस्या से तपाकर पवित्र बना लेता है। वह विद्वान् बनकर अबोध बालक की भांति राग द्वेष से रहित हो जाता है और अन्तकाल में मृत्यु को जीत लेता है।

अन्तवतः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकान् जनाः कर्मणा निर्मलेन।
ब्रह्मैव विद्वांस्तेन चाभ्येति सर्वं नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।।

उद्योग०-44/24

राजन्! कामनाओं से पुण्य कर्म करने वाले लोग कभी न कभी नष्ट होने वाले लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु ब्रह्मवेत्ता विद्वान् ज्ञान के द्वारा ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। मोक्ष के लिये ज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है।

ब्रह्म का रूप

धृतराष्ट्र : **आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमथाञ्जनं काद्रवं वा।**
सद्ब्रह्मणः पश्यति योऽत्रविद्वान् कथं रूपं तदमृतमक्षरं पदम्।।

उद्योग०-44/25

विद्वान् पुरुष जिस सत्य स्वरूप परमात्मा के अमर और अविनाशी स्वरूप का साक्षात् करते हैं उसका रूप कैसा है? क्या वह सफेद, लाल, काला, काजल जैसा या सोने के रंग जैसा प्रतीत होता है।

सनत्सुजात : **आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमायसमर्कवर्णम्।**
न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे नैतत् समुद्रे सलिलं बिभर्ति।।

उद्योग०-44/26

यद्यपि सफेद, लाल, काले, लोहे जैसे या सूर्य जैसे रंग प्रतीत होते हैं किन्तु ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप न पृथ्वी में है, न आकाश में है और न ही समुद्र के जल में है।

न तारकासु न च विद्युदाश्रितं न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य।
न चापि वायौ न च देवतासु नैतच्चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये।।

उद्योग०-44/27

इस ब्रह्म का वास्तविक रूप न तारों में, न बिजली में, न बादलों में, न वायु में, न देवताओं में, न चन्द्रमा में और न ही सूर्य में दिखाई देता है।

नैवर्क्षु तन्न यजुष्षु नाप्यथर्वसु न दृश्यते वै विमलेषु सामसु।
रथन्तरे बार्हद्रथे वापि राजन् महाव्रते नैव दृश्येद् ध्रुवं तत्।।

उद्योग०-44/28

राजन्! वह ब्रह्म ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी नहीं दीखता। न ही वह रथन्तर और बृहद्रथ नाम के वैदिक छन्दों में या महान् व्रतों में दीखता है।

अपारणीयं तमसः परस्तात् तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले।
अणीयो रूपं क्षुरधारया समं महच्च रूपं तद् वै पर्वतेभ्यः।।

उद्योग०-44/29

ब्रह्म के स्वरूप का कोई आर पार नहीं है। वह अज्ञान के अन्धकार से सर्वथा रहित है। महाप्रलय में सबका नाश करने वाला काल भी उसमें समा जाता है। उसका रूप उस्तरे की धार के समान अत्यन्त सूक्ष्म है और पर्वतों के आकार से भी कहीं महान् है।

सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद् ब्रह्म तद् यशः।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात् प्रलयं यान्ति तत्र हि।।

उद्योग०-44/30

वही सबका आधार है, वही अमृत स्वरूप है, वही लोक, वही यश और वही ब्रह्म है। सम्पूर्ण प्राणी और भूत उसी से उत्पन्न हुए हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं।

अनामयं तन्महदुद्यतं यशो वाचो विकारं कवयो वदन्ति।
यस्मिन् जगत् सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

उद्योग०-44/31

विद्वान् कहते है कि वह ब्रह्म किसी भी प्रकार के रोग, शोक, पाप आदि त्रुटियों

से रहित है। उसका महान् यश सर्वत्र व्याप्त है। उसका कार्यरूप जगत् वाणी का विकार ही है। उसी में यह समस्त संसार प्रतिष्ठित है। जो उस ब्रह्म को जान लेते हैं वे अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं।

यत् तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद् यशः।
तद् वै देवा उपासते तस्मात् सूर्यो विराजते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/1

जो शुद्ध ब्रह्म है, वह महान् ज्योतिर्मय, देदीप्यमान और अत्यधिक यशस्वी है। देवता उसी की उपासना करते हैं। उसी के प्रकाश से सूर्य ज्योतिर्मय है। उस सनातन भगवान को योगी साक्षात् करते हैं।

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्धते।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/2

शुद्ध परब्रह्म से हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता है और यह उसी शुद्ध परब्रह्म से बढ़ता है। वह शुद्ध परब्रह्म सूर्य आदि ज्योतिर्मान पदार्थों के अन्दर है। वही इन ज्योति और तापरहित पिण्डों को तपा रहा है और प्रकाशित कर रहा है किन्तु शुद्ध परब्रह्म ताप-रहित है। उस सनातान भगवान को योगी साक्षात् करते हैं।

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च दिशः शुक्रो भुवनं बिभर्ति।
तस्माद् दिशः सरितश्च स्त्रवन्ति तस्मात् समुद्रा विहता महान्ताः।।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/4

वह शुद्ध ब्रह्म ही ईश्वर और जीव इन दोनों को, पृथिवी, दिशाओं, आकाश और सम्पूर्ण लोकों को धारण किये हुए हैं। उसी शुद्ध ब्रह्म में दिशाएँ प्रकट हुई हैं। नदियाँ और महासागर भी उसी की रचनाएँ हैं। उस सनातन भगवान का योगी साक्षात् दर्शन करते हैं।

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्।
मनीषयाथो मनसा हृदा च य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/6

परमात्मा के स्वरूप की किसी से बराबरी नहीं की जा सकती। उसे आंखों से नहीं देखा जा सकता। जो अपनी बुद्धि, मन और हृदय से उस परब्रह्म को जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं। उस सनातन ब्रह्म का साक्षात् योगी करते हैं।

द्वादशपूगां सरितं पिबन्तो देवरक्षिताम्।
मध्वीक्षन्तश्च ते तस्याः संचरन्तीह घोराम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/7

दस इन्द्रियों और मन तथा बुद्धि इन बारह के समुदाय वाले और परमात्मा से सुरक्षित इस संसार रूपी नदी के विषय रूप मधुर जल को देखने और पीने वाले लोग इसी भयंकर नदी में गोते लगाते रहते हैं किन्तु इन सांसारिक विषयों से मुक्त योगी इस सनातन ब्रह्म को साक्षात् देखते हैं।

तदर्धमासं पिबति संचित्य भ्रमरो मधु।
ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/8

जैसे मधुमक्खी आधे महीने तक शहद इकट्ठा करके उसे आधे मास तक पीती रहती है वैसे ही यह संसारी मनुष्य इस जन्म में और पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों का फल भोगता है। परमात्मा ने सब प्राणियों के लिये हवि की अर्थात् भोग्य पदार्थों की उनके कर्मों के अनुसार व्यवस्था की हुई है। योगी इस सनातन ब्रह्म को साक्षात् देखते हैं।

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपद्य ह्यपक्षकाः।
ते तत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथा दिशम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/8

सुनहरे पत्तों वाले पेड़ पर पंख न निकलने तक पक्षी बैठे रहते हैं, किन्तु पंख निकलते ही वे मनचाही दिशा में उड़ जाते हैं। सनातन ब्रह्म का बनाया हुआ ही यह संसार रूपी पेड़ है जिसके विषय भोग सोने के समान लुभावने पत्ते हैं। पंखहीन जीव इस पर बैठा हुआ पाप और पुण्य कर्म करता रहता है और फिर वह इन्हीं कर्मों के पंखों से विभिन्न योनियों में आता जाता रहता है। किन्तु योगी इस सनातन ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा लिङ्गस्य योगेन स याति नित्यम्।
तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं पश्यन्ति मूढा न विराजमानम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/15

हृदय में बैठा हुआ वह अंगूठे जितना छोटा जीवात्मा पुरुष सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध से सदा जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। सबके शासक, वन्दनीय, सर्वसमर्थ और सबके आदिकारण सर्वत्र विराजमान इस परमात्मा को मूर्ख पुरुष नहीं देख पाते किन्तु योगी उस सनातन भगवान का दर्शन करते हैं।

असाधना वापि ससाधना वा समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु।
समानमेतदमृतस्येतरस्य मुक्तास्तत्र मध्व उत्सं समापुः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/16

कोई साधन सम्पन्न हो या साधन हीन अथवा साधना करने वाला हो या साधना न करने वाला, वह ब्रह्म सब मनुष्यों में समान भाव से दीखता है। वह बद्ध जीव और मुक्त जीव के लिये भी समान है किन्तु मुक्तजीव ही आनन्द के स्रोत परब्रह्म को पाते हैं। योगी इसी सनातन भगवान के दर्शन करते हैं।

यः सहस्रं सहस्राणां पक्षान् संतत्य सम्पतेत्।
मध्यमे मध्य आगच्छेदपि चेत् स्यान्मनोजवः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/19

चाहे कोई हजारों पंख लगाकर भी क्यों न उड़े और वह मन के समान वेग वाला भी क्यों न हो उसे भी अन्त में हृदय के बीच स्थित परमात्मा की शरण में आना पड़ेगा। योगी उस सनातन ब्रह्म का दर्शन करते हैं।

न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य पश्यन्ति चैनं सुविशुद्धसत्त्वाः।
हितो मनीषी मनसा न तप्यते ये प्रव्रजेयुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/20

इस परमात्मा का स्वरूप सब नहीं देख सकते। विशुद्ध अन्तःकरण वाले ही उसका दर्शन कर पाते हैं। जो सबका हित चाहते हैं, जिनका मन वश में है, जिनके

मन में दुःख नहीं है, जो सांसारिक संबंधों को त्याग देते हैं वे मुक्त होकर अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं। योगी उस सनातन ब्रह्म के दर्शन करते हैं।

गूहन्ति सर्पा इव गह्वराणि स्वशिक्षया स्वेन वृत्तेन मर्त्याः।
तेषु प्रमुह्यन्ति जना विमूढा यथाध्वानं मोहयन्ते भयाय।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/21

जैसे सांप बिलों में छिपे रहते हैं वैसे ही कपटी मनुष्य अपनी शिक्षा और व्यवहार से अपने दोषों को छिपाये रखते हैं। जैसे ठग रास्ता चलने वालों को लूटने के लिये गलत रास्ता दिखाकर उन्हें संकट में डाल देते हैं वैसे ही दम्भी और कपटी मनुष्य लोगों को गलत रास्ते पर चलाना चाहते हैं। योगी उस सनातन ब्रह्म का दर्शन करते हैं।

नाहं सदासत्कृतः स्यां न मृत्युर्नचामृत्युरमृतं मे कुतः स्यात्।
सत्यानृते सत्यसमानबन्धे सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/22

मेरा किसी से सत्कार या अपमान नहीं होता। न मेरी मृत्यु होती है न जन्म, फिर मोक्ष किसका होगा? (मैं तो नित्यमुक्त हूँ।) सत्य और असत्य मुझ सनातन ब्रह्म में समान रूप से स्थित है। मैं ही सत् और असत् का उत्पत्ति स्थान हूँ। मेरे इस सनातन स्वरूप को योगी ही देख पाते हैं।

न साधुना नोत असाधुना वासमानमेतद् दृश्यते मानुषेषु।
समानमेतदमृतस्य विद्यादेवंयुक्तो मधु तद् वै परीप्सेत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।

उद्योग०-46/23

परमात्मा का न तो साधुकर्म से लेना देना है न असाधुकर्म से। यह अच्छे बुरे की असमानता तो मनुष्यों में ही देखी जाती है। उस अमृत स्वरूप ब्रह्म को सर्वत्र समान ही समझना चाहिये। इस ज्ञान से युक्त होकर उस आनन्दमय ब्रह्म को पाने की इच्छा करनी चाहिये। उस सनातन ब्रह्म का दर्शन योगी करते हैं।

एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यंति।
अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत् ततः परम्।।

उद्योग०-46/25

इस प्रकार जो मनुष्य सभी प्राणियों में परमात्मा को देखता है वह इधर-उधर के भोगों में पड़े हुए मनुष्यों के लिये शोक क्यों करे?

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा न दृश्यतेऽसौ हृदि संनिविष्टः।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितश्च स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः ।।

उद्योग०-46/27

अंगूठे जितना परमात्मा सबके हृदयों में विराजमान है किन्तु वह महात्मा सबको दिखाई नहीं देता। वह अजन्मा चराचर स्वरूप परमात्मा रात-दिन सावधान रहता है। ज्ञानी पुरुष उसे जानकर परमानन्द में निमग्न हो जाता है।

अणोरणीयान् सुमनाः सर्वभूतेषु जाग्रति।
पितरं सर्वभूतेषु पुष्करे निहितं विदुः ।।

उद्योग०-46/31

सूक्ष्म अणु से भी सूक्ष्म और विशुद्ध मन वाला परमात्मा सब प्राणियों में प्रकाशित है। सभी जीवों के हृदय कमल में स्थित उस परमपिता को ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं।

28
विदुलोपाख्यान

श्रीकृष्ण किसी न किसी प्रकार युद्ध न होने देने के लिये स्वयं हस्तिनापुर गये थे। उन्होंने धृतराष्ट्र और दुर्योधन को बहुत समझाया, किन्तु दुर्योधन अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। उसने श्रीकृष्ण को कैद करना चाहा। यह देख श्रीकृष्ण ने कौरव सभा में अपना विश्व रूप दिखाया। कौरव सभा से निकल कर वे कुन्ती से मिलने गये। उन्होंने कुन्ती से पूछा कि मैं पाण्डवों को आपका क्या सन्देश दूँ। कुन्ती ने कहा आप युधिष्ठिर से कहना कि तुम्हारा धर्म प्रजा का पालन करना है। राजा से सुरक्षित प्रजा जो धर्माचरण करती है उसका चौथाई भाग राजा को मिलता है। तुम्हारा पैतृक राज्य शत्रु के हाथों में है। उसे तुम फिर अपने अधिकार में लो। तुम राजधर्म के अनुसार युद्ध करो। कायर बनकर अपने बाप दादों का नाम मत डुबाओ। तुम्हें शायद विदुला और उसके बेटे की कथा याद नहीं है। एक बार विदुला का पुत्र सिन्धु के राजा से हारकर घर में आकर सो गया। अपने पुत्र का यह कायरता भरा आचरण देखकर विदुला ने उसे फटकारा और कहा कि कायरों की तरह जीवित रहने से तो युद्ध करते हुए मर जाना कहीं अच्छा है।

विदुला : माऽऽत्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर।।

उद्योग०-133/7

तुम अपने को छोटा मत समझो। इस शरीर का थोड़े से धन से भरण-पोषण मत करो। मन को शुभ संकल्पों से परिपूर्ण करके शत्रु को मारो। डरो मत।

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धुशोकदः।।

उद्योग०-133/8

अरे कायर! उठ खड़ा हो। शत्रु से हारकर इस तरह घर में पड़ा हुआ मत सो। ऐसा आचरण करके तू शत्रुओं को आनन्दित कर रहा है और अपने बन्धु बान्धवों को दु:खी। मान और प्रतिष्ठा से रहित मत हो।

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।
सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति।।

उद्योग०-133/9

छोटी नदी थोड़े से ही पानी से एकदम भर जाती है। चूहे की अंजलि भी थोड़े से अन्न से भर जाती है। कायर भी सन्तोषी होता है वह थोड़े से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः।।

उघोग 133/10

तू शत्रुरूपी सांप के दांत तोड़ता हुआ तत्काल मर जा। यदि तुझे मरने का संदेह हो तो भी तू शत्रु के साथ युद्ध में पराक्रम दिखा।

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।
मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः।।

उद्योग०-133/15

घड़ी भर प्रज्वलित रहना अच्छा, किन्तु देर तक धुआं छोड़ते हुए सुलगना अच्छा नहीं। किसी भी राजा के घर में अत्यन्त कठोर अथवा अत्यन्त मृदु स्वभाव वाले पुरुष का जन्म नहीं होना चाहिये।

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः।
आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते।।

उद्योग०-133/17

विद्वान् पुरुष अभीष्ट फल पाकर या न पाकर शोक नहीं करता। वह प्राणों के रहते निरन्तर प्रयत्न करता है और अपने लिये धन नहीं चाहता।

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि।।

उद्योग०-133/18

पुत्र! धर्म को आगे रखकर या तो अपना पराक्रम दिखा अथवा सभी प्राणियों के लिये निश्चित गति (मृत्यु) को प्राप्त हो जा। तू किस लिये जी रहा है ?

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किं निमित्तं हि जीवसि।।

उद्योग०-133/19

अरे कायर! तेरे इष्ट और आपूर्त कर्म तथा सारा यश नष्ट हो गया। भोग का मूल कारण (आधार) राज्य भी नष्ट हो गया। फिर तू किसलिये जीवित है ?

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छिन्न मूलोऽपि न विषीदेत कथंचन्।।

उद्योग०-133/20

मनुष्य को डूबते समय या ऊपर से गिरते हुए भी शत्रु की टांग अवश्य पकड़नी चाहिए। अपना मूलोच्छेद होने पर भी हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिये।

कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि।।

उद्योग०-133/21

बेटे! तू अपने बल और स्वाभिमान को तथा अपने पौरुष को पहचान। अपने डूबे हुए कुल का अपने कल्याण के लिये स्वयं ही उद्धार कर।

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान्।।

उद्योग०-133/22

जिसके महान् और अद्भुत पुरुषार्थ की लोग चर्चा नहीं करते ऐसा व्यक्ति न तो स्त्री है और न ही पुरुष। वह तो केवल जनसंख्या ही बढ़ाता है।

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे वा मातरुच्चार एव सः।।

उद्योग०-133/23

दान, तप, सत्य भाषण, विद्या तथा धन कमाने में जिस पुरुष के यश की चर्चा नहीं की जाती ऐसा व्यक्ति तो माता का मलमूत्र ही होता है।

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा।
जनान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान्।।

उद्योग०-133/24

जो मनुष्य अपने ज्ञान, तपस्या, धन या पराक्रम से दूसरे लोगों को पराजित कर देता है वही पुरुष कहलाता है।

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि।
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम्।।

उद्योग०-133/25

तुम्हें हिजड़ों, भिखारियों, क्रूर मनुष्यों तथा कायर पुरुषों के लिये उचित, दुःख देने वाली और यश नष्ट करने वाली कोई बात नहीं माननी चाहिये।

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीयमरिनन्दनम्।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्।।

उद्योग०-133/30

कोई भी स्त्री ऐसे पुत्र को जन्म न दे जो रोषरहित, उत्साहहीन, पराक्रम शून्य और शत्रुओं को प्रसन्न करने वाला हो।

मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्।
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम्।।

उद्योग०-133/31

धुआं मत छोड़। दहक उठ, आक्रमण कर, शत्रुओं को मार डाल। शत्रुओं के सिर पर सवार होकर तू क्षण भर के लिये भी शोला बन जा।

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी।
क्षमावान् निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्।।

उद्योग०-133/32

जिसके हृदय में उत्साह है और जो शत्रु को क्षमा नहीं करता है वही पुरुष है। क्षमाशील और रोषहीन व्यक्ति न तो पुरुष होता है न ही स्त्री।

संतोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च।
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत्।।

उद्योग०-133/33

सन्तोष, दया, उद्यमशून्यता और भय ये दोष सम्पत्ति नष्ट कर देते हैं। निश्चेष्ट मनुष्य कोई महत्त्वपूर्ण पद या प्रतिष्ठा नहीं पाता।

एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना।
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम्।।

उद्योग०-133/34

तिरस्कार और निन्दा वाले इन दोषों से तू स्वयं अपने को छुड़ा और लोहे का हृदय बनाकर स्वयं अपना पौरुष पहचान।

परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्चते।
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद् य इह जीवति।।

उद्योग 133/35

जो 'पर' अर्थात् शत्रु का सामना करता है वही पुरुष कहलाता है। किन्तु जो स्त्रियों की तरह जीता है उसे पुरुष कहना बेकार है।

भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम्।
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः।।

उद्योग०-133/41

नौकरों से रहित, दूसरों के टुकड़ों पर जीने वाले, दीन-हीन और दुर्बल मनुष्यों के जीवन को मत अपना।

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय।
पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत्।।

उद्योग०-133/43

पुत्र संजय! जिस पुरुष के सहारे सभी प्राणी उसी तरह जीते है जैसे पके फलों वाले पेड़ से पक्षी। ऐसे ही पुरुष का जीवन सार्थक या सफल होता है।

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम्।।

उद्योग०-133/45

जो मनुष्य अपने बाहुबल के सहारे उत्कृष्ट जीवन बिताता है, उसे इस लोक में यश मिलता है और परलोक में सद्गति।

संजयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत् त्वयि।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः।।

उद्योग०-134/7

बेटे! तेरा नाम संजय है पर मुझे तुझ में इस नाम के गुण नहीं दीख रहे। मेरे बेटे अपना नाम सार्थक कर, विजयी बन, व्यर्थ संजय मत कहला।

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान् संजीवयस्व नः।।

उद्योग०-134/21

पार न किये जा सकने वाले समुद्र में तुम हमें पार लगाओ। तुम ही हम डूबते हुओं की नाव बन जाओ। हमारे जैसे उजड़ों के लिये तू शरण बन और हमें फिर जीवन दे।

एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम्।।

उद्योग०-134/23

एकशत्रु को मार कर भी वीर पुरुष विश्व प्रसिद्ध हो जाता है।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनःकृत्वा सततमव्यथैः ।।

उद्योग०-135/ 30

सफलता अवश्य मिलेगी मन में यह दृढ़ निश्चय करके और सदा विषादरहित रह करके उठना चाहिये, जागना चाहिये, और कल्याण के काम करने चाहिएं।

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि।
अपि चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत्।।

उद्योग०-136/1

चाहे कैसी भी आपत्ति क्यों न आ जाय राजा को कभी नहीं डरना चाहिये। यदि वह डर भी जाय तब भी उसे भयभीत की भांति आचरण नहीं करना चाहिये।

प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव।
विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये।।

उद्योग०-136/7

मैं तेरे प्रभाव, पुरुषार्थ और बुद्धि को जानना चाहती थी इसीलिये तुझे आश्वासन देते हुए तेरा तेज (उत्साह) बढ़ाने के लिये मैंने ये बातें कहीं।

यदेतत् संविजानासि यदि सम्यग् ब्रवीम्यहम्।
कृत्वासौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ संजय।।

उद्योग०-136/8

संजय! मैं यदि ठीक बात कह रही हूँ और तू भी इन बातों को ठीक समझता है तो अपने को उग्र बनाकर विजय के लिये उठ खड़ा हो।

29

श्रीकृष्ण और कर्ण की बातचीत

संजय के उपप्लव्य नगर में आने पर युधिष्ठिर ने कहा था यदि दुर्योधन हमें हमारा राज्य न लौटाकर केवल पांच गाँव भी दे देगा तो युद्ध टल जायेगा। लेकिन दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से साफ कह दिया कि वह पाँच गांव तो क्या सूईं की नोक के बराबर भूमि भी युद्ध के बिना पाण्डवों को नहीं देगा। श्रीकृष्ण किसी तरह युद्ध टालने के लिये हस्तिनापुर गये थे किन्तु दुर्योधन ने बड़े-बूढ़ों के समझाने पर भी श्रीकृष्ण की बात नहीं मानी। ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण ने अन्तिम प्रयत्न करने के लिये कर्ण से साफ-साफ बात करने का निश्चय किया और वे कर्ण को रथ में बिठाकर हस्तिनापुर से चल दिये। नगर से कुछ दूर जाकर उन्होंने कर्ण से कहा।

श्रीकृष्ण : त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान्।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः।।

उद्योग०-140/7

कर्ण! तुम सनातन वैदिक सिद्धान्तों को जानते हो। तुम धर्मशास्त्रों की सूक्ष्म बातों को भी भलीभांति समझते हो।

कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते।
वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः।।

उद्योग०-140/8

कन्या के विवाह से पहले उत्पन्न हुआ उसका पुत्र कानीन कहलाता है और कन्या के विवाह से पहले गर्भ में रहकर उसके विवाह के बाद पैदा हुआ पुत्र सहोढ कहलाता है। ऐसे पुत्रों की माता के साथ जिसका विवाह होता है वह पुरुष शास्त्रों के अनुसार पुत्रों का पिता होता है।

सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः।
निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि।।

उद्योग०-140/9

कर्ण! तुम्हारा जन्म भी इसी तरह हुआ है (तुम कुन्ती का विवाह होने से पहले ही उसके पेट से पैदा हुए हो) इसलिये धर्म के अनुसार तुम पाण्डु के पुत्र हो। धर्मशास्त्रों की मर्यादा के अनुसार तुम हमारे पक्ष में आ जाओ और तुम ही राजा बनोगे।

पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ।।

उद्योग०-140/10

पिता के पक्ष में तेरे भाई युधिष्ठिर आदि हैं और माता के पक्ष में वृष्णि लोग हैं। तू इन दोनों पक्षों को समझ ले।

मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः।
अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात्।।

उद्योग०-140/11

प्रिय कर्ण! जब तू मेरे साथ यहाँ से चलेगा तो पाण्डवों को पता चल जायेगा कि तुम युधिष्ठिर से पहले कुन्ती से पैदा हुए हो।

पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः।
द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः।।

उद्योग०-140/12

पांचों पाण्डव तुम्हारे छोटे भाई हैं इसलिये वे तुम्हारे पैर छुएंगे। द्रौपदी के पांचों पुत्र और सुभद्रा का अपराजित पुत्र अभिमन्यु ये सब भी तुम्हारे पैर छूकर तुम्हारा सम्मान करेंगे।

द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा।
अहं च त्वाभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम्।।

उद्योग०-140/18

द्रौपदी के पांचों पुत्र, पाञ्चाल और चेदि देश के राजा तथा मैं, ये सब तुम्हारा पृथिवी का पालन करने वाले राजा के पद पर राजतिलक करेंगे।

कर्ण : असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव।
सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च।।

उद्योग०-141/1

हे कृष्ण! आपने मेरे साथ अपनी मित्रता, स्नेह, सौहार्द और मेरी भलाई की भावना से ये बातें कहीं हैं।

सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः।
निश्चयाद् धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे।।

उद्योग०-141/2

हे कृष्ण! जैसा आप मानते हैं धर्मशास्त्रों के निश्चय के अनुसार मैं धर्म की दृष्टि से पाण्डु का ही पुत्र हूँ। इन सब बातों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

कन्या गर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन।
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत्।।

उद्योग०-141/3

जनार्दन! कुन्ती ने कन्या अवस्था में सूर्य के संयोग से मुझे गर्भ में रखा था और सूर्य के कहने से पैदा हो जाने पर मुझे जल में बहा दिया था।

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद् गृहान्।
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन।।

उद्योग०-141/5

मधुसूदन कृष्ण! अधिरथ नाम के सारथि ने मुझे बहता देखकर उठा लिया था और बड़े स्नेह के साथ मुझे अपनी पत्नी राधा को दे दिया था।

मत्स्नेहाच्चैव राधायां सद्यः क्षीरमवातरत्।
सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव।।

उद्योग०-141/6

हे माधव! मेरे प्रति बहुत स्नेह होने के कारण राधा के स्तनों में जल्दी ही दूध उतर आया था। उसी ने मेरा मल-मूत्र भी उठाया और साफ किया है।

तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम्।
धर्मविद् धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः।।

उद्योग०-141/7

इसलिये सदा धर्मशास्त्रों की चर्चा सुनने वाला मेरे जैसा धर्म का जानकार पुरुष राधा के उपकार को कैसे भूल सकता है?

तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम्।
पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा।।

उद्योग०-141/8

अधिरथ सारथि भी मुझे अपना बेटा ही समझते हैं और में भी सौहार्द के कारण उन्हें सदैव अपना पिता मानता हूँ।

न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः।
हर्षाद् भयाद् वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे।।

उद्योग०-141/12

हे गोविन्द! सारी पृथिवी का राज्य और सोने के ढेर देखकर भी तथा किसी प्रसन्नता या भय के कारण भी मैं इन सम्बन्धों को नहीं झुठला सकता।

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात्।
मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम्।।

उद्योग०-141/13

कृष्ण! मैंने दुर्योधन का सहारा पाकर धृतराष्ट्र के कुल में रहते हुए तेरह वर्षों तक निष्कण्टक राज्य का सुख भोगा हैं।

मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पाण्डवैः।।

उद्योग०-141/15

हे कृष्ण! दुर्योधन ने मेरे सहारे से हथियार उठाये हैं और पाण्डवों के साथ शत्रुता की है।

वधाद् बन्धाद् भयाद् वापि लोभाद् वापि जनार्दन।
अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः।।

उद्योग०-141/17

हे जनार्दन! मृत्यु या पकड़ लिये जाने के डर से अथवा किसी लोभ में आकर भी मैं दुर्योधन के साथ गलत आचरण नहीं कर सकता।

असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन।
सर्वं च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः।।

उद्योग०-141/18

मधुसदन! आपने निस्सन्देह मेरा हित ध्यान में रखकर ही यह बात कही है। सारे पाण्डव आपके अधीन हैं। वे भी आपकी बात मानेंगे।

यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति।।

उद्योग०-141/21

अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने वाले धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को यदि पता चल गया कि मैं कुन्ती का पहला पुत्र हूँ तो युधिष्ठिर राज्य नहीं लेंगे वे यह राज्य मुझे ही दे देंगे।

प्राप्य चापि महद् राज्यं तदहं मधुसूदन।
स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिन्दम।।

उद्योग०–141/22

हे मधुसूदन! मैं इस विशाल और विस्तृत राज्य को पाकर भी दुर्योधन को ही इसे दे दूंगा।

स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः।
नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः।।

उद्योग०–141/23

मैं यही चाहता हूँ कि जिनके नेता हृषीकेश श्रीकृष्ण हैं और योद्धा अर्जुन है वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सदा राजा बने रहें।

धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति।
अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन।।

उद्योग०–141/29

जर्नादन! वृष्णिनन्दन! अब तो दुर्योधन के यहाँ शस्त्र-यज्ञ होगा, जिसके साक्षी आप होंगे।

समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव।
मन्त्रसंवरणं कुर्वन् नित्यमेव परंतप।।

उद्योग०–141/57

शत्रुओं को संताप देने वाले केशव! आप कुन्ती के पुत्र अर्जुन को मेरे साथ युद्ध करने के लिये ले आइये और हमारी इस बात को सदा गुप्त रखिये।

30
गीता का उपदेश

भीष्म पर्व से महाभारत के युद्ध की कथा आरम्भ होती है। धृतराष्ट्र ने संजय से युद्ध के लिये कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए राजाओं का परिचय पूछा। कुरुक्षेत्र की संग्राम भूमि में देश और विदेश के अनेक राजा और उनकी सेनाएँ जमा थीं। इनमें से कुछ पाण्डवों की ओर से और कुछ कौरवों की ओर से लड़ने के लिये आई थीं। संक्षेप में कुल्लू, कांगड़ा से लेकर मध्य एशिया तक के राजाओं की सहानुभूति कौरवों के साथ थी। मध्यदेश, विन्ध्यपृष्ठ, प्राच्य एवं सौराष्ट्र अपरान्त के राजा पाण्डवों के पक्ष में थे। शूरसेन, पांचाल, और विराट के राजा भी पाण्डवों के साथ थे। सौराष्ट्र में अन्धक और वृष्णियों के अनेक गणराज्य कृष्ण के साथ ही थे।

भीष्म पर्व के आरम्भ में उन उत्पातों और अपशकुनों की सूची है जो युद्ध में होने वाले भयंकर विनाश के सूचक थे। प्रकृति के कार्यकलापों में या मानव जीवन में जो निश्चित स्वाभाविक पद्धति है उसका उल्लंघन या विनाशकारी चक्र इन अपशकुनों के मूल में पाया जाता है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, वायु, नदी, पर्वत, वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य ये सभी विश्व के विराट विधान के अंग हैं। यह विधान सबके लिये समान है। उसमें होने वाली उलट-फेर सूचित करती है कि भारी विपत्ति आने वाली है।

महाभारत के युद्ध में भारतीय सभ्यता ने अपनी बहुत सी उपलब्धियाँ खो दीं। आश्चर्य यही है कि इतने भयंकर विनाश के बाद भी भारत की संस्कृति किसी तरह बची रही। रामायण के द्वारा भारत ने जिन आदर्शों को पाया था, महाभारत में उनका कंकाल दिखाई पड़ता है। राष्ट्र की आत्मा जैसे घायल हो चुकी थी। मनुष्य जब सत्ता के नशे में चूर हो जाता है तो युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता; भीष्मपर्व का अंश है। गीता जैसा ग्रन्थ भारतीय साहित्य में

नहीं है। भारतीय मान्यता के अनुसार यह ईश्वर का मानव को उपदेश है। यह मुख्य रूप से अध्यात्म विद्या का ग्रन्थ है। अध्यात्म से तात्पर्य मनुष्य के मन की उस समस्या से है, जो आत्मा के विषय में, उसके अमृत स्वरूप, आदि और अन्त के विषय में, शरीर और कर्म के बारे में, संसार और उसमें होने वाले अच्छे-बुरे व्यवहारों के सम्बन्ध में, आत्मा और ईश्वर के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में तथा मानव मन की ज्ञान, कर्म और भक्ति रूपी जो तीन विशेष प्रवृत्तियाँ हैं, उनके अनुसार किसी एक को स्वीकार करके सब तरह के जीवन व्यवहारों को सिद्ध करने और सबके समन्वय से जीवन को सफल, उपयोगी और आनन्दमय बनाने के विषय में उत्पन्न होती है।

भारतीय संस्कृति और वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार विश्व के साहित्य में कर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र का ऐसा रसपूर्ण ग्रन्थ कोई दूसरा नहीं है। धार्मिक मान्यता के अनुसार गीता साक्षात् भगवान् की वाणी है किन्तु आधुनिक मनुष्य की बुद्धि को यह बात माानने में झिझक हो सकती है। तो भी इस प्रकार की कल्पना तो स्वीकार की जा सकती है कि यदि ईश्वर जैसी कोई अध्यात्म सत्ता सृष्टि में है और मनुष्य अपने जीवन के लिये संशयरहित मार्ग को जानने की इच्छा से उस ईश्वर तत्त्व के ही, जिसने विश्व और मानव का निर्माण किया है, सान्निध्य में पहुंच जाये तो उससे प्राप्त होने वाले समाधान का जो स्वरूप सम्भव हो, वही गीता है। मनुष्य को जीवन में गीता जैसे मार्मिक ज्ञान की बहुत बार आवश्यकता पड़ती है, जिसके प्रकाश में वह अपने संशयों को सुलझा कर अपने लिये कर्म करने या न करने का निश्चय कर सके।

"भगवान् कृष्ण की वाणी वेदव्यास की पूर्णतम मनःसमाधि से निष्पन्न हुई है। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि गीता; मानव जीवन की मौलिक समस्याओं की व्याख्या करने वाला ऐसा परिपूर्ण काव्य है, जिसकी तुलना किसी दर्शन, धर्म, अध्यात्म या नीति के ग्रन्थ से नहीं की जा सकती।

"गीता महाभारत का सर्वोत्तम अंश है। गीता कौरवों-पाण्डवों के युद्ध से पूर्व उस व्यक्ति से कही गई, जो दोनों पक्षों के क्षात्र-बल का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। पाण्डव; धर्म को किसी भी परिस्थिति में छोड़ना नहीं चाहते थे। अपने ज्ञान, कर्म और हृदय की भावना से युक्त होकर विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के अनेक प्रसंग जीवन में आते हैं। इस बिन्दु पर पहुँच कर मनुष्य अपने पूरे व्यक्तित्व को कर्म की भट्टी में डाल देता है। इसे ही युद्ध कहते हैं। यह युद्ध भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार का हो सकता है। ऐसे कठिन मोर्चे पर पहुँच कर अर्जुन का दृढ़ मन टुकड़े-टुकड़े

हो गया। जिस धर्म के भाव ने अर्जुन को युद्ध के लिये तैयार किया था उसी ने अर्जुन के मन को सन्देह से भर दिया। कृष्ण ने अर्जुन के मन की इस डांवाडोल स्थिति को नपुंसकता बताया। अर्जुन का संकट दो धर्मों के बीच में है। अर्जुन के सन्देह का कारण यह नहीं था कि वह धर्म का मार्ग छोड़कर अधर्म की ओर जाना चाहता था किन्तु अब तक जिसे वह धर्म समझे हुए था, उससे और ऊँचे धर्म को पकड़ने का भाव उसके मन में आ गया था। किन्तु जिस नये और ऊँचे धर्म का आकर्षण उसके मन में भर गया था उस सन्देह को जीतने की शक्ति उसमें नहीं थी। अर्जुन के भीतर कृपा या दया का जो भाव भर गया था वह वैसा ही था जैसा बुद्ध, महावीर, भर्तृहरि आदि राजकुमारों के मन में संसार के प्रति उत्पन्न हुआ था।

"गीता का देवता या चिन्मय तत्त्व परमात्मा या ईश्वर है। वही गीता का प्राण या जीवन है। ईश्वर के लिये गीता में ओम्, तत् और सत् ये तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ईश्वर है, वह तत् या अव्यक्त है और वह सत्य है। ईश्वर के सम्बन्ध में भारतीय दर्शन की यही मान्यता है। यह सारा विश्व और जीवन भौतिक है। यदि ईश्वर में श्रद्धा हो तभी विश्व और जीवन सार्थक है।

"भारतीय संस्कृति का मूलाधार सत् तत्त्व ही है। यह विश्व भूत, भौतिक सत् रूप है। इसके भीतर देव की सत्ता है जिसके कारण विश्व और जीवन का स्थायी मूल्य है। गीता सत् तत्त्व का प्रतिपादक शास्त्र है। यदि विश्व को असत् कहें तो जीवन की कोई समस्या ही नहीं है। एक ओर ब्रह्म है, पर उसके लिये पहले न कोई समस्या थी, न आज है, न कभी होगी। दूसरी ओर जड़ जगत् है। उसकी भी कोई समस्या नहीं। जितनी समस्याएँ हैं वे अर्जुन रूपी नर के लिये हैं। ईश्वर और विश्व के बीच की और दोनों को जोड़ने वाली कड़ी नर है। जीव की समस्याएँ दो प्रकार की हैं–एक भगवान् के साथ, दूसरी विश्व के साथ। नर और नारायण या मनुष्य और भगवान् के बीच की समस्याओं के समाधान का उपाय ज्ञान है और मनुष्य तथा विश्व की जितनी समस्याएँ हैं उनके समाधान का साधन कर्म है। ज्ञान और कर्म ये दोनों ही मनुष्य के लिये आवश्यक हैं और दोनों के समाधान से ही मनुष्य का मन; शान्ति या समन्वय प्राप्त करता है। गीता ज्ञानरूपी समाधान की दृष्टि से ब्रह्म विद्या है, वही कर्मरूपी समाधान की दृष्टि से योगशास्त्र है। गीता में ज्ञानयोग को समत्वयोग कहा है। (समत्वं योग उच्यते-2/48)

कर्म की दृष्टि से कर्मों में कौशल को योग कहा है। (योगः कर्मसु कौशलम्-2/50) ये दोनों चाहें अलग-अलग जान पड़ें, पर गीता की दृष्टि में समन्वय ही जीवन की पूर्णता के लिये आवश्यक है।

"गीता; नर के लिये नारायण की वाणी है। यदि स्वयं ईश्वर कुछ कहे या उपदेश करे, तो वह क्या भाषा होगी? इसका उत्तर है कि वह गीत या कविता ही हो सकती है। यह विश्व; ईश्वर की भाषा है। इस विश्व के द्वारा और इस विश्व के रूप में ईश्वर के पास जो कुछ कहने को था वह सब उसने कह दिया है। इसीलिये वेदों में विश्व को 'देवकाव्य' कहा गया है जिसकी भाषा और जिसके अर्थ कभी पुराने नहीं पड़ते।

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।"

कविता वह है जो बाह्य स्थूल वस्तु या शब्द के भीतर छिपे हुए अर्थ को प्रकट करती है। इसीलिये कवि को क्रान्तदर्शी कहते हैं। कवि अर्थ को देखता है। अर्थ ही ब्रह्म है, शब्द भौतिक विश्व है। शब्द; अर्थ को प्रकट करने वाला काव्य है। शब्द प्रकट है, अर्थ रहस्य है। इसीलिये अर्थ को 'उपनिषद्' कहा है। गीता; स्थूल दृष्टि से शब्दों में निबद्ध गीत या कविता है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से यह महान् रहस्य या उपनिषद् है। जो गुह्य अर्थ है, वही अध्यात्म है। वह एक अनबूझ पहेली है। इसीलिये उसे संप्रश्न भी कहते हैं। यह रहस्य ही ब्रह्म विद्या है। भारतीय संस्कृति ने आरम्भ में ही इस रहस्य विद्या या ब्रह्म ज्ञान को जिस वाङ्मय द्वारा प्रकट किया, उसी की संज्ञा वेद है। कालान्तर में वेद के ही ज्ञान को वेदारण्यक या उपनिषद् या वेदान्त भी कहने लगे। 'वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी' कालिदास के इस वाक्य में उपनिषदों की ही परम्परा को वेदान्त कहा है। ब्रह्मसूत्र तो साक्षात् उपनिषदों की अध्यात्मविद्या की ही व्याख्या करने के लिये हैं। जो उपनिषदों का अर्थ है, वही गीता में है। उपनिषद् गौएं हैं, गीता उनका अमृत दूध है।

"गीता में जितना स्थान कर्मशास्त्र को है, उतना ही ब्रह्मविद्या को है। गीता के लिये ब्रह्म के बिना कर्म की कोई स्थिति नहीं। ब्रह्मशून्य के लिये कर्म; बन्धन या केवल श्रम है। गीता को समझने के लिये तीन स्पष्ट सूत्र हैं। पहला यह है कि विश्व और मनुष्य दोनों का मूल एक सत् तत्त्व है। दूसरा यह कि ज्ञान और कर्म दोनों ही गीता के विषय हैं और दोनों ही मनुष्य के लिये आवश्यक हैं। तीसरा यह कि गीता का यह उपदेश ईश्वरीय ज्ञान या दिव्य ज्ञान के अनन्त स्रोत वेदों और उपनिषदों का निचोड़ है। वेद और उपनिषद्; भारतीय अध्यात्म विद्या, ब्रह्मविद्या या सृष्टि विद्या के स्रोत हैं। इस क्षेत्र में प्राचीन भारत के मनीषियों ने जो सशक्त और उदात्त चिन्तन किया था, उसका सार गीता है। किसी अन्य शास्त्र के खण्डन-मण्डन में गीता की रुचि नहीं। गीता की शैली और भाव दोनों मधुर रस से ओतप्रोत हैं, अतः वह मानव के हृदय की निकटतम भाषा है।"

श्रीमद् भगवद् गीता

प्रथम अध्याय

अर्जुन विषाद

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।।

भीष्म०-25/28

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।

भीष्म०-25/29

हे कृष्ण! युद्ध के मैदान में लड़ने के लिये खड़े अपने सम्बन्धियों को देखकर मेरे अंग शिथिल हो गये हैं। शरीर कांपने लगा है और मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।

भीष्म०-25/30

मेरे हाथ से गाण्डीव धनुष छूटा जा रहा है। शरीर में जलन होने लगी है। मुझे चक्कर सा आ रहा है। इसलिये खड़ा भी नहीं हो सकता हूँ।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भौगैर्जीवितेन वा।।

भीष्म०-25/32

हे कृष्ण! मुझे विजय नहीं चाहिये, न ही राज्य और सुख चाहिये। ऐसे राज्य से और भोगों तथा जीवन से क्या लाभ है?

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।

भीष्म०-25/33

हमें जिन लोगों के लिये राज्य, भोग और ऐश्वर्य सुख चाहिये। वही लोग यहाँ पर अपनी सम्पत्ति और प्राणों की परवाह न करके आ डटे हैं।

एतान् न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।।

भीष्म०-25/35

हे मधुसूदन! यदि ये लोग मुझे जान से भी मार डालना चाहें तो भी में इन्हें मारना नहीं चाहता, चाहे इन्हें मारने से मुझे तीनों लोकों का राज्य ही क्यों न मिल जाये, फिर पृथ्वी के लिये तो कहना ही क्या।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।।

भीष्म०–25/37

इसलिये हमें अपने बन्धुओं और धृतराष्ट्र के पुत्रों को नहीं मारना चाहिये। अपने सम्बन्धियों की हत्या करके हे कृष्ण! हम सुखी कैसे रहेंगे?

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।।

भीष्म०–25/43

कुल के नाश से सनातन काल से चले आ रहे कुलों के धर्म नष्ट हो जाते हैं। कुलधर्म नष्ट हो जाने पर सारे कुटुम्ब में पाप फैल जाता है।

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।।

भीष्म०–25/41

हे कृष्ण! पाप बढ़ जाने पर परिवार की बहू-बेटियाँ दूषित हो जाती हैं और स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न हो जाता है।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।

भीष्म०–25/42

वर्णसंकर से कुल का नाश करने वालों को और सारे कुल को नरक का दुःख भोगना पड़ता है। तथा उनके पूर्वज भी पिण्ड और जल न मिलने से अधोगति में जाते हैं।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।।

भीष्म०–25/43

वर्णसंकर फैलाने वाले इन दोषों से कुलघातियों के सनातन काल से निरन्तर चले आ रहे जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुमः।।

भीष्म०-25/44

हे जनार्दन! कुल का धर्म नष्ट हुए मनुष्यों को अनिश्चित समय तक नरक का दुःख भोगना पड़ता है ऐसा हम सुनते आये हैं।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद् राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।।

भीष्म०-25/45

अरे! धिक्कार है हमें जो इतना बड़ा पाप करने के लिये हम तैयार हैं और राज्य के सुख के लालच से अपने सम्बन्धियों को मारना चाहते हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।।

भीष्म०-25/46

यदि मुझ निहत्थे, सामना न करने वाले को हथियारों से लैस धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध में मार डालें तो वह मेरे लिये कहीं अच्छा होगा।

संजय : एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।।

भीष्म०-25/47

संजय ने धृतराष्ट्र को बताया कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण से ये बातें कहीं और शोक में डूबा हुआ अर्जुन धनुष बाण छोड़कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

दूसरा अध्याय–ज्ञान योग

श्रीकृष्ण : कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।

भीष्म०-26/2

अरे अर्जुन! तुम इस संकट की घड़ी में मोहग्रस्त क्यों हो रहे हो? तेरा यह आचरण सज्जनों जैसा नहीं है। इससे यश भी नहीं मिलेगा और न ही स्वर्ग।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।

भीष्म०-26/3

अर्जुन तू नपुंसक जैसा आचरण मत कर, यह आचरण तुझे शोभा नहीं देता। अपने हृदय की छोटी सी दुर्बलता को छोड़कर युद्ध के लिये खड़ा हो।

अर्जुन : **कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।**
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।

भीष्म०-26/4

हे मधुसूदन! मैं अपने पूजनीय भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के साथ युद्ध कैसे कर सकता हूँ?

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।

भीष्म०-26/5

इन पूज्य गुरुजनों की हत्या न करके भीख मांगकर पेट भरना अधिक अच्छा है बजाय इसके कि इनको मारकर खून में सने भोगों को भोगूं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

भीष्म०-26/7

मेरे हृदय में कायरता भर गई है और मैं नहीं जान पा रहा हूँ कि धर्म क्या है? इसलिये मैं शिष्य बनकर आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे निश्चित रूप से बताइये कि मेरे लिये श्रेयस्कर क्या है?

संजय : **एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।**
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।।

भीष्म०-26/9

नींद को जीतने वाले और शत्रुओं को कष्ट देने वाले अर्जुन ने इन्द्रियजयी श्रीकृष्ण से कहा कि मैं युद्ध नहीं करूंगा और यह कहकर चुप बैठ गया।

श्रीकृष्ण : **अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।**
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।

भीष्म०-26/11

अर्जुन! तू शोक न करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक कर रहा है और पण्डितों जैसी बातें कह रहा है। किन्तु बुद्धिमान् पुरुष मृत पुरुषों के लिये और जीवित मनुष्यों के लिये शोक नहीं करते।

नित्य आत्मा

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।

भीष्म०-26/12

अर्जुन ऐसी बात नहीं है कि मैं, तू या ये सारे राजा पहले कभी नहीं थे या आगे भविष्य में भी हम सब नहीं रहेंगे।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।

भीष्म०-26/13

जैसे इस शरीर में बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था क्रमशः आती है उसी तरह आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में चला जाता है। आत्मा के एक शरीर छोड़ने और दूसरा शरीर ग्रहण करने पर धैर्यशाली मनुष्य शोक या मोह नहीं करते हैं।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत।।

भीष्म०-26/18

यह जीवात्मा कभी नष्ट नहीं होता, यह सदा बना रहता है और इस आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। यह आत्मा जिन शरीरों में रहता है वे आत्मा के निकल जाने पर नष्ट हो जाते हैं। अतः अर्जुन तुम युद्ध करो।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।

भीष्म०-26/19

जो व्यक्ति इस आत्मा को मारने वाला समझता है या यह समझता है कि आत्मा मर जाता है। वे दोनों व्यक्ति ठीक बात नहीं जानते क्योंकि आत्मा न तो किसी को मारता है और न ही किसी से मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

भीष्म०-26/20

यह आत्मा न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है, न ही यह आत्मा पैदा होकर फिर पैदा होता है। आत्मा; कभी उत्पन्न नहीं होता, वह नित्य और सदा रहने वाला है। आत्मा; शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मरता है।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति किम्।।

भीष्म०-26/21

हे अर्जुन! जो इस आत्मा को नष्ट न होने वाला, नित्य, पैदा न होने वाला और किसी तरह खराब न होने वाला समझ जाता है वह व्यक्ति यह भी जान लेता है कि यह आत्मा न किसी को मारता है और न ही किसी को मरवाता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

भीष्म०-26/22

जैसे मनुष्य फटे-पुराने कपड़े उतार कर नये वस्त्र पहन लेता है उसी प्रकार यह आत्मा बुढ़ापे से जीर्ण शरीर छोड़कर नये शरीर में चला जाता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

भीष्म०-26/23

इस आत्मा को हथियार नहीं काट सकते, अग्नि जला नहीं सकता, पानी गला नहीं सकता और वायु भी आत्मा को सुखा नहीं सकती।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।।

भीष्म०-26/26

यदि तुम आत्मा को सदा जन्म लेने वाला और सदा मरने वाला मानते हो तब भी हे महाबाहु अर्जुन! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

भीष्म०-26/27

यदि आत्मा पैदा होने वाला और मरने वाला है तब भी जो प्राणी पैदा होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जो प्राणी मरता है उसका जन्म भी अवश्य होता है इसलिये इस निश्चित अटल नियम के होते तुझे शोक नहीं करना चाहिये।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।।

भीष्म०-26/28

हे अर्जुन! सभी प्राणी अपने जन्म से पहले दिखाई नहीं देते, जन्म लेने पर वे दीखने लगते हैं किन्तु मर जाने पर फिर नहीं दिखाई देते, इसलिये इस हालत में शोक करना ठीक नहीं।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।

भीष्म०–26/29

कोई व्यक्ति इस आत्मा को आश्चर्य के साथ देखता है, कोई चकित होकर इसका वर्णन करता है और कोई व्यक्ति आश्चर्य में डूबकर इस आत्मा के बारे में सुनता है किन्तु सुनकर भी इसे समझ नहीं पाता।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।

भीष्म०–26/30

हे भारतवंशी अर्जुन! यह आत्मा सभी प्राणियों के शरीरों में अवध्य है अतः तुम्हें इन सब प्राणियों के लिये शोक नहीं करना चाहिये।

क्षत्रिय का धर्म

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।।

भीष्म०–26/31

अपने धर्म को देखकर भी तुम्हें डांवाडोल नहीं होना चाहिये क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्म युद्ध से बढ़कर श्रेयस्कर कोई वस्तु नहीं होती।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।

भीष्म०–26/32

हे पृथापुत्र अर्जुन! खुले हुए स्वर्ग के द्वार जैसा यह युद्ध तुम्हें बिना प्रयत्न मिल गया है। भाग्यवान् क्षत्रियों को ही ऐसा युद्ध मिलता है।

अथ चेत् त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवापस्यसि।।

भीष्म०–26/33

यदि तू इस धर्मयुद्ध को नहीं करेगा तो अपना धर्म और यश गंवा कर पाप ही कमायेगा।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।

भीष्म०-26/34

लोग तेरी युगों तक निन्दा करते रहेंगे। माननीय पुरुषों के लिये अपयश मरने से भी बुरा होता है।

भयाद् रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।

भीष्म०-26/35

महारथी योद्धा यही मानेंगे कि अर्जुन युद्ध से डरकर भाग गया। अब तक जो लोग तेरा सम्मान करते थे तू उनकी नजरों में गिर जायेगा।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।।

भीष्म०-26/36

तेरे वैरी तेरी निन्दा में न कहने योग्य तरह-तरह की बातें बनायेंगे। वे कहेंगे कि अर्जुन कायर था, यह सुनकर कितना दुःख होगा?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

भीष्म०-26/37

युद्ध में मरकर तुझे स्वर्ग मिलेगा। युद्ध जीतने पर तू पृथ्वी का भोग करेगा। अतः कुन्ती पुत्र अर्जुन! तुम लड़ने का पक्का निश्चय करके युद्ध के मैदान में खड़े हो जाओ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

भीष्म०-26/38

सुख-दुःख, हानि-लाभ और हार-जीत को एक जैसा मानकर तुम युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। युद्ध करने पर तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

भीष्म०-26/47

अर्जुन! कर्म करना ही तेरा कर्तव्य है। किसी कर्म के फल की इच्छा कभी नहीं रखनी चाहिये। कर्मफल की इच्छा के कारण तुम्हें कर्म करने से विमुख नहीं होना चाहिये।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

भीष्म०-26/48

हे धनञ्जय! तुम आसक्ति को छोड़कर कर्मयोग के अनुसार कर्म करो। किसी कर्म की सफलता या असफलता से अपना मन सुखी या दुःखी मत करो। जिस पुरुष का मन सदा एक सा रहता है वही योग का पालन करता है।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद् धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फल हेतवः।।

भीष्म०-26/49

हे धनञ्जय! इस समत्वरूप बुद्धियोग की तुलना में सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ है। तुम बुद्धि को सदा एकरस बनाये रखने का प्रयत्न करो क्योंकि कर्म फल चाहने वाले व्यक्ति निम्न कोटि के होते हैं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसुकौशलम्।।

भीष्म०-26/50

समबुद्धि वाला मनुष्य इस संसार में पाप और पुण्य से ऊपर उठ जाता है अतः तुम इस समत्वरूप बुद्धियोग का अभ्यास करो क्योंकि कर्म करने की कुशल युक्ति ही वास्तव में कर्मयोग है।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्म बन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

भीष्म०-26/51

समत्व बुद्धि वाले ज्ञानी लोग कर्म से उत्पन्न फल की इच्छा का त्याग करके जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और निर्विकार परमपद मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

स्थितप्रज्ञ

श्रीकृष्ण : **प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।**
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

भीष्म०-26/55

हे अर्जुन! जब मनुष्य अपने मन की सारी इच्छाएँ छोड़ देता है और अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहता है वह व्यक्ति स्थितप्रज्ञ होता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थिधीर्मुनिरुच्यते।।

भीष्म०-26/56

दुःख आने पर जो दुःखी नहीं होता, सुखों की जिसे चाह नहीं रहती, जिसके मन में राग, डर और गुस्सा नहीं रहता वह स्थिर बुद्धि होता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

भीष्म०-26/57

जो व्यक्ति सभी परिस्थितियों में उदासीन रहता है, शुभ या अशुभ वस्तु प्राप्त कर न तो प्रसन्न होता है और न ही दुःखी। ऐसा व्यक्ति स्थिर मति होता है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

भीष्म०-26/58

जैसे कछुआ अपने सब अंगों को समेट लेता है वैसे ही जब व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को उनके भोग्य विषयों से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

भीष्म०-26/59

उपवास करने से पुरुष के विषय तो छूट जाते हैं किन्तु उनमें आसक्ति नहीं छूटती। परमात्मा की अनुभूति हो जाने पर वह आसक्ति भी छूट जाती है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।

भीष्म०-26/60

हे अर्जुन! बुद्धिमान व्यक्ति के प्रयत्न करने के बावजूद उसकी इन्द्रियाँ मन को विषयों में लगा ही देती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

भीष्म०-26/61

इन सभी इन्द्रियों को वश में करके मेरा चिन्तन करे। जिस पुरुष की इन्द्रियां उसके वश में रहती हैं उसी की बुद्धि भी स्थिर हो जाती है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।

भीष्म०-26/62

जब मनुष्य भोगों के बारे में सोचता है तो उन भोगों के प्रति उसकी रुचि हो जाती है। रुचि होने पर उन भोगों की इच्छा पैदा हो जाती है और भोग पूरी होने की इच्छा में बाधा पड़ने पर गुस्सा आ जाता है।

क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

भीष्म०-26/63

क्रोध से बुद्धि मूढ़ हो जाती है और बुद्धि के मूढ़ हो जाने पर स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मरणशक्ति खराब होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जाने पर मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है।

रागद्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।

भीष्म०-26/64

अपने वश में किये हुए अन्तःकरण वाला पुरुष राग-द्वेष से रहित होकर विषयों का इन्द्रियों से उपभोग करता है। ऐसे व्यक्ति का अन्तःकरण प्रसन्न बना रहता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

भीष्म०-26/65

अन्त:करण प्रसन्न होने पर व्यक्ति के सारे दु:ख दूर हो जाते हैं और मन में प्रसाद होने पर व्यक्ति की बुद्धि जल्दी ही स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तरस्य कुतः सुखम्।।

भीष्म०-26/66

इन्द्रियों और मन को वश में न रखने वाले व्यक्ति की बुद्धि स्थिर नहीं रहती, अस्थिर बुद्धि वाला मनुष्य मन एकाग्र नहीं कर सकता। मन एकाग्र न होने पर शान्ति नहीं मिलती और अशान्त मन वाले को सुख नहीं मिलता।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।

भीष्म०-26/67

विषयों में भटकती हुई इन्द्रियों के पीछे जब मन भागता है तो व्यक्ति की बुद्धि उसी तरह डांवाडोल होने लगती है जैसे समुद्र में हवा के झोंकों से नाव।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

भीष्म०-26/68

इसलिये हे महाबाहु अर्जुन! जिस व्यक्ति ने इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विषयों से अपनी इन्द्रियों को पूरी तरह हटाकर अपने वश में कर लिया है उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

भीष्म०-26/69

जो सब प्राणियों के लिये रात की तरह है उस नित्य परमानन्द को प्राप्त करने के लिये संयमी पुरुष प्रयत्न करता है। सारे प्राणी इस दिखाई देने वाले संसार में व्यवहार करते हैं संयमी के लिये उसका कोई महत्त्व नहीं रहता। अध्यात्म तत्त्व दिन है और भौतिक जगत् के विषय भोग रात्रि हैं। प्राणी अपने स्वभाव के अनुसार प्रायः अध्यात्म-जगत् में सोते रहते हैं, यह उनकी रात है पर संयमी पुरुष अध्यात्म जगत् में जागता है और संसार के भोगों के प्रति उदासीन रहता है अर्थात् संसार उसके लिये रात बन जाता है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

भीष्म०-26/70

जैसे समुद्र में नदियों का पानी सदा भरते रहने पर भी समुद्र में कोई हलचल नहीं होती वैसे ही जिस व्यक्ति के मन को विषय अपनी ओर नहीं खींच पाते उसे ही शान्ति मिलती है। कामनाओं के वश में पड़े व्यक्ति को नहीं।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।

भीष्म०-26/71

जो व्यक्ति सभी तरह की इच्छाओं का त्याग करके ममतारहित, अहंकाररहित और इच्छारहित होकर संसार में रहता है उसे शान्ति प्राप्त होती है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थिरत्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।

भीष्म०-26/72

हे अर्जुन! यह स्थिति ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की है। इस ब्राह्मी स्थिति को पाकर मनुष्य फिर संसार, परिवार और भोगों के फेर में नहीं पड़ता। यदि मनुष्य को जीवन के अन्तिम समय में भी यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तो उसे ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् मुक्ति मिल जाती है।

तीसरा अध्याय—कर्मयोग

श्रीकृष्ण : न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

भीष्म०-27/5

कोई भी मनुष्य कभी भी क्षणमात्र के लिये भी कोई काम किये बिना नहीं रहता, क्योंकि सभी मनुष्य प्रकृति से पैदा हुए सत्व, रज, तम इन गुणों के प्रभाव से कोई न कोई कार्य करते ही रहते हैं।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

भीष्म०-27/6

जो मूर्ख व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को जबर्दस्ती रोककर इन्द्रियों के रूप, रस,

गन्ध आदि विषयों के बारे में सोचता रहता है वह मनुष्य मिथ्याचारी या ढोंगी कहलाता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।

भीष्म०-27/7

हे अर्जुन! जो मनुष्य अपने मन से इन्द्रियों को वश में करके अपनी इन्द्रियों से कर्म करता है किन्तु इन कर्मों के फल में आसक्ति या इच्छा नहीं रखता वही श्रेष्ठ कर्मयोगी होता है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।

भीष्म०-27/8

अर्जुन! तू अवश्य ही कर्म कर, क्योंकि कोई काम न करने की अपेक्षा काम करना कहीं अच्छा है। यदि तूने काम करना ही छोड़ दिया तो तेरे शरीर का निर्वाह भी नहीं हो सकेगा।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।

भीष्म०-27/9

यज्ञ की अर्थात् परोपकार की भावना से किये जाने वाले कामों के सिवाय स्वार्थ की भावना से किये जाने वाले काम संसार के बन्धन में डाल देते हैं इसलिये अर्जुन तुम फल की इच्छा के बिना कर्म करो।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

भीष्म०-27/19

इसलिये हे अर्जुन! तुम आसक्ति, इच्छा या कर्मफल की कामना छोड़ कर अपने करने योग्य कर्मों को सदा करते रहो। आसक्तिरहित कर्तव्य-कर्म करने से मनुष्य; परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि।।

भीष्म०-27/20

राजा जनक आदि भी आसक्ति रहित कर्म करके परमसिद्धि प्राप्त कर पाये थे। लोक संग्रह को ध्यान में रखते हुए भी तुम्हें कर्म करने ही चाहिये। मनुष्य को अपनी परिस्थिति के अनुसार सभी प्राणियों के निर्वाह के लिये अपना कर्तव्य करना ही लोक संग्रह कहलाता है। परोपकार के काम सदा करने चाहियें।

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

भीष्म०-27/21

श्रेष्ठ पुरुष जो काम या जैसा आचरण करते हैं दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करने लगते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति जिस काम को उचित बतला देता है अन्य लोग भी उसी के अनुसार काम करने लगते हैं।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद् विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोक संग्रहम्।।

भीष्म०-27/25

हे अर्जुन! कर्मों में आसक्त अज्ञानी लोग जिस तरह मन लगाकर कोई काम करते हैं उसी तरह ज्ञानी पुरुष को कामना का त्याग करके कर्म करने चाहियें। इस तरह आसक्तिरहित कर्म करके ज्ञानी लोकसंग्रह करना चाहता है।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्।।

भीष्म०-27/26

ज्ञानी पुरुष को कामों में लगे हुए अज्ञानी लोगों के मन में भ्रम पैदा नहीं करना चाहिये, किन्तु स्वयं भी उनके साथ सभी कर्तव्य कर्म करे।

प्रकृतेः क्रियमाणि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते।।

भीष्म०-27/27

सत्य तो यही है कि प्रकृति के सत्व, रज, तम इन गुणों के कारण संसार के सारे काम किये जा रहे हैं किन्तु अहंकारी मूर्ख मनुष्य अपने को कर्ता मानता है।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

भीष्म 27/30

मुझ परमात्मा में अपने कर्म अर्पित करके और हृदय में मेरा ध्यान करके कर्मफल की आशा और ममता छोड़कर निश्चिन्त होकर तू युद्ध कर।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।

भीष्म०-27/33

ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वभाव के अनुसार ही चेष्टा करता है। सभी प्राणी प्रकृति के अधीन रहते हैं, इसलिये दुराग्रह से कोई लाभ नहीं होता।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

भीष्म०-27/34

प्रत्येक इन्द्रिय के राग और द्वेष अर्थात् उनके आकर्षण और द्वेष नियत हैं। समझदार मनुष्य को इन राग-द्वेषों में नहीं फंसना चाहिये क्योंकि ये राग-द्वेष कल्याण मार्ग के शत्रु हैं।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुतिष्ठतात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

भीष्म०-27/35

अपने स्वभाव के कारण जिसे जो कर्म करना चाहिये वही उसका स्वधर्म है और उसके लिये अच्छा है। उसी का पालन करना चाहिये। चाहे उसमें कुछ कमी भी हो और दूसरे के लिये निश्चित कर्म करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अपने कर्तव्य कर्म का पालन करते हुए मरना भी अच्छा है किन्तु दूसरे के कर्म करने में संकट है।

अर्जुन : अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

भीष्म०-27/36

हे कृष्ण! मनुष्य न चाहते हुए भी जबर्दस्ती लगाये हुए की तरह किस से प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है?

कृष्ण : काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।

भीष्म०-27/37

रजोगुण से पैदा हुआ यह काम और क्रोध है। यह काम; भोगों से कभी शान्त नहीं होता, यह बड़ा पापी है, इसे तू अपना शत्रु समझ।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।

भीष्म०-27/38

जैसे आग; धुएं से और दर्पण, मैल से ढक जाता है तथा जेर से गर्भ ढका रहता है उसी प्रकार ज्ञान, काम से ढका रहता है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।

भीष्म०-27/39

अर्जुन! अग्नि की भांति कभी तृप्त न होने वाले ज्ञानियों के सदा शत्रु काम से ज्ञान ढका हुआ है।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।

भीष्म०-27/40

यह काम; इन्द्रियों, मन और बुद्धि में रहता है। इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों से ज्ञान को ढक कर यह काम जीवात्मा को मोहित करता है।

तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

भीष्म०-27/41

इसलिये अर्जुन! तू सबसे पहले अपनी इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान को नष्ट करने वाले इस पापी काम को मार डाल।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

भीष्म०-27/42

इन्द्रियां हमारे स्थूल शरीर की तुलना में सूक्ष्म हैं। इन्द्रियों से भी सूक्ष्म मन है। मन से भी सूक्ष्म बुद्धि है और बुद्धि से भी सूक्ष्म आत्मा है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

भीष्म०-27/43

इसलिये आत्मा को बुद्धि से सूक्ष्म और शक्तिशाली जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके तू इस दुर्जय काम रूपी शत्रु को मार डाल।

चौथा अध्याय–ज्ञान, कर्म, संन्यास योग

श्रीकृष्ण : **इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।**
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

भीष्म०–28/1

मैंने इस अविनाशी योग का उपदेश सूर्य को दिया था। सूर्य ने इस योग का ज्ञान मनु को दिया और मनु ने राजा इक्ष्वाकु को बताया।

अर्जुन : **अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।**
कथमेतद् विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।

भीष्म०–28/4

आपका जन्म तो कुछ ही वर्ष पहले हुआ है किन्तु सूर्य का जन्म तो सृष्टि के प्रारम्भ में ही हो चुका था, इसलिये मैं कैसे समझूं कि आपने सृष्टिके आरम्भ में सूर्य को यह ज्ञान दिया था।

श्रीकृष्ण : **बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

भीष्म०–28/5

अर्जुन! मेरे और तेरे इससे पहले भी अनेक जन्म हो चुके हैं। मुझे उन सब जन्मों का पता है किन्तु तू उनके बारे में नहीं जानता।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

भीष्म०–28/6

मैं अजन्मा और अविनाशी होने पर भी तथा प्राणियों का ईश्वर होने पर भी, अपनी प्रकृति को वश में करके अपनी माया से जन्म लेता हूँ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।।

भीष्म०–28/7

हे भारत! जब-जब इस जगत् में धर्म का नाश होता है और अधर्म बढ़ जाता है तब मैं अपने को प्रकट करता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

भीष्म०-28/8

सज्जनों की रक्षा करने के लिये, दुष्टों को नष्ट करने के लिये और धर्म की स्थापना के लिये मैं युग-युग में प्रकट होता रहता हूँ।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।

भीष्म०-28/14

मुझे कर्म लिप्त नहीं करते न ही कर्मों के फल को मैं चाहता हूँ। जो व्यक्ति मुझे इस रूप में जान लेता है वह भी कर्मों के बन्धन में नहीं बंधता।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।

भीष्म०-28/15

पहले मोक्ष चाहने वालों ने भी यह तत्त्व जानकर कर्म किये हैं अतः तू भी पूर्वजों द्वारा किये जाने वाले कर्म कर।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।

भीष्म०-28/19

जिस व्यक्ति के सभी कर्म इच्छा और संकल्प के बिना शुरू होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञान की अग्नि से नष्ट हो गये हैं उस व्यक्ति को ज्ञानी लोग पण्डित कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः।।

भीष्म०-28/20

जो पुरुष कर्मफल की इच्छा का सर्वथा त्याग करके परमात्मा की शरण में सदा तृप्त रहता है और इस संसार पर निर्भर नहीं रहता वह कर्म करता हुआ भी वास्तव में कोई सांसारिक कर्म नहीं करता।

निरीशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्विषम्।।

भीष्म०-28/21

किसी प्रकार की आशा न करने वाला, मन और बुद्धि को नियंत्रण में रखने वाला और सभी भोग सामग्री को छोड़ देने वाला, शरीर के लिये आवश्यक कर्म करता हुआ किसी पाप को नहीं कमाता।

यदृच्छलाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

भीष्म०-28/22

बिना किसी इच्छा के अपने आप प्राप्त हुए पदार्थों से सन्तुष्ट रहने वाला, सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से उठा हुआ, ईर्ष्या से रहित और किसी सफलता या असफलता में समान रहने वाला कर्म करके भी बंधता नहीं है।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।

भीष्म०-28/23

जिसका लगाव सर्वथा समाप्त हो गया है, जो अपनी देह के प्रति ममता से भी मुक्त हो गया है, जिसका चित्त सदा परमात्मा के ज्ञान में लगा रहता है ऐसे व्यक्ति के यज्ञ सम्पादन के लिये जाने वाले कर्म पूरी तरह विलीन हो जाते हैं।

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

भीष्म०-28/33

हे अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ होता है। सारे कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

भीष्म०-28/34

उस ज्ञान को तू तत्त्वज्ञानियों को प्रणाम करके, उनसे प्रशन करके और उनकी सेवा करके समझ। तत्त्वदर्शी तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।

भीष्म०-28/37

अर्जुन! जैसे प्रचण्ड अग्नि ईंधन को जला डालती है वैसे ही ज्ञानाग्नि से सम्पूर्ण कर्म भस्म हो जाते हैं।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

भीष्म०–28/38

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है। कर्मयोग से शुद्धान्तःकरण हुआ व्यक्ति उस ज्ञान को अपने अन्तःकरण में स्वयं जान लेता है।

पांचवा अध्याय–कर्म संन्यास योग

अर्जुन : संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।

भीष्म०–29/1

हे कृष्ण! पहले आप कर्म न करने की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनों में से जो कल्याणकारी हो उसे आप निश्चित रूप से बतायें।

श्रीकृष्ण : संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।।

भीष्म०–29/2

कर्म संन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारी हैं किन्तु इन दोनों में से कर्म संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग सुगम होने के कारण श्रेष्ठ है।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते।।

भीष्म०–29/3

हे महाबाहु अर्जुन! जो व्यक्ति न तो किसी से द्वेष करता है और न ही किसी से कोई आशा करता है ऐसा व्यक्ति सदा संन्यासी ही है क्योंकि ऐसा कर्मयोगी राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित होकर सुखपूर्वक संसार बन्धन से छूट जाता है।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।

भीष्म०–29/6

हे महाबाहु! कर्मयोग के बिना संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने

वाले सभी कर्मों में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है। किन्तु भगवत्स्वरूप का ध्यान करने वाला कर्मयोगी जल्दी ही परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

भीष्म०–29/7

जिसका मन वश में है, जो जितेन्द्रिय और शुद्ध हृदय वाला है तथा सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मा ही जिसका आत्मा है ऐसा कर्मयोगी कर्मों से नहीं बंधता।

नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपञ्श्वसन्।।

भीष्म०–29/8

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।।

भीष्म०–29/9

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी देखता, सुनता, छूता, सूंघता, खाता, चलता, सोता, श्वास लेता, बोलता, मल–मूत्र करता, ग्रहण करता, पलकें झपकता हुआ भी समझता है कि इन्द्रियां अपना–अपना काम कर रही हैं–ऐसा मान कर वह यही समझे कि वह स्वयं कुछ नहीं करता।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।

भीष्म०–29/10

जो पुरुष अपने सब कर्म ब्रह्म को अर्पित करके और आसक्ति छोड़कर करता है उसे पाप नहीं लगते जैसे कमल का पत्ता जल में रहने पर भी जल से अलग रहता है।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये।।

भीष्म०–29/11

कर्मयोगी, शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से आसक्ति छोड़कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।।

भीष्म०-29/12

कर्मयोगी, कर्मफल का त्याग करके परमात्म प्राप्ति रूपी शान्ति पाता है, किन्तु सकाम पुरुष कर्मफल में आसक्त होने के कारण बंध जाता है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् न कारयन्।।

भीष्म०-29/13

जितेन्द्रिय पुरुष सांख्ययोग का आचरण कर मन से सब कर्मों का त्याग कर देता है। वह यही मानता है कि वह कोई काम नहीं कर रहा है और न करा रहा है। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति नौ द्वारों वाले इस शरीर में आनन्दपूर्वक परमात्मस्वरूप में स्थित रहता है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।

भीष्म०-29/14

परमेश्वर मनुष्यों में न तो कर्त्तापन को, न कर्मों को और न ही कर्मों के फलों को उत्पन्न करते हैं किन्तु प्रकृति के गुणों से ही संसार का व्यवहार चल रहा है।

नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

भीष्म०-29/15

सर्वव्यापी परमेश्वर किसी के पाप कर्म को या शुभकर्म को ग्रहण नहीं करते हैं। अज्ञान ने ज्ञान को ढका हुआ है इसीलिये प्राणी भ्रम में पड़े रहते हैं।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।।

भीष्म०-29/16

जिनका अज्ञान परमात्मा के तत्त्वज्ञान से नष्ट हो जाता है उनका ज्ञान उस परमात्मा को सूर्य के समान प्रकाशित कर देता है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

भीष्म०-29/18

तत्त्वज्ञानी व्यक्ति विद्या और नम्रता से युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते, और चाण्डाल के प्रति समान दृष्टि रखते हैं।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

भीष्म०-29/19

जिनका मन समत्व में स्थित हो जाता है वे इसी जन्म में संसार को जीत लेते हैं। ब्रह्म भी दोषरहित और सब प्राणियों के प्रति समान भाव रखते हैं इसलिये समत्व भाव वाले व्यक्ति ब्रह्म के साथ अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।।

भीष्म०-29/20

जो व्यक्ति प्रिय पदार्थ को पाकर प्रसन्न नहीं होता और अप्रिय वस्तु पाकर उद्विग्न नहीं होता वह स्थिरमति, संशयरहित और ब्रह्म को जानने वाला व्यक्ति परब्रह्म में ही स्थित रहता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

भीष्म०-29/22

इन्द्रियों और विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न भोग अन्त में दुःख ही देते हैं और प्रारम्भ होकर नष्ट हो जाते हैं अतः पण्डित इनमें मन नहीं लगाता।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।

भीष्म०-29/23

जो व्यक्ति अपना शरीर छोड़ने से पहले इसी देह में काम और क्रोध से उत्पन्न आवेगों को नियंत्रित कर सकता है वही व्यक्ति वास्तव में सुखी होता है और वही योगी भी होता है।

कामक्रोध वियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।

भीष्म०-29/26

काम और क्रोध से रहित, मन पर नियन्त्रण रखने वाले ज्ञानी पुरुषों को सभी ओर ब्रह्म की सत्ता ही प्रकट दीखती है।

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।।

भीष्म०-29/27

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभय क्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।।

भीष्म०-29/28

बाहर के अर्थात् संसार के भोग-ऐश्वर्यों के बारे में न सोचता हुआ, अपने नेत्रों की दृष्टि भौहों के बीच माथे पर टिकाकर, अपने श्वास और प्रश्वास को शान्त करके और इतना सूक्ष्म करके कि हल्का श्वास-प्रश्वास नाक में ही चलता रहे, अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि को वश में रखने वाला, किसी भी प्रकार की कामना, भय और क्रोध से रहित मोक्ष के लिये सदा प्रयत्नशील और मौन रहने वाला विवेकशील पुरुष सदा मुक्त ही होता है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

भीष्म०-29/29

सभी प्रकार के यज्ञों और तपस्याओं को भोगने वाले, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के अधिपति और सभी प्राणियों के मित्र मुझ परब्रह्म को जानकर ज्ञानी पुरुष परम शान्ति लाभ करता है।

छठा अध्याय-ध्यान योग

श्रीकृष्ण : योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।

भीष्म०-30/10

योगी को अकेले एकान्त स्थान में रहकर निरन्तर योगाभ्यास करना चाहिये। उसे अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये, उसे किसी भी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिये और न ही भोग पदार्थों को इकट्ठा करना चाहिये।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।

भीष्म०-30/11

योगाभ्यासी को साफ-सुथरे स्थान पर अपना आसन बिछाना चाहिये। उसका आसन बहुत ऊँचा या बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। आसन कुशा का होना चाहिये, इस आसन के ऊपर मृगचर्म बिछाना चाहिये और मृगछाला के ऊपर सूती कपड़ा बिछा होना चाहिये।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये।।

भीष्म०-30/12

इस आसन पर बैठकर अपने मन और इन्द्रियों की सभी क्रियाएँ रोककर मन एकाग्र करना चाहिये और अपने अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये योगाभ्यास करना चाहिये।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

भीष्म०-30/13

अपने शरीर के धड़, सिर और गर्दन को एक सीध में और स्थिर रखकर अपनी नाक के अगले भाग को देखते रहना चाहिये और आंखें इधर-उधर नहीं घुमानी चाहियें।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनःसंयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।

भीष्म०-30/14

योगाभ्यासी का मन शान्त रहना चाहिये, उसके हृदय में भय नहीं होना चाहिये, उसे ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये और अपने मन को वश में रखकर सदा मेरे स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।

भीष्म०-30/15

अपने मन को वश में करके सदा मुझ में मन लगाने वाले योगी को मुझमें रहने वाली परमानन्द रूप शान्ति मिलती है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।

भीष्म०-30/16

हे अर्जुन! बहुत अधिक खाने वाला या बिल्कुल भी न खाने वाला, बहुत सोने वाला या तनिक भी न सोने वाला योगाभ्यास नहीं कर सकता।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

भीष्म०-30/17

सन्तुलित आहार-विहार करने वाला, अपने कामकाज में अति न करने वाला और समय पर सोने जागने वाला व्यक्ति योग साधना कर सकता है।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।।

भीष्म०-30/18

वश में हुआ मन जब परमात्म चिन्तन में लगा रहता है और मन में किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं उठती तब योगाभ्यासी का मन योग में लगता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।।

भीष्म०-30/19

वायुरहित स्थान में रखे हुए दीप की शिखा जैसे तनिक भी नहीं कांपती उसी प्रकार परमात्मा के चिन्तन में लगा हुआ योगी का मन भी इधर-उधर की बातों में नहीं भटकता।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।

भीष्म०-30/20

योगाभ्यास से जब चित्त रुककर परमात्म चिन्तन में लग जाता है, मन की ऐसी स्थिति आने पर बुद्धि परमात्मा का साक्षात् करती हुई इसी स्थिति में सन्तुष्ट बनी रहती है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।

भीष्म०-30/21

परमात्म साक्षात्कार से उत्पन्न यह सुख संसार के सभी सुखों से श्रेष्ठ है। इस सुख को इन्द्रियों से अनुभव नहीं किया जा सकता। केवल बुद्धि ही यह सुख ग्रहण

कर सकती है। इस परमसुख की अनुभूति होने पर योगी परमात्मस्वरूपदर्शन से विचलित नहीं होता।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

भीष्म०-30/22

इस परमात्मदर्शन का लाभ पाकर योगी किसी और लाभ को इससे श्रेष्ठ नहीं मानता। परमात्म साक्षात्कार की अवस्था में रहने वाला योगी बड़े से बड़े दुःख से भी परेशान नहीं होता।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

भीष्म०-30/23

ऐसा योग दुःख के संयोग से बिल्कुल अलग है अर्थात् इस योगाभ्यास में दुःख का लेशमात्र भी नहीं है। इस योग का अभ्यास उत्साहपूर्ण चित्त से अवश्य करना चाहिये।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।

भीष्म०-30/24

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।

भीष्म०-30/25

मन के संकल्प-विकल्पों से पैदा होने वाली सभी प्रकार की इच्छाओं को पूरी तरह त्याग कर और अपने मन से ही अपनी आंख, कान आदि इन्द्रियों को सभी ओर से अच्छी तरह रोक कर तथा धैर्य के साथ बुद्धि के द्वारा मन को धीरे-धीरे परमात्मा में लगाये और कुछ भी न सोचे।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

भीष्म०-30/26

मन बहुत चंचल है और किसी एक जगह नहीं ठहरता है। यह मन जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ से इसे वश में करते रहना चाहिये।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।।

भीष्म०-30/28

पापरहित योगी इस प्रकार अपने मन और आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक ब्रह्म की अनुभूति का अतिशय आनन्द प्राप्त करता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

भीष्म०-30/29

योग से युक्त आत्मा वाला योगी सभी प्राणियों को समान भाव से देखता है। वह अपने आत्मा को सभी प्राणियों में और सभी प्राणियों के आत्मा को अपने आत्मा में देखता है।

अर्जुन : योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्।।

भीष्म०-30/33

हे मधुसूदन! आपने जो समत्वभाव का यह योग बताया उसका अभ्यास नहीं किया जा सकता क्योंकि मन बड़ा चंचल है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

भीष्म०-30/34

हे कृष्ण! मन बड़ा चंचल, बहुत तंग करने वाला, बलवान और दुराग्राही है। इसे वश में करना उसी प्रकार बहुत कठिन है जैसे वायु को पकड़ना।

श्रीकृष्ण : असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

भीष्म०-30/35

अर्जुन! तुम ठीक ही कहते हो कि मन बड़ा चंचल है और इसे रोकना बड़ा कठिन है। किन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

भीष्म०-30/36

जिसके मन में संयम नहीं है ऐसा व्यक्ति योगाभ्यास नहीं कर सकता, किन्तु संयमित मन वाला व्यक्ति साधन से योग का फल प्राप्त कर सकता है यह मेरा विचार है।

अर्जुन : अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।

भीष्म०-30/37

हे कृष्ण! जो व्यक्ति संयमी नहीं है किन्तु जिसकी श्रद्धा योग में है और जिसका मन योग से विचलित हो गया है ऐसा व्यक्ति योग का फल प्राप्त न करके किस अवस्था में जाता है?

कच्चिनोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणि पथि।।

भीष्म०-30/38

ऐसा योग भ्रष्ट व्यक्ति ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग से भटककर उसी तरह नष्ट तो नहीं हो जाता जैसे बादल का टुकड़ा हवा के थपेड़े खाकर नष्ट हो जाता है।

श्रीकृष्ण : पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।।

भीष्म०-30/40

हे अर्जुन! योग भ्रष्ट व्यक्ति का इस जन्म में या अगले जन्म में नाश नहीं होता। कल्याण मार्ग पर चलने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

भीष्म०-30/41

योगभ्रष्ट व्यक्ति पुण्य करने वालों के स्वर्गादि लोकों में जाकर वहां अनेक वर्ष निवास करने के बाद सज्जनों और सम्पन्न व्यक्तियों के घर जन्म लेता है।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।

भीष्म०-30/42

अथवा योगभ्रष्ट व्यक्ति बुद्धिमान योगियों के कुल में ही जन्म लेता है, किन्तु ऐसा जन्म इस संसार में बड़ा दुर्लभ होता है।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

भीष्म०–30/43

हे अर्जुन! नया जन्म लेने पर योगभ्रष्ट व्यक्ति पहले शरीर में संचित योग के संस्कारों को जान लेता है और फिर योग मार्ग पर चल पड़ता है।

प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

भीष्म०–30/45

प्रयत्न करता हुआ योगी पिछले अनेक जन्मों के योगाभ्यास के संस्कारों से पापरहित हुआ परमगति को प्राप्त करता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन।।

भीष्म०–30/46

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, योगी ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है, और योगी सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है अतः अर्जुन तू योगी बन।

सातवां अध्याय–ज्ञान-विज्ञान योग

श्रीकृष्ण : भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

भीष्म०–31/4

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।

भीष्म०–31/5

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ रूपों में विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकार की मेरी जड़ प्रकृति या अपरा प्रकृति है। इससे दूसरी मेरी प्रकृति परा है जो चेतन है और जिससे यह जीव जगत् तथा सारा संसार धारण किया गया है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।

भीष्म०–31/6

मेरी इन जड़ और चेतन प्रकृतियों से सारे प्राणी उत्पन्न होते हैं। मैं सारे संसार का उत्पत्ति स्थान हूँ तथा मैं ही इसे नष्ट कर डालता हूँ।

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।

भीष्म०-31/7

हे अर्जुन! मेरे सिवाय इस सृष्टि का और कोई कारण नहीं है। यह सारा जगत् मुझ में वैसे ही पिरोया हुआ है जैसे तागे में मणियाँ पिरोई रहती हैं।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।।

भीष्म०-31/10

हे अर्जुन! तुम मुझे सभी प्राणियों का सनातन बीज जानो। मैं बुद्धिमान व्यक्तियों की बुद्धि हूँ और तेजस्वी पुरुषों का तेज हूँ।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।।

भीष्म०-31/13

सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के भावों से यह सारा संसार मोहित है इसलिये इन तीन गुणों से परे मुझ अविनाशी को नहीं जानता।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

भीष्म०-31/14

तीन गुणों वाली यह मेरी अलौकिक माया है, इससे निकलना बड़ा कठिन है किन्तु जो मेरी शरण में आ जाते हैं वे इस माया को पार कर लेते हैं।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

भीष्म०-31/16

भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन! उत्तम और शुभ कर्म करने वाले चार तरह के लोग मेरा भजन करते हैं–दुःखी, सांसारिक ऐश्वर्य चाहने वाले, जिज्ञासु और ज्ञानी।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिदं स महात्मा सुदुर्लभः।।

भीष्म०-31/19

अनेक जन्मों के बाद ज्ञानी पुरुष मुझे प्राप्त कर पाता है। संसार में सब कुछ वासुदेव ही है ऐसा समझने वाला महात्मा विरला ही मिलता है।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।।

भीष्म०-31/20

तरह-तरह की कामनाओं से जिन लोगों का ज्ञान नष्ट हो गया है ऐसे लोग अन्य देवताओं की शरण में जाते हैं। दूसरे देवताओं को पूजने का कारण उन लोगों का स्वभाव होता है जो पहले जन्मों के कर्मों के संस्कारों के कारण बनता है।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।

भीष्म०-31/21

जो भक्त अपनी कामना से जिस देवता को भी श्रद्धापूर्वक पूजना चाहता है उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर कर देता हूँ।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्।।

भीष्म०-31/22

वह भक्त उस देवता के प्रति श्रद्धा से भरकर उस देवता का पूजन करता है। वह उस देवता के द्वारा अपनी कामनाओं की पूर्ति भी करता है किन्तु ये कामनाएँ मैं ही वास्तव में पूरी करता हूँ।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।।

भीष्म०-31/23

किन्तु कम समझ वालों को मिलने वाला उनकी कामनाएँ पूरी होने का फल नाशवान् होता है। देवों को पूजने वाले देवों को प्राप्त होते हैं और मुझे पूजने वाले मुझे।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।

भीष्म०-31/24

मूर्ख लोग मेरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी परमस्वरूप को न जानकर मुझ अव्यक्त को अन्य मनुष्यों की तरह उत्पन्न हुआ समझते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।।

भीष्म०-31/25

मैं अपनी योगमाया से छिपा हुआ हूँ इसलिये मुझे सब कोई नहीं जान सकता'। यह मूर्ख और अज्ञानी संसार मुझ अजन्मा और अविनाशी को नहीं जानता।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप।।

भीष्म०-31/27

हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के मोह में पड़कर सभी प्राणी अत्यन्त मोहित, भ्रमित हो रहे हैं।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।

भीष्म०-31/28

किन्तु पुण्य कर्म करने वाले जिन लोगों के पाप नष्ट हो गये हैं वे राग-द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के मोह से छूटकर दृढ़ निश्चय के साथ मेरा भजन करते हैं।

आठवां अध्याय—अक्षर ब्रह्मयोग

अर्जुन : किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।

भीष्म०-32/1

हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है, कर्म क्या है? अधिभूत किसे कहते हैं? अधिदैव किसे कहा जाता है?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।

भीष्म०-32/2

हे मधुसूदन! यहाँ अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीर में कैसे है? एकाग्रचित्त वाले लोग देहान्त के समय आपको कैसे जान सकते हैं?

श्रीकृष्ण : अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।।

भीष्म०-32/3

अक्षर अर्थात् सनातन चैतन्य तत्त्व ही परब्रह्म है। स्वभाव अर्थात् अपना भाव यानी प्रत्येक जीव की अलग-अलग शरीर में पृथक् सत्ता ही अध्यात्म है। शरीर का प्राण ही अध्यात्म का मुख्य लक्ष्य और आधार है। पंचभूतों अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश को और बुद्धि, चित्त एवं अहंकार के भावों को अस्तित्त्व में लाने वाली प्रक्रिया कर्म है। भगवान का यह संकल्प कि 'मैं एक से अनेक हो जाऊँ' ही अचेतन या जड़ प्रकृति की योनि में चेतन बीज की स्थापना या विसर्जन का नाम कर्म है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।।

भीष्म०-32/4

पंचभूतों का संगठन अर्थात् प्राणियों के शरीरों का निर्माण और विनाश अधिभूत है अर्थात् उत्पत्ति-विनाश वाले 'क्षर' पदार्थ अधिभूत है। ब्रह्माण्ड में और पार्थिव जगत् में ईश्वर की जो दिव्य शक्तियां हैं, उन्हें ही अधिदैवत या अधिदैव कहते हैं। उन्हीं से इन्द्रियों का और मन का विकास होता है। प्राण शक्ति ही दैव है। जहाँ प्राण है वहाँ देवों का निवास है। प्राण और अधिदैव समानार्थक हैं। इनकी सत्ता जैसे ब्रह्माण्ड में है वैसे ही पिण्ड, देह में है। देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीर में मैं ही अधियज्ञ हूँ। यह सारी सृष्टि ही यज्ञरूप है। उसी विराट यज्ञ में मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के शरीर बने हुए हैं। शरीर; प्राण और पंचभूतों के मिलने से बनता है। शरीर में प्राण या चेतना का अत्यन्त रहस्यमय कार्य हो रहा है। हमारे शरीर में समस्त देवता और पंच महाभूत अपने-अपने प्रतिनिधियों के रूप में विद्यमान हैं।

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

भीष्म०-32/5

अन्त समय में जो व्यक्ति मेरा स्मरण करता हुआ अपना शरीर छोड़ता है वह निस्संदेह मेरे स्वरूप को ही प्राप्त होता है।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

भीष्म०-32/6

शरीर छोड़ते समय मनुष्य के मन में जिस किसी व्यक्ति या वस्तु की भावना रहती है उसके कारण वह अगले जन्म में उसी को प्राप्त करता है। मनुष्य जिस बात

को बार-बार सोचता है उसी से उसका मन भावित हो जाता है तथा मरने के बाद उसके अन्त:करण में अंकित हुए उसी भाव के संस्कारों के कारण उसे अगली योनि मिलती है।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।

भीष्म०-32/7

इसलिये सभी समय मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। मुझ में लगाई गयी बुद्धि और मन के कारण तू मुझे ही अवश्य प्राप्त होगा।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।

भीष्म०-32/8

हे अर्जुन! यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि अष्टांग योग की साधना से मन को एकाग्र कर दिव्य परम पुरुष का ध्यान करने वाला व्यक्ति परमेश्वर को प्राप्त होता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातरमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

भीष्म०-32/9

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

भीष्म०-32/10

जो पुरुष; क्रान्तदर्शी अर्थात् त्रिकालज्ञ, सबसे अधिक प्राचीन अर्थात् अनादि, सब को अनुशासन में रखने वाले, परमाणु से भी सूक्ष्म, सब का पालन करने वाले, जिनका स्वरूप सोचा नहीं जा सकता, सूर्य के समान तेजस्वी और अन्धकार से परे परमेश्वर का देह त्याग के समय एकाग्र मन से, भक्तिपूर्वक स्मरण करता है और योगाभ्यास के द्वारा प्राणों को भौंहों के बीच में ले जाता है वह योगी उस दिव्य परम पुरुष की शरण में पहुँच जाता है।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणम्।।

भीष्म०-32/12

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।।

भीष्म०-32/13

अपनी आंख, कान आदि शरीर के इन सभी रास्तों को बन्द करके और मन को हृदय में लगाकर, प्राण को मस्तक में ले जाकर योग का अभ्यास करते हुए मन में ओ३म् का जप कर मेरा ध्यान करते हुए जो शरीर छोड़ता है उसे परम गति मिलती है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

भीष्म०-32/14

हे अर्जुन! जो मनुष्य अन्य किसी बात को न सोचकर केवल मेरा ही सदा स्मरण करता रहता है ऐसे मुझ में नित्य अर्पित चित्त वाले योगी को मैं आसानी से मिल जाता हूँ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

भीष्म०-32/15

जो महात्मा पुरुष मेरे चिन्तन और योगाभ्यास से अपने मन को एकाग्र करने में सफल हो जाते हैं वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति संसार में फिर जन्म नहीं लेते। यह संसार अनित्य है और दुःखों से भरा हुआ है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

भीष्म०-32/16

हे अर्जुन! ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों में जाकर प्राणी फिर संसार में लौट आता है किन्तु मुझे प्राप्त कर उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।

भीष्म०-32/17

ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युगी का होता है और ब्रह्मा की रात्रि की अवधि एक हजार चतुर्युगी होती है। जो यह बात जानते हैं उन्हें ब्रह्मा के दिन और रात्रि की जानकारी होती है।

अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।

भीष्म०-32/18

सारे चर और अचर प्राणी ब्रह्मा का दिन होने पर अव्यक्त अवस्था से अर्थात् अप्रकट अवस्था से प्रकट (व्यक्त) अवस्था में आ जाते हैं और रात्रि होने पर फिर अव्यक्त में समा जाते हैं।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

भीष्म०-32/21

जिसे अव्यक्त (अप्रकट) या अक्षर (नष्ट न होने वाला) कहा जाता है वही सभी प्राणियों की परमगति या सर्वोत्तम गति परमात्मा है। जिस सनातन नित्य अविनाशी परमात्मा को प्राप्त कर प्राणी नहीं लौटता वही मेरा परमधाम है।

पुरुष: स पर: पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्त:स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

भीष्म०-32/22

हे पार्थ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सारे प्राणी हैं और जो परमात्मा सृष्टि के सभी पदार्थों में समाया हुआ है उसे अनन्य भक्ति के द्वारा पाया जा सकता है।

अग्निर्ज्योतिरह: शुक्ल: षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्मब्रह्मविदो जना:।।

भीष्म०-32/24

अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण के छह महीने ऐसे अच्छे योग में जो ब्रह्मज्ञानी देह त्याग करते हैं वे ब्रह्मस्वरूप में मिल जाते हैं। परब्रह्म के साथ एक रूप हो जाना 'सायुज्य-मुक्ति' कहलाती है। जन्म-मरण के फेर में पड़ना पुनरावृत्ति कहलाती है। सन्त ज्ञानेश्वर के अनुसार 'सायुज्य-मुक्ति' और पुनरावृत्ति ये दोनों ही बातें देहपात के समय पर निर्भर करती हैं।

जिस समय मृत्यु की तन्द्रा आती है तब पंचमहाभूत अपने-अपने रास्ते से निकल जाते हैं। अत: जब देह विसर्जन का समय आये तब बुद्धि भ्रान्त न हो, स्मृति अन्धी न हो जाये और शरीर के साथ-साथ मन भी न मर जाये, ब्रह्मस्वरूप के अनुभव का कवच मिल जाये और पंच प्राण नामक यह चेतना समूह बिल्कुल ठीक

अवस्था में रहे तथा अन्तरिन्द्रियों का समुदाय भी प्राणों के प्रयाण के समय तक ज्यों का त्यों बना रहे, इन सब बातों के लिये बहुत आवश्यक है कि शरीर के अन्दर की अग्नि अर्थात् उष्णता बनी रहे।

देहपात के समय के भयंकर वात-प्रकोप से जब शरीर का अन्दर और बाहर सब कफ से व्याप्त हो जाता है। जब शरीरगत उष्णता की कला बुझ जाती है, उस समय स्वयं प्राणों में भी प्राण नहीं रह जाते, फिर बुद्धि का तो कुछ कहना ही नहीं। शरीरगत उष्णता के बिना शरीर में जीवन तत्त्व रह ही नहीं सकता। शरीर की उष्णता नष्ट हो जाने पर यह मिट्टी ही हो जाता है। ऐसी अवस्था में आयुष्य का काल अंधेरे में पड़कर व्यर्थ नष्ट हो जाता है और यह पता ही नहीं चलता कि इस शरीर का अन्त कब होगा। ऐसी अवस्था में जब मनुष्य अपने मन में विचार करता है कि मैं अपना पुराना स्मरण जाग्रत रखूं और शरीर छोड़कर आत्मस्वरूप में मिल जाऊं, त्यों हि कफ आदि के कारण कीचड़ बनी हुई इस शरीर की जीवन कला नष्ट हो जाती है और अगली-पिछली सारी स्मृति जाती रहती है। इसलिये जिस प्रकार धन का भण्डार दिखाई पड़ने से पहले ही किसी के हाथ का दीपक बुझ जाये, उसी प्रकार पहले से किया हुआ योगाभ्यास मृत्यु आने से पहले ही नष्ट हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान का मूल आधार शरीरगत उष्णता ही है और प्राणों के प्रयाण के समय इस शरीरस्थ अग्नि के भरपूर बल की आवश्यकता होती है। उस समय शरीर के अन्दर तो अग्नि की ज्योति का प्रकाश रहना चाहिये और बाहर शुक्ल पक्ष, दिवस तथा उत्तरायण के छह महीनों में से कोई महीना होना चाहिये। ऐसे अच्छे योग में जो ब्रह्मज्ञानी देहत्याग करते हैं वे ब्रह्मस्वरूप में मिल जाते हैं। यही योग मोक्ष के नगर में पहुँचने का सरल मार्ग है। इस मार्ग की पहली सीढ़ी शरीरगत अग्नि, दूसरी सीढ़ी उस अग्नि की ज्योति, तीसरी सीढ़ी दिन का समय, चौथी सीढ़ी शुक्ल पक्ष और पांचवीं तथा अन्तिम सीढ़ी उत्तरायण के महीनों में से कोई एक महीना है। इसी को अर्चिरादि अर्थात् सूर्य की किरणों वाला मार्ग कहते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।।

भीष्म०-32/25

मरने के समय वायु और कफ का प्रकोप शरीर में होता है जिससे अन्तःकरण में अन्धकार भर जाता है। उस समय शरीर की सब इन्द्रियां लकड़ी की तरह जड़ हो जाती हैं। स्मृति भ्रम में पड़ जाती है। मन बहुत ही चंचल और क्षुब्ध हो जाता है और

प्राण चारों ओर से दबकर घुटने लगते हैं। शरीरस्थ अग्नि का तेज नष्ट हो जाता है। और चारों ओर धुआं ही धुआं फैल जाता है जिससे शरीर की जीवन कला का अन्त हो जाता है। जिस प्रकार चन्द्रमा के सामने जल से भरा काला बादल आ जाने से न तो पूरा अंधेरा ही रहता है और न पूरा उजाला ही रहता है बल्कि कुछ धुंधला सा प्रकाश रहता है। उसी प्रकार उस समय जीव में एक ऐसी स्तब्धता सी आ जाती है जिसमें वह मरा हुआ भी नहीं होता और न होश में ही रहता है। उसका जीवन मरने के किनारे पर पहुँच कर रुक सा जाता है। इस प्रकार जब उस जीव पर चारों ओर से मन, बुद्धि और इन्द्रियों का दबाव पड़ता है तब जन्म भर के परिश्रम से प्राप्त किया हुआ फल व्यर्थ हो जाता है। बस प्राणों के प्रयाण के समय ऐसी ही दशा होती है।

यह तो हुई शरीर की भीतरी अवस्था। अब यदि बाहर की परिस्थिति भी इसी प्रकार प्रतिकूल हो अर्थात् कृष्णपक्ष हो, रात का समय हो, और दक्षिणायन के छह महीनों में से कोई महीना हो अर्थात् जिसके प्राणों के प्रयाण के समय जन्म और मरण का चक्र प्रचलित रखने वाले इस प्रकार के लक्षण एकत्र हों, भला उसके कानों में ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति की बात कैसे सुनाई पड़ सकती है। जिस मनुष्य का देहपात ऐसी दुरवस्था में होता है, वह केवल चन्द्रलोक तक ही जा सकता है और कुछ काल बाद इसी लोक के झगड़ों में आकर फंस जाता है। यही प्राण प्रयाण का 'अकाल' मार्ग है और जन्म-मरण के ग्राम तक पहुंचने वाला यही कष्टप्रद धूम्र मार्ग है।

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।।

भीष्म०-32/27

हे पार्थ! इन दोनों रास्तों को भलीभांति जानकर कोई भी योगी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होता। इसलिये हे अर्जुन! तुम सभी काल में योग की बुद्धि वाले बनो।

नवां अध्याय–राजविद्या राजगुह्य योग

श्रीकृष्ण : मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।

भीष्म०-33/4

मुझ निराकार परमेश्वर से यह सारा जगत परिपूर्ण है। संसार के सारे प्राणी मुझ में ही रहते हैं किन्तु मैं उनमें नहीं रहता।

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।।

भीष्म०-33/6

जैसे सर्वत्र विचरने वाला महान् वायु आकाश में सदा रहता है उसी तरह सारे प्राणी मुझ में रहते हैं।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।

भीष्म०-33/7

हे अर्जुन! सृष्टि के अन्त में सारे प्राणी मुझ में लीन हो जाते हैं। सृष्टि आरम्भ होने पर मैं उन्हें फिर उत्पन्न कर देता हूँ।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।।

भीष्म०-33/9

हे अर्जुन! मुझे इन प्राणियों के कर्म बन्धन में नहीं डालते। मैं उनके कर्मों से कोई लगाव नहीं रखता और उदासीन रहता हूँ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।

भीष्म०-33/10

हे अर्जुन! मेरी अध्यक्षता में प्रकृति; चल और अचल सभी प्राणियों सहित सारे संसार को रचती है और इसी कारण संसार चक्र घूम रहा है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।

भीष्म०-33/11

मेरे परम श्रेष्ठ स्वरूप को न जानकर मूर्ख लोग मनुष्य शरीर धारण किये हुए मेरा अपमान करते हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर हूँ।

महात्मनस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।

भीष्म०-33/13

हे अर्जुन दैवी स्वभाव वाले महात्मापुरुष मुझे सभी प्राणियों का आदि कारण तथा अनश्वर जानकर एकाग्र मन से मेरा चिन्तन करते हैं।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च।।

भीष्म०-33/17

मैं इस संसार का माता-पिता, पितामह और धारणकर्ता हूँ। मैं ही ऋक्, साम, यजु और ओंकार हूँ।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।।

भीष्म०-33/20

तीनों वेदों में बताये हुए कामनायुक्त कर्म करने वाले, सोमरस पीने वाले, पापरहित पुरुष यज्ञों द्वारा मेरी पूजा करते हैं। ये लोग अपने पुण्य कर्मों के कारण स्वर्ग में जाकर देवताओं के दिव्य भोग ऐश्वर्य का सुख पाते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते।।

भीष्म०-33/21

ये लोग महान् स्वर्गलोक के सुख भोगकर अपने पुण्य समाप्त होने पर पृथ्वी पर लौट आते हैं। इस प्रकार वेदों में कहे गये सकाम कर्म करने वाले और ऐश्वर्यों की कामना करने वाले स्वर्ग लोक और मृत्युलोक में आते-जाते रहते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

भीष्म०-33/22

जो लोग सब कुछ त्याग कर एकाग्र भाव से मेरी पूजा करते हैं ऐसे मुझ में नित्य दत्तचित्त लोगों के लिये आवश्यक पदार्थों का और उनकी रक्षा का प्रबन्ध मैं करता हूँ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

भीष्म०-33/26

जो भक्त मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल भक्ति के साथ अर्पित करता है, ऐसे पवित्रात्मा जितेन्द्रिय व्यक्ति की भक्ति भाव से अर्पित भेंट मैं खाता हूँ।

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।

भीष्म०-33/27

हे कुन्तीपुत्र! तुम जो कुछ करते हो, खाते हो, यज्ञ करते हो, दान देते हो या तप करते हो वह सब मुझे अर्पित कर दो।

शुभाशुभ फलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यास योगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैश्यसि।।

भीष्म०-33/28

इस प्रकार तुम शुभ और अशुभ फलों से और कर्मों के बन्धनों से छूट जाओगे। ज्ञानयोग से युक्त मन वाला तू मुक्त होकर मुझे पा लेगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

भीष्म०-33/34

हे अर्जुन! मुझमें अपना मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन कर, मुझे नमस्कार कर, इस प्रकार अपने मन और बुद्धि को मुझ में लगाकर और मेरे आश्रित होकर तू मुझे प्राप्त कर लेगा।

दसवां अध्याय–विभूति योग

श्रीकृष्ण : न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।।

भीष्म०-34/2

देवता और महर्षि मेरी उत्पत्ति को नहीं जानते। मैं, सभी देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूँ।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।

भीष्म०-34/6

सात महर्षि मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ तथा इनसे भी पहले चार महर्षि (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु ये सब मेरे ही संकल्प से उत्पन्न हुए हैं। संसार में इन्हीं की सारी प्रजा है।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।

भीष्म०-34/8

मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे ही कारण सारा जगत् अपना-अपना काम करता है। ऐसा समझकर बुद्धिमान् भक्त श्रद्धा सहित मेरा ध्यान करते हैं।

अर्जुन : कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन् मया।।

भीष्म०-34/17

हे योगेश्वर! मैं आपका चिन्तन किस प्रकार करूं? मैं आपका चिन्तन किन-किन भावों और स्वरूपों में करूं?

श्रीकृष्ण : हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।

भीष्म०-34/19

हे कुरुश्रेष्ठ! मैं तुम्हें अपनी प्रमुख दिव्य महिमाओं को बताऊंगा क्योंकि मेरी विभूतियों का कोई अन्त ही नहीं है।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।

भीष्म०-34/20

हे अर्जुन! मैं सब प्राणियों के हृदयों में विराजमान उनका आत्मा हूँ। मैं सभी प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त भी हूँ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।

भीष्म०-34/22

मैं वेदों में सामवेद हूँ और देवताओं में इन्द्र हूँ। इन्द्रियों में मन हूँ और प्राणियों की चेतना हूँ।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।

भीष्म०-34/25

महर्षियों में मैं भृगु हूँ, और शब्दों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ। सब यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूँ और एक जगह खड़े रहने वालों में हिमालय हूँ।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।

भीष्म०-34/32

हे अर्जुन! सृष्टियों का आदि, मध्य और अन्त मैं ही हूँ। विद्याओं में मैं अध्यात्म विद्या हूँ और वाद-विवाद करने वालों में मैं तत्त्व बताने वाला वाद हूँ।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।

भीष्म०-34/34

मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु हूँ और उत्पन्न होने वालों का कारण हूँ। मैं स्त्रियों में कीर्त्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।

भीष्म०-34/35

सामगान में मैं बृहत्साम गीति हूँ और छन्दों में गायत्री छन्द हूँ। महीनों में मार्गशीर्ष (अग्रहायण) हूँ और ऋतुओं में वसन्त ऋतु हूँ।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।

भीष्म०-34/38

मैं दमन करने वालों की दण्ड अर्थात् दमन शक्ति हूँ और जीतने की इच्छा वालों की नीति हूँ। गुप्त बातों के लिये मौन हूँ और ज्ञानियों का ज्ञान हूँ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत् स्यान्मया भूतं चराचरम्।।

भीष्म०-34/39

हे अर्जुन! मैं ही सब प्राणियों की उत्पत्ति का कारण (बीज) हूँ। ऐसा कोई भी चल और अचल प्राणी नहीं है जो मेरे बिना हो।

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत् तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।

भीष्म०-34/41

इस संसार में जो भी वस्तु विभूति से युक्त है या कान्ति और शक्ति से भरपूर है वह सब मेरे ही अंश से उत्पन्न है ऐसा तुम जानो।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमकांशेन स्थितो जगत्।।

भीष्म०-34/43

अथवा हे अर्जुन! इन सब बहुत सी बातों को जानने से क्या लाभ? मैं इस संसार को अपनी शक्ति के एक अंश से धारण किये हुए हूँ।

ग्यारहवां अध्याय–विश्वरूप दर्शनयोग

अर्जुन : एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।

भीष्म०-35/3

हे परमेश्वर! आप जैसा कहते हैं वह ठीक है किन्तु हे पुरुषोत्तम! मैं आपका ईश्वरीय रूप देखना चाहता हूँ।

श्रीकृष्ण : पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।।

भीष्म०-35/5

हे पार्थ! तू मेरे अनेक प्रकार के, अनेक रंगों के, अनेक आकृतियों के सैकड़ों और हजारों दिव्य रूपों को देख।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।

भीष्म०-35/8

तुम अपनी आंखों से मुझे नहीं देख सकते इसलिये मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ जिससे तुम मेरा अलौकिक ईश्वरीय रूप देखो।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।।

भीष्म०-35/10

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्।।

भीष्म०-35/11

अनेकों मुखों और आंखों वाले, अनेक आश्चर्यजनक रूपों वाले, अनेक प्रकार के दिव्य आभूषण पहने हुए, अनेक दिव्य शस्त्रों को हाथ में लिये हुए, दिव्य मालाएं और वस्त्र धारण किये हुए, शरीर पर दिव्य गन्ध का लेप किये हुए, सभी तरह के आश्चर्यों से युक्त, अनन्त और चारों ओर मुखों वाले परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः।।

भीष्म०-35/12

आकाश में हजारों सूर्य एक साथ उदित होने पर जैसा प्रकाश होगा वैसा ही तेजोमय रूप भगवान् का था।

तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।।

भीष्म०-35/13

तब अर्जुन ने अनेक रूपों में विभक्त सारे संसार को परमेश्वर के शरीर में देखा।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत।।

भीष्म०-35/14

यह देख आश्चर्यचकित और रोमांच से भरे अर्जुन ने हाथ जोड़कर और सिर नवाकर कहा।

अर्जुन : पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।

भीष्म०-35/15

हे देव! मैं आपके शरीर में सब देवताओं को, अनेक प्राणियों के समुदायों को, कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा को और शिव को, सभी ऋषियों और दिव्य सांपों को देखता हूँ।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद् दीप्तानलार्कद्युतिमप्रेयम्।।

भीष्म०-35/17

मैं आपको मुकुट, गदा और चक्र से युक्त, चारों ओर से प्रकाशमान तेज के पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य की ज्योति से युक्त, आंखों को चौंधिया देने वाले और नापे न जा सकने वाले आपके स्वरूप को देख रहा हूँ।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।

भीष्म०-35/18

आप ही जानने योग्य परम अविनाशी ब्रह्म हैं। आप ही इस जगत् के परम आश्रय हैं। आप ही शाश्वत धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।

भीष्म०-35/19

आपका न कोई प्रारम्भ है, न मध्य है और न ही कोई अन्त है। आप अपरिमित सामर्थ्य युक्त हैं। आपकी भुजाएं गिनी नहीं जा सकतीं। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। आपके मुख से आग की लपटें निकल रही हैं। आप अपने तेज से सारे संसार को तपा रहे हैं।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितम् महात्मन्।।

भीष्म०-35/20

हे महात्मन्! द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच का सारा आकाश और सारी दिशाएं आप अकेले से ही परिपूर्ण हैं। आपका यह आश्चर्यजनक और भयंकर रूप देखकर तीनों लोक परेशान हो रहे हैं।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद् भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।

भीष्म०-35/21

देवताओं के ये सारे समूह आप में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ देवता डर के मारे

आपको हाथ जोड़ रहे हैं और आपके गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। अनेक महर्षि और सिद्ध 'कल्याण हो', कहकर उत्तम स्तुतियों से आपकी बार-बार स्तुति कर रहे हैं!

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।।

भीष्म०-35/24

हे विष्णु! आकाश को छूने वाले, देदीप्यमान, अनेक रंगों वाले, मुंह फैलाये हुए और आग की तरह जलते हुए बड़े नेत्रों वाले आपको देखकर मेरा मन घबरा रहा है। मुझे धैर्य और शान्ति नहीं मिल रही है।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्टैव कालानलसंनिभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।।

भीष्म०-35/25

बड़ी बड़ी दाढ़ों के कारण भयंकर और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देखकर मुझे सुख और शान्ति नहीं मिल रही है। मुझे दिशाएँ भी नहीं दीख रहीं हैं। हे देवेश, हे जगन्निवास आप प्रसन्न हों।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।।

भीष्म०-35/26

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद् विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः।।

भीष्म०-35/27

ये सभी धृतराष्ट्र के पुत्र सभी राजाओं के साथ आपके मुख में समा रहे हैं। भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा हमारे भी प्रमुख योद्धा आपके भयंकर बड़ी दाढ़ों वाले खुले हुए मुखों में जल्दी-जल्दी समाते जा रहे हैं। इनमें से कई के टुकड़े हुए सिर आपके दांतों में फंसे हुए दीख रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।

भीष्म०-35/29

जैसे पतंगे जलने के लिये तेजी से उड़कर प्रज्वलित अग्नि में जा पड़ते हैं उसी तरह ये सब लोग भी नष्ट होने के लिये दौड़ते हुए आपके मुखों में घुसे जा रहे हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत् समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।।

भीष्म०–35/30

अपने प्रज्वलित मुखों में घुसते हुए इन सभी लोकों को आप बार-बार चाट रहे हैं। हे विष्णु! आपका तेज सारे संसार में व्याप्त हो रहा है और आपके इस प्रचण्ड तेज से यह सारा संसार जल रहा है।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।।

भीष्म०–35/31

आप मुझे बताइये कि इस उग्र रूप वाले आप कौन हैं? हे श्रेष्ठ देव! आपको प्रणाम करता हूँ, आप प्रसन्न होइये। आप आदि पुरुष को मैं जानना चाहता हूँ। मुझे आपके व्यवहार और आचरण की जानकारी नहीं है।

श्रीकृष्ण : कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।

भीष्म०–35/32

मैं लोकों का नाश करने के लिये बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय लोकों को नष्ट करने में लगा हूँ। तेरे विरोधी सैनिक जो इस मैदान में खड़े हैं वे तेरे युद्ध न करने पर भी जीवित नहीं रहेंगे।

तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवेते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।

भीष्म०–35/33

इसलिये तुम उठो और यश कमाओ। शत्रुओं को जीतकर समृद्ध राज्य का उपभोग करो। मैं इन सबको पहले ही मार चुका हूँ। तुम तो इनकी मृत्यु का केवल कारण बनो।

संजय : एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य।।

भीष्म०–35/35

कृष्ण की यह बात सुनकर कांपते हुए अर्जुन ने हाथ जोड़कर डरते-डरते प्रणाम किया और गद्गद् कण्ठ से कहने लगा।

अर्जुन : स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।।

भीष्म०-35/36

हे कृष्ण! आपके नाम और गुणों का कीर्त्तन करके सारा संसार प्रसन्न हो रहा है और आपसे स्नेह कर रहा है। राक्षस डर के मारे इधर-उधर भाग रहे हैं और सब सिद्ध समुदाय आपको प्रणाम कर रहे हैं।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।।

भीष्म०-35/38

आप आदिदेव और पुराण पुरुष हैं। आप ही इस जगत् के अन्तिम आश्रय हैं। आप सब कुछ जानते हैं। आप ही सबके लिये जानने योग्य हैं। आप सबकी अन्तिम शरण हैं। हे अनन्तरूप भगवन्! आपसे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तदेवं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि।।

भीष्म०-35/41

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।

भीष्म०-35/42

आपकी इस महिमा को न जानकर मैंने आपको मित्र मानकर प्रेम से या प्रमाद से हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा कहा और हे अच्युत! मैंने आपको अकेले या अन्य लोगों के सामने विहार, शय्या, आसन और भोजन आदि के समय हंसी-हंसी में अपमानित किया उस मेरे सारे आचरण को आप क्षमा कीजिये क्योंकि मैं आपका यह अप्रमेय (पूरी तरह जाना न जा सकने वाला) स्वरूप अब तक नहीं जानता था।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।

भीष्म०-35/43

आप इस चर और अचर जगत् के पिता हैं। आप हम सबसे बहुत बड़े और हमारे अत्यन्त पूजनीय हैं। तीनों लोकों में आपसे अधिक प्रभावशील व्यक्ति कोई नहीं है। आपके समान तीनों लोकों में कोई भी नहीं है।

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।

भीष्म०-35/44

इसलिये हे प्रभो! मैं अपने शरीर को आपके चरणों में डालकर प्रणाम करता हूँ। स्तुति करने योग्य आपको मैं प्रसन्न करता हूँ। जैसे पिता, पुत्र को, मित्र, मित्र को और पति अपनी पत्नी को क्षमा कर देता है वैसे ही आप मेरे अपराध सहन करने की कृपा कीजिये।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास।।

भीष्म०-35/45

पहले कभी न देखे हुए आपके इस रूप को देखकर मेरा मन प्रसन्न है किन्तु डर से मन घबरा भी रहा है इसलिये हे देव! आप मुझे अपना पहला रूप ही फिर दिखाइये और हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये।

श्रीकृष्ण : मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।

भीष्म०-35/47

हे अर्जुन! मैंने तुझसे प्रसन्न होकर अपनी योगशक्ति के प्रभाव से यह परम तेजोमय, सबका आदि और अनन्त विराट रूप तुझको दिखाया है। मेरे इस विश्वरूप को तेरे से पहले किसी ने भी अबतक नहीं देखा था।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।।

भीष्म०-35/49

मेरे इस विकराल रूप को देखकर तू व्याकुल मत हो और घबरा भी नहीं। तू निडर और प्रसन्न मन से मेरे पहले रूप को फिर देख।

संजय : इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।।

भीष्म०-35/50

इस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन को आश्वासन दिया और फिर अपना पहिला रूप दिखाया। डरे हुए अर्जुन के सामने श्रीकृष्ण फिर अपने सुन्दर रूप में आ गये।

अर्जुन : दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।।

भीष्म०-35/51

हे जनार्दन! आपका यह सौम्य मनुष्य रूप देखकर अब मेरे होशहवास ठीक हो गये हैं और मेरी स्वाभाविक स्थिति लौट आई है।

कृष्ण : सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।।

भीष्म०-35/52

मेरा जो यह रूप तुमने देखा है उसे देख पाना बहुत कठिन है। देवता भी मेरा यह रूप देखने के लिये सदा उत्सुक रहते हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।

भीष्म०-35/53

तुमने मेरा जो रूप देखा है वैसा रूप न वेद पढ़ने से, न तपस्या करने से, न दान देने से और न ही यज्ञ करने से देखा जा सकता है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।

भीष्म०-35/54

हे शत्रुतापी अर्जुन! मेरा यह रूप अनन्य भक्ति से देखा जा सकता है, जाना जा सकता है और इस रूप में प्रवेश कर मुझसे एक हुआ जा सकता है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।

भीष्म०-35/55

हे अर्जुन! जो व्यक्ति केवल मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्म करता है, मेरे ही परायण रहता है, मेरा भक्त है, किसी भी प्रकार के लगाव या कामना से रहित है, सभी प्राणियों के प्रति वैर भाव नहीं रखता वही व्यक्ति मुझे पा सकता है।

बारहवां अध्याय–भक्तियोग

सगुण-निर्गुण भक्ति

अर्जुन : एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।

भीष्म०-36/1

जो भक्त आप में अपना मन सदा लगाये रखकर आपकी उपासना करते हैं और जो भक्त अविनाशी और निराकार ब्रह्म का ध्यान करते हैं इन सगुण और निर्गुण भक्तों में से कौन सा भक्त योग का श्रेष्ठ जानकार है।

श्रीकृष्ण : मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।

भीष्म०-36/2

मुझ में सदा मन लगाये रखकर जो भक्त अत्यधिक श्रद्धा से भरे हृदय से मेरा सदा स्मरण करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।

भीष्म०-36/3

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।

भीष्म०-36/4

जो भक्त अपनी इन्द्रियों को वश में करके, सब प्राणियों के प्रति समभाव रखते हैं और सब प्राणियों का भला करने में लगे रहते हैं ऐसे भक्त मुझ अविनाशी, किसी भी उदाहरण से मेरा स्वरूप न बताये जा सकने वाले मुझ निराकार, निश्चल, निश्चित रूप से वर्तमान, नित्य, सभी जगह व्याप्त मेरा ध्यान करते हैं वे भी मुझे ही प्राप्त कर लेते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।

भीष्म०-36/5

मुझ निराकार में चित्त लगाना बहुत कठिन है क्योंकि ब्रह्म के निराकार स्वरूप को समझ पाना देहधारियों के लिये कठिन है।

भक्ति का लक्षण

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।

भीष्म०-36/6

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।

भीष्म०-36/7

जो भक्त अपने सारे कर्म मुझे अर्पित करके सदा मेरा स्मरण करते हुए मेरा ध्यान करते हैं ऐसे मुझ में सदा लगाए हुए चित्त वाले योगियों का मैं इस मृत्यु रूप संसार-सागर से जल्दी ही बेड़ा पार लगा देता हूँ।

भक्ति के कई मार्ग

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

भीष्म०-36/8

इसलिये हे अर्जुन! तुम मुझ में ही अपने मन और बुद्धि को लगाओ। ऐसा करने से तुम निस्संदेह मुझ में ही निवास करने लगोगे।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।

भीष्म०-36/9

हे अर्जुन! यदि तुम मुझ में अपना मन दृढ़ता से नहीं लगा सकते तो तुम्हें मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिये। इससे तुम मुझको पा लोगे।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि।।

भीष्म०-36/10

यदि तुम मन को एकाग्र करने का अभ्यास नहीं कर सकते तो तुम अपने कर्मों को मुझे सौंप दो। ऐसा करके भी तुम मुझे पा लोगे।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।

भीष्म०-36/11

यदि यह भी न बन पड़े और ईश्वर प्राप्ति की इच्छा बनी रहे तो तुम मन, बुद्धि और हृदय को वश में रखकर अपने कर्मों के फल का त्याग करना सीखो।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।

भीष्म०-36/12

मन एकाग्र करने के अभ्यास से उत्तम मन में ईश्वर का ज्ञान या प्रत्यक्ष दर्शन है। ज्ञान से बढ़कर भक्तिपूर्वक ईश्वर का ध्यान है और ध्यान से भी बढ़कर कर्मफल का त्याग उत्तम है क्योंकि कर्मफल की इच्छा मन में न रहने पर मनुष्य को शान्ति मिलती है।

भक्त के लक्षण

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।

भीष्म०–36/13

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रिय।।

भीष्म०–36/14

भगवान् का भक्त मुझे प्रिय होता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी प्राणी से वैर या द्वेष नहीं करता। वह सबके प्रति मित्रता और दया की भावना रखता है। वह अपने पराये के साथ ममता या द्वेष नहीं करता। वह अहंकारी नहीं होता। सुख और दुःख दोनों में ही उसका मन समान रहता है। वह क्षमा करने वाला होता है। वह अपने आत्मा को वश में रखता है। उसका निश्चय अटल होता है। उसका मन और बुद्धि ईश्वर में ही लगी रहती है। वह सदा सन्तुष्ट रहता है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।

भीष्म०–36/15

जिस व्यक्ति के व्यवहार और आचरण से लोग परेशान नहीं होते और जो व्यक्ति लोगों के बीच रहकर उनसे घबराता नहीं। जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग से रहित होता है वही ईश्वर को प्रिय होता है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

भीष्म०–36/16

वह अपने लिये कोई वस्तु नहीं चाहता। वह मन, वचन और कर्म से शुद्ध होता है। वह कर्म करने में चतुर होता है। वह उदासीन रहता है। उसे कोई कष्ट अनुभव नहीं होता। वह किसी भी सांसारिक पचड़े में नहीं पड़ता, ऐसा भक्त मुझे प्रिय होता है।

योन न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।।

भीष्म०-36/17

वह हर्ष और द्वेष, शोक और इच्छा, शुभ और अशुभ इन सब बातों से ऊपर रहता है। ऐसा परम भक्त मुझे अच्छा लगता है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।।

भीष्म०-36/18

शत्रु और मित्र, मान और अपमान, गर्मी-सर्दी, सुख-दुःख, इन द्वन्द्वों के बीच वह एक समान रहता है। वह किसी भी प्रकार की आसक्ति अर्थात् लगाव या इच्छा से रहित होता है।

तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः।।

भीष्म०-36/19

उसके लिये अपनी निन्दा और स्तुति एक जैसी होती है। वह मौन रहता है। उसे जो कुछ मिल जाता है उससे वह सन्तोष करता है। वह अपने लिये घर नहीं बनाता। उसकी बुद्धि जिस काम में लगती है उसमें लगी रहती है। ऐसा भक्त मुझे प्रिय होता है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।

भीष्म०-36/20

जो श्रद्धालु भक्त ऊपर बताई हुई धर्ममय और अमृतयुक्त बातों पर ठीक प्रकार आचरण करते हैं और मेरा भजन करते हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय होते हैं।

तेरहवां अध्याय–क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग

श्रीकृष्ण : इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।

भीष्म०-37/1

हे अर्जुन! इस शरीर को क्षेत्र कहा जाता है। जो इसे जानता है वह 'क्षेत्रज्ञ' कहलाता है।

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु।।

भीष्म०-37/3

वह 'क्षेत्र' अर्थात् हमारा शरीर जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है तथा क्षेत्रज्ञ का जो प्रभाव है वह सब मुझ से सुन।

क्षेत्र : महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च इन्द्रियगोचराः।।

भीष्म०-36/5

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मन, प्रकृति, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्द्रियों के पांच विषय इन 24 तत्त्वों से हमारा शरीर बना है।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।

भीष्म०-37/6

जब जड़ प्रकृति से बने हमारे शरीर में ईश्वर का अंश जीव आ जाता है तब शरीर में चेतना, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, और धैर्य या धृति आ जाते हैं। धृति जीव का स्वाभाविक गुण है। वही प्राणियों को धारण करता है अर्थात् उसी के कारण पंचभूत इकट्ठे रहते हैं और जीव के निकलते ही शरीर के पंचभूत बिखर जाते हैं और शरीर की मृत्यु (संघात) हो जाती है। मैंने विकारों सहित क्षेत्र को बता दिया।

ज्ञान : अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।

भीष्म०-37/7

मान या अहंकार न होना, दम्भ या पाखण्ड न करना, अहिंसा, क्षमा, सरल व्यवहार, गुरुजनों के प्रति आदर भाव, शरीर और अन्तःकरण की शुद्धता, स्थिरता अर्थात् चंचलता का न होना और आत्म संयम।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।।

भीष्म०-37/8

इन्द्रियों को अच्छे लगने वाले भोग्य पदार्थों के प्रति विरक्ति, अनहंकार अर्थात्

अपने बड़प्पन का मद न होना, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग में जो दुःख और बुराइयां हैं उन्हें अच्छी तरह समझना।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।

भीष्म०-37/9

किसी भी वस्तु से लगाव न रखना, पुत्र, पत्नी और घर आदि में भी बहुत ममता न होना, भला या बुरा कुछ भी होने पर अपने मन को एक सा बनाये रखना।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।

भीष्म०-37/10

ईश्वर में अनन्य भक्ति, एकान्त स्थान में रहना और भीड़ भड़क्के से दूर रहना।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।

भीष्म०-37/11

आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान पाने के लिये सदा प्रयत्न करना, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिये रुचि बनाये रखना, इन बीस वृत्तियों या आचरणों को ज्ञान कहते हैं और इन बातों के अतिरिक्त और सब बातें अज्ञान हैं।

ज्ञेय या क्षेत्रज्ञ पुरुष

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तन्नासदुच्यते।।

भीष्म०-37/12

जो जानने योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर लेता है उस तत्त्व को मैं तुम्हें बताऊंगा। उस तत्त्व को अनादि परम ब्रह्म कहते हैं। वह परब्रह्म सत् और असत् इन दोनों परस्पर विरुद्ध कोटियों से ऊपर है।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

भीष्म०-37/13

उसके हाथ-पैर, आंख, सिर, मुख और कान इस जगत् में सर्वत्र अर्थात् सब

जगह हैं क्योंकि वह तत्त्व पंचभूतों से बनी देह वाला नहीं है अपितु वह सूक्ष्म है और प्राण रूप है।

सर्वेन्द्रिगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

भीष्म०-37/14

उसमें सब इन्द्रियों के गुण दीखते से हैं और किसी भी इन्द्रिय का गुण नहीं है। वह किसी से लगाव नहीं रखता फ़िर भी सब प्राणियों का पालन-पोषण करता है। वह तीनों गुणों से रहित है और सत्व, रज, तम इन गुणों का भोक्ता भी है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।

भीष्म०-37/15

वह प्राणियों के अन्दर और बाहर व्याप्त है। वह चल और अचल भी है। वह दूर भी है और पास भी है। वह इतना सूक्ष्म है कि जाना नहीं जा सकता।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।

भीष्म०-37/16

वह सब प्राणियों में एक, अविभक्त तत्त्व है किन्तु प्राणियों के रूप में अलग-अलग बंटा हुआ है। वह प्राणियों को धारण करने वाला, उनका संहार करने वाला और सबको उत्पन्न करने वाला है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।

भीष्म०-37/17

वह तत्त्व, ज्योतियों की भी ज्योति और अन्धकार से परे है। वही वास्तविक ज्ञान है और उसी को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। वह ज्ञान के द्वारा प्राप्त करने योग्य है और सब प्राणियों के हृदय में विराजमान है।

प्रकृति और पुरुष

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।

भीष्म०-37/19

प्रकृति और पुरुष ये दोनों अनादि तत्त्व हैं। किन्तु तीनों गुण और इन गुणों के विकार प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।

भीष्म०-37/20

कर्त्ता, करण और कार्य का विभाग भी प्रकृति के कारण ही होता है। किन्तु सुख-दुःख को भोगने वाला पुरुष है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुण सङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।

भीष्म०-37/21

पुरुष; प्रकृति में आकर प्रकृति के गुणों को भोगता है। पुरुष जिन-जिन गुणों का सहारा लेता है उसके अनुसार उसका जन्म अच्छी-बुरी योनियों में होता है।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।।

भीष्म०-37/22

मनुष्य शरीर में रहने वाला पुरुष भी परमात्मा है। वह महान् ईश्वर है। वही जीवरूप में भोक्ता है, वही ईश्वर रूप में साक्षी है, वही भरण-पोषण करने वाला प्राण तथा अनुमति देने वाला मनस् तत्त्व है।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।

भीष्म०-37/24

कुछ लोग ध्यान के द्वारा, कुछ पवित्र बुद्धि के द्वारा, कुछ सांख्ययोग या कर्मयोग से उस परमात्मा को देखते हैं।

यावत् संजायते किंचित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञसंयोगात् तद् विद्धि भरतर्षभ।।

भीष्म०-37/26

हे अर्जुन! जितने भी चल और अचल प्राणी उत्पन्न होते हैं वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होते हैं।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।

भीष्म०-37/27

परमेश्वर सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है और प्राणियों के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होता जो यह बात जान लेता है वही वास्तविकता जानता है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।

भीष्म०-37/30

जब मनुष्य यह समझ लेता है कि अलग-अलग दीखने वाले सारे प्राणी ईश्वर में ही स्थित हैं और उसी परमात्मा से उनकी वृद्धि होती है तब वह ब्रह्म को जान लेता है।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।

भीष्म०-37/31

हे अर्जुन! यह अविनाशी परमात्मा, अनादि और गुणरहित होने के कारण शरीर में रहते हुए भी न तो कुछ करता है और न ही किसी कर्म में लिप्त होता है।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते।।

भीष्म०-37/32

जैसे आकाश सूक्ष्म होने के कारण सभी जगह व्याप्त आकाश किसी से लिप्त नहीं होता वैसे ही शरीरों में सर्वत्र विराजमान आत्मा भी देह से लिप्त नहीं होता।

यथा प्रकाशत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।

भीष्म०-37/33

जैसे एक सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है वैसे ही एक ईश्वर सब शरीरों में आत्मा रूप से रहकर सभी प्राणियों को प्रकाशित कर रहा है या ज्ञान दे रहा है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूत प्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।

भीष्म०-37/34

इस प्रकार क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्री अर्थात् क्षेत्रज्ञ (परमात्मा) के भेद को तथा प्रकृति से मुक्त होने को जो पुरुष अपने ज्ञान के नेत्रों से जान लेते हैं वे ज्ञानी पुरुष परमब्रह्म परमात्मा को पा जाते हैं।

चौदहवां अध्याय–गुणत्रय विभाग योग

जगत् की उत्पत्ति

श्रीकृष्ण : मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।

भीष्म०-38/3

हे अर्जुन! महत् ब्रह्म रूप मूल प्रकृति मेरी योनि है। मैं इसमें चेतन तत्त्व का गर्भाधान करता हूँ और इससे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।

भीष्म०-38/4

हे कुन्ती पुत्र! नाना प्रकार की सभी योनियों में जो शरीरधारी जीव पैदा होते हैं उनका गर्भ धारण करने वाली माता प्रकृति है और मैं उनका पिता हूँ।

तीन गुण

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।

भीष्म०-38/5

हे महाबाहु! सत्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और इस शरीर में अविनाशी आत्मा को बांधते हैं।

तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।

भीष्म०-38/6

हे निष्पाप! सत्व गुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित है। यह सुख और ज्ञान के संबंध से आत्मा को बांधता है।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।

भीष्म०-38/7

हे कुन्तीपुत्र! रजोगुण राग या आकर्षण वाला है और तृष्णा (इच्छा) के कारण उत्पन्न होता है। रजोगुण, जीवात्मा को कर्मों से बांधता है।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।

भीष्म०-38/8

हे भरतवंशी! तमोगुण अज्ञान से पैदा होता है और सब शरीरधारियों को मोहित करता है। यह जीवात्मा को लापरवाही, आलस्य और निद्रा से बांधता है।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।।

भीष्म०-38/9

हे भरतवंशी! सत्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में। तमोगुण; ज्ञान को ढककर प्रमाद, आलस्य आदि में लगाता है।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।

भीष्म०-38/10

हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्व प्रबल हो जाता है। सत्त्व और तम को दबाकर रजोगुण तथा सत्त्व और रज को दबाकर तमोगुण प्रबल हो जाता है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद् विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।

भीष्म०-38/11

जिस समय हमारे शरीर में, अन्तःकरण में और इन्द्रियों में चेतनता और विवेक पैदा हो जाता है तब हमारे शरीर में सत्त्व गुण बढ़ा होता है।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।

भीष्म०-38/12

हे श्रेष्ठ भरतवंशी! रजोगुण के बढ़ने पर हमारे मन में लोभ, काम करने की इच्छा अशान्ति और विषय भोगों की लालसा पैदा हो जाती है।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।

भीष्म०-38/13

हे कुरुपुत्र! तमोगुण के बढ़ने पर अन्तःकरण और इन्द्रियों पर अन्धकार छा जाता है। कोई काम करने को मन नहीं होता। आलस्य और मोह बढ़ जाता है।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते।।

भीष्म०-38/14

जब मनुष्य शरीर में सत्त्वगुण की बढ़ी हुई अवस्था में मरता है तब वह उत्तम कर्म करने वालों के स्वर्गादि दिव्य लोकों में जाता है।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।।

भीष्म०-38/15

रजोगुण की बढ़ी हुई अवस्था में मृत्यु होने पर मनुष्य कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों के बीच पैदा होता है तथा तमोगुण की बढ़ी हुई अवस्था में मरने पर मनुष्य कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि योनियों में पैदा होता है।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।

भीष्म०-38/16

अच्छे कर्म का फल सात्विक होता है इससे दिव्य सुख आदि मिलते हैं। राजस कर्मों का फल दुःख और तामसिक कर्मों का फल अज्ञान होता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।

भीष्म०-38/18

सत्त्वगुण में रहने वाले पुरुष स्वर्गादि ऊँचे लोकों को प्राप्त करते हैं। रजोगुण में स्थित मनुष्य मध्य के मनुष्य लोक में ही रहते हैं और तामसिक वृत्ति के पुरुषों को नीच लोक मिलते हैं।

गुणातीत

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।

भीष्म०-38/19

जब द्रष्टा अर्थात् विवेकज्ञान युक्त मनुष्य यह जान लेता है कि इन तीन गुणों के सिवाय मैं या और कोई कुछ नहीं करता तथा जब वह यह भी जान लेता है कि इन तीन गुणों से परे परमात्मा है तब वह मुझे प्राप्त कर लेता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।।

भीष्म०-38/20

शरीर में उत्पन्न होने वाले इन तीन गुणों को जानकर और इनसे ऊपर उठकर मनुष्य, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और दुःखों से छूट कर अमरत्व का सुख पाता है।

अर्जुन : **कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।**
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते।।

भीष्म०-38/21

हे प्रभु! यह कैसे पता चलता है कि कोई मनुष्य इन तीन गुणों के बन्धन से ऊपर उठ गया है? उसका आचरण कैसा होता है? इन गुणों से कैसे छूटा जाता है?

श्रीकृष्ण : **प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।**
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।

भीष्म०-38/22

जो पुरुष प्रकाश या सत्वगुण, कर्म में प्रवृत्ति या रजोगुण और मोह अथवा तमोगुण के बढ़ने पर न तो घबराता है और इन गुणों के घटने पर न उन्हें चाहता है।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।

भीष्म०-38/23

जिस व्यक्ति में ये गुण क्षोभ या हलचल पैदा नहीं करते। उनके बढ़ने और घटने पर जो एक समान रहता है। जो यह समझता है कि गुण अपना काम कर रहे हैं इसलिये मैं उनका प्रभाव अपने पर क्यों पड़ने दूं वही व्यक्ति सच्चे अर्थों में गुणातीत या गुणों के बन्धन से ऊपर होता है।

समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकाञ्चन:।
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दाऽऽत्मसंस्तुति:।।

भीष्म०-38/24

ऐसा गुणातीत व्यक्ति सुख और दु:ख को एक समान समझता है। वह अपने अन्तरात्मा में स्थिर रहता है। उसकी नजरों में सोने की डली और मिट्टी का ढेला बराबर होता है। वह प्रिय मित्र और शत्रु को एक जैसा मानता है। उसके लिये निन्दा और स्तुति बराबर होती है। ऐसा व्यक्ति धीर कहलाता है।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो:।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीत: स उच्यते।।

भीष्म०-38/25

मान और अपमान का जिस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो मित्र पक्ष और शत्रु पक्ष के साथ समान व्यवहार करता है। जो किसी भी प्रकार का कर्म शुरू नहीं करता। ऐसा व्यक्ति गुणातीत होता है।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

भीष्म०-38/26

जो व्यक्ति अनन्य भक्ति से मेरा चिन्तन करता है वह इन तीन गुणों से ऊपर उठकर ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बन जाता है।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।।

भीष्म०-38/27

भूतों का क्षर जगत् (ब्रह्मण: प्रतिष्ठा), प्राण का अमृत जगत्, अव्यय पुरुष या मनस् तत्त्व का संसार, इन तीनों से ऊपर पारमेष्ठ्य लोक, जहाँ समस्त धर्मों का अधिष्ठान है (शाश्वतस्य धर्मस्य) और उससे भी ऊपर जो नितान्त आनन्द का स्वयम्भू लोक है (सुखस्य एकान्तिकस्य), इन पांचों को गुणातीत व्यक्ति प्राप्त कर

लेता है। अर्थात् इन पांचों की समस्याओं का समाधान उसे मिल जाता है। यहाँ पर क्रमशः भूतात्मा, प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, महानात्मा (शाश्वत धर्म), अव्यक्तात्मा (एकान्तिक सुख) इन पांच आत्माओं का वर्णन है। ये पांचों प्राकृतिक हैं। इन पांचों से ऊपर पुरुष या ईश्वर है। इसीलिये भगवान् ने कहा है कि मैं इन पांचों की प्रतिष्ठा या आधारभूमि हूँ। इनमें भूतात्मा और प्राणात्मा का सम्बन्ध तमोगुण से है। प्रज्ञानात्मा का सम्बन्ध रजोगुण से है। प्रज्ञान-मन नीचे की दो वृत्तियों के साथ मिला रहता है वह इन्द्रियानुगामी होता है। किन्तु वही जब प्रकाश का अनुगामी बनता है तब उसे विज्ञान-मन या विज्ञान बुद्धि कहते हैं। इससे ऊपर महान् आत्मा और अव्यक्त आत्मा सत्वगुण से सम्बद्ध है। इस प्रकार प्रकृति के तीन गुण ही प्रत्येक व्यक्ति में इन पांच आत्माओं के धरातल पर प्रकट होते हैं। ये सब प्रकृति के अंश हैं। इन पांचों से ऊपर ईश्वर, चैतन्य पुरुष या क्षेत्रज्ञ है। उसकी ओर मनुष्य का ध्यान तब जाता है जब वह इन तीन गुणों के भ्रम जाल से अपने आपको ऊपर उठा लेता है।

पन्द्रहवां अध्याय–पुरुषोत्तम योग

संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष

श्रीकृष्ण : ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

भीष्म०-39/1

इस वृक्ष की जड़ें ऊपर हैं और शाखाएं नीचे फैली हुई हैं। यहाँ 'ऊर्ध्व' का अर्थ ब्रह्म या चेतन पुरुष है और 'अधः' का तात्पर्य प्राकृतिक जगत् है। इस संसार वृक्ष का मूल तो ब्रह्म में ही है। उसका विस्तार प्रकृति के तीन गुणों के द्वारा होता है। यह वृक्ष अव्यय है। जब इस विश्ववृक्ष की जड़ ब्रह्म में है, तो जब तक वह जड़ हरी रहेगी तब तक इस पेड़ का तना भी हरा रहेगा। यही इसका अव्यय या अविनाशी रूप है। कोई नहीं जानता कि इसका आरम्भ कब हुआ और कब अन्त होगा। इस संसार रूपी पीपल में जो छन्दों की गति या लय है, वही इसके पत्ते हैं। गति के कारण इसमें नये-नये पत्ते फूटते रहते हैं और लोकों की सृष्टि होती रहती है। जो इस विश्वरूपी अश्वत्थ विद्या को समझता है, वही सच्चा वेदज्ञ है। वेद विद्या; सृष्टि विद्या का ही दूसरा नाम है। सृष्टि तत्त्व की व्याख्या ही वेदों को इष्ट है। विश्वरचना के मूलभूत नियम ही वेदों की प्रतीकात्मक भाषा में कहे गये हैं। संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष का ज्ञान ही असली ज्ञान है।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।

भीष्म०-39/2

इस ससांर वृक्ष की शाखाएँ तीन गुणों के अनुसार ऊपर और नीचे फैलती हैं। ऊपर का अर्थ चैतन्य पुरुष और नीचे का अर्थ प्रकृति है। इन्द्रियों के विषय इन्हीं शाखाओं से फूटने वाले नये-नये पत्ते हैं। जैसे पेड़ में उसकी जटाएं ऊपर से नीचे की ओर आती हैं। ऐसे ही कर्म मनुष्यलोक में नीचे की ओर फैलकर व्यक्ति को संसार में बांध देते हैं।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा।।

भीष्म०-39/3

इस संसार वृक्ष का सच्चा रूप कोई नहीं जानता। इसका आदि और अन्त नहीं। इसकी जड़ कहाँ है यह पता नहीं चलता, किन्तु इसकी जड़ कहीं बहुत दृढ़ है। इस वृक्ष को केवल एक ही उपाय से काटा जा सकता है और वह है असङ्ग और अनासक्ति का कुल्हाड़ा। मनुष्य अपने मन को संसार के विषयों से खींच ले तो यह वृक्ष स्वयं अस्तित्त्वरहित बन जाता है।

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।

भीष्म०-39/4

इसका यही उपाय है, उस आदि पुरुष परब्रह्म की शरण में जाना, जहाँ से जगत् की यह पुरानी प्रवृत्ति चली है और जहाँ पहुँचकर फिर लौटना नहीं होता। वह मोक्ष का स्थान ही परमपद है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

भीष्म०-39/5

उस परमपद में वही पहुंच पाते हैं जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से छूट गये हैं। जिन्होंने मान और मोह को छोड़ दिया है। लगाव, आसक्ति और व्यक्तिगत नातों रिश्तों से ऊपर उठ गये हैं। जो सदा आत्मा परमात्मा के चिन्तन में लगे रहते हैं और जिनकी सारी कामनाएं शान्त हो गई हैं।

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम।।

भीष्म०-39/6

उस ब्रह्म तत्त्व की ज्योति का क्या कहना। उसके सामने सूर्य, चन्द्र और अग्नि की ज्योति फीकी पड़ जाती है। जहाँ पहुँच कर फिर इस मनुष्य लोक में लौटना नहीं होता वही मेरा परमधाम है।

जीव का स्वरूप

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

भीष्म०-39/7

हमारे शरीर की पांच इन्द्रियां और छठा मन प्रकृति से बना है। किन्तु यह शरीर जड़ है। इस देह में हलचल और क्रिया उत्पन्न करने वाला जीव या आत्मा है जो ईश्वर का सनातन अंश है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।

भीष्म०-39/8

ईश्वर का यह अंश शरीर में बार-बार जीव रूप में आता जाता है। जैसे वायु फूल की गन्ध लेकर बहता है वैसे ही जीवात्मा; इन्द्रियों को और मन के संस्कारों तथा वासनाओं को लेकर अगले शरीर में जाता है।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।

भीष्म०-39/9

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच विषयों को भोगने के लिये कान, त्वचा, आंख, जीभ और नासिका ये पांच इन्द्रियां और छठा मन है। इन इन्द्रियों और मन के द्वारा जीवात्मा विषयों का भोग करता है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।

भीष्म०-39/10

इस जीव को शरीर छोड़ते हुए या शरीर में रहते हुए अथवा विषयों को भोगते हुए और तीनों गुणों से युक्त हुए इस जीवात्मा को मूर्ख लोग नहीं देख पाते, किन्तु ज्ञानवान् व्यक्ति अपने ज्ञान नेत्रों से प्रकृति और पुरुष के कार्य देखते हैं।

यदादित्यगतं तेजो जगत् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत् तेजो विद्धि मामकम्।।

भीष्म०-39/12

सूर्य का जो तेज सारे संसार को प्रकाशित कर रहा है वह मेरा ही तेज है। चन्द्रमा और अग्नि में भी मेरा ही तेज समाया हुआ है।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।

भीष्म०-39/13

मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपने तेज से सभी प्राणियों को सम्हाले हुए हूँ। मैं ही सोम अर्थात् जीवन रस बनकर सारी ओषधियों में पोषक तत्त्व भरता हूँ।

वैश्वानर विद्या

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

भीष्म०-39/14

प्राण और अपान के रूप में जीवनी शक्ति शरीर में संचार कर रही है। इनका सम्मिलित रूप ही वैश्वानर अग्नि है। प्रत्येक प्राणी के शरीर में जो सुनिश्चित तापमान है वही इस अग्नि का स्वरूप है। उसी ताप के कारण शरीर के समस्त अंगों की क्रिया हो रही है। वैसे तो शरीर में कोई अग्नि नहीं दीखती किन्तु पेट में नाना प्रकार के दाहक और पाचक रसों के रूप में प्रकृति स्वयं इस शक्ति का निर्माण करती है जो अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों को पचा डालती है। इस सारी प्रक्रिया का नाम ही वैश्वानर है। आकाश में सूर्य और पृथ्वी पर वैश्वानर ये दोनों ही एक महाशक्ति के दो रूप हैं। यह वैश्वानर अग्नि सारे प्राणि-जगत् का राजा है। जहाँ वैश्वानर की सत्ता है वहाँ सब प्रकार का मंगल है। वैश्वानर बुझ गया तो शरीर राख हो जाता है। इस प्रकार जो वैश्वानर अग्नि तत्त्व है वही चेतना का सबसे बड़ा लक्षण है। वह साक्षात् ईश्वर का अंश है।

हृदय में ईश्वर की सत्ता

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्।।

भीष्म०-39/15

मैं सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हूँ। मुझसे ही शरीर में स्मरण, ज्ञान और संशय आदि दूर करने की शक्ति आती है। सभी वेद मेरा ही ज्ञान कराते हैं और मैं ही वेदों का ज्ञाता और वेदान्त का ज्ञान देने वाला हूँ। जीव; ईश्वर का अंश है। इसे ही उपनिषदों में अंगुष्ठ पुरुष कहा है। "अंगुष्ठमात्र पुरुषः जनानां हृदये सन्निविष्टः"। अंगुष्ठ मात्र का अर्थ सांकेतिक है अर्थात् वह चैतन्य अंश जो सबके अन्दर विद्यमान है। पर जिसकी कोई मात्रा या माप नहीं। जिसकी माप होती है उसकी परछांई पड़ती है। अंगुष्ठ पुरुष की कोई परछांई नहीं पड़ती। वह तो निर्धूम अग्नि के समान एक ज्योति मात्र है। हृदय का अर्थ भी रक्त का संचार करने वाला हृदय नाम का अंग नहीं। हृदय या हृद्देश का अर्थ व्यक्ति का वह केन्द्र है, जो प्रकृति से ऊपर अव्यक्त है, किन्तु प्रत्येक स्थूल देह में रहता अवश्य है। उसी के कारण तो चेतना और प्राण की सत्ता है। वही चेतन पुरुष; स्मृति, ज्ञान और संशयनिवारण का कारण है। स्मृति आदि के स्थूल अंग तो शरीर में हैं जिन्हें हम मस्तिष्क आदि के रूप में जानते हैं, किन्तु उनका वास्तविक कारण चेतना ही है।

वेदविद्या का एकमात्र सार; वैश्वानर पुरुष या चैतन्य का ज्ञान करना ही है। वेदों की यही शैली है कि वह प्राकृत भूतों या पदार्थों का वर्णन करते हुए उनमें अनुस्यूत देव तत्त्व पर बारम्बार दृष्टि ले जाते हैं। भूतों में देव की सत्ता यही वेद के ज्ञान का मर्म है। वह देव तत्त्व ही ईश्वर तत्त्व है, जिसे अनेक नामों से पुकारा जाता है।

क्षर और अक्षर पुरुष

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।

भीष्म०-39/16

इस जगत् में क्षर-नाशवान् और अक्षर-अविनाशी ये दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सभी प्राणियों के शरीर तो नाशवान् हैं और सर्वोच्च स्थित जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पंचभूतों को क्षर कहा जाता है और इन भूतों के समूह या शरीर में रहने वाला अक्षर कहलाता है। वही जीव है। क्षर-प्रकृति और अक्षर-जीव इन दोनों से ऊपर जो उत्तम पुरुष, अव्यय ईश्वर है, वही परमात्मा है।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।

भीष्म०-39/17

इन क्षर और अक्षर पुरुषों से उत्तम पुरुष तो अलग ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। इसे अविनाशी ईश्वर और परमात्मा कहा जाता है।

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

भीष्म०-39/18

क्योंकि मैं नाशवान् जड़ पदार्थों से सर्वथा अलग हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी श्रेष्ठ हूँ इसीलिये लोक में और वेद में मुझे पुरुषोत्तम कहा जाता है।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत।।

भीष्म०-39/19

जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार मुझ पुरुषोत्तम को जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से मुझ परमेश्वर की ही उपासना और आराधना करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।।

भीष्म०-39/20

हे निष्पाप भरतवंशी! मैंने यह अत्यन्त गूढ़ रहस्यमय शास्त्रीय ज्ञान तुम्हें दिया, इसे भलीभांति हृदयंगम करके मनुष्य बुद्धि मान और कृतार्थ हो जाता है।

सोलहवां अध्याय–दैवासुर सम्पद् विभाग योग
श्रीकृष्ण दैवी सम्पत्ति

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

भीष्म०-40/1

भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञान के लिये ध्यान करते रहना, दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुपत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।

भीष्म०-40/2

अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, त्याग, शान्ति, चुगलखोरी न करना, प्राणियों पर दया, लालच न करना, मीठा व्यवहार, लज्जा, चंचलता न होना।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

भीष्म०-40/3

तेजस्विता, क्षमा, धैर्य, मन, वचन, कर्म और शरीर की शुचिता, किसी के प्रति वैरभाव न रखना, अभिमान न करना ये गुण दैवी सम्पत्ति कहलाते हैं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।

भीष्म०-40/4

ढोंग, घमण्ड और अहंकार, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान ये आसुरी सम्पत्ति के लक्षण हैं।

दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।

भीष्म०-40/5

दैवी गुणों से मुक्ति और आसुरी गुणों से बन्धन प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू शोक मत कर। क्योंकि तू दैवीय गुणों के साथ उत्पन्न हुआ है।

आसुरी स्वभाव

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।।

भीष्म०-40/7

आसुरी स्वभाव के लोग न तो यह जानते हैं कि क्या करना चाहिये और न ही यह समझ पाते हैं कि क्या नहीं करना चाहिये। न उनमें पवित्रता का भाव होता है और न सदाचार के अनुसार जीवन। उनके व्यवहार में सच्चाई भी नहीं होती।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम्।।

भीष्म०-40/8

वे संसार में ईश्वर की सत्ता नहीं मानते और कहते हैं कि इस संसार की आधारशिला भी नहीं है। यहाँ तो सारा व्यवहार झूठ पर ही चलता है। इस जगत् की उत्पत्ति स्त्री पुरुष की कामवासना के कारण हुई है। इसके सिवाय और क्या है? यहाँ किसी को किसी से कोई मतलब नहीं।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।।

भीष्म०-40/9

इस मिथ्या दृष्टिकोण को अपना कर उग्र और निष्ठुर कामों में लगे रहते हैं। इन कामों से संसार का भला न होकर नाश ही होता है। आसुरी स्वभाव के लोग मन्दबुद्धि और विवेकशून्य होते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।

भीष्म०-40/10

वे ढोंग, झूठे अभिमान और अहंकार से भरकर कभी पूरी न हो सकने वाली कामनाएं करते रहते हैं। वे बुरी बातें पूरी करने का आग्रह करते हैं और भ्रष्ट उपायों का सहारा लेकर संसार में रहते हैं।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।।

भीष्म०-40/11

वे मृत्युपर्यन्त पूरी न हो सकने वाली असंख्य इच्छाएं करते रहते हैं। वे विषय भोगों में फंसे रहते हैं और इन भोगों को ही जीवन का सुख मानते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थ संचयान्।।

भीष्म०-40/12

वे अपने चारों ओर आशाओं और कामनाओं का जाला बुनते रहते हैं। काम और क्रोध से भरे रहते हैं। विषय भोगों के लिये अन्याय से और बेइमानी से धन आदि बटोरना चाहते हैं।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।।

भीष्म०-40/13

आज मैंने यह वस्तु पा ली, कल मेरी यह इच्छा भी पूरी हो जायेगी। इतना पैसा मेरे पास है और इससे अधिक धन आगे हो जायेगा।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।।

भीष्म०-40/14

आज मैंने इस शत्रु को मार डाला, कल दूसरे शत्रुओं को भी मार डालूंगा। मैं सबका मालिक हूँ। मैं बलवान्, सुखी, भोगी और सफल व्यक्ति हूँ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।

भीष्म०-40/15

मैं रईस और कुलीन हूँ। मेरे बराबर कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूंगा और मौज करूँगा। ये लोग इस तरह के मोह जाल में फंसे रहते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजाल समावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।

भीष्म०-40/17

उनका मन अनेक बातों में भागता रहता है। अज्ञान के कारण मोह जाल में उलझे रहते हैं। विषय भोगों में लगे रहते हैं। ऐसे असुर अपवित्र नरक में गिरते हैं।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।

भीष्म०-40/17

वे अपने आप को श्रेष्ठ मानते हैं। ऐसे निष्ठुर लोग धन और सम्मान के नशे में चूर रहते हैं। और पाखण्डपूर्वक नाममात्र के यज्ञ शास्त्रीय विधि के बिना करते हैं।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।

भीष्म०-40/18

अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध का सहारा लेकर वे बुरे कामों में फंसे रहते हैं। वे लोगों की निन्दा करते हैं। वे अपने से, मुझसे और परायों से द्वेष करते हैं।

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।

भीष्म०-40/19

उन द्वेष करने वाले, क्रूर और नीच पुरुषों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही जन्म देता हूँ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।।

भीष्म०-40/20

हे अर्जुन! ऐसे मूर्ख लोगों को जन्म-जन्म में आसुरी योनि ही मिलती है। वे मुझे न पाकर अधम योनियों में नीच योनियों में पड़े रहते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

भीष्म०-40/21

काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के दरवाजे हैं। ये तीनों आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसे अधोगति में ले जाने वाले हैं। इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।

भीष्म०-40/22

इन अन्धकारपूर्ण तीनों द्वारों से छूटने पर मनुष्य अपने कल्याण के मार्ग पर चलने लगता है और कल्याण मार्ग का पथिक बनकर परमगति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।

सत्रहवां अध्याय-श्रद्धात्रय विभाग योग

अर्जुन : **ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।**
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।

भीष्म०-41/1

हे कृष्ण! जो लोग शास्त्रीय विधि से यज्ञ नहीं करते किन्तु जिनके मन में यज्ञ के प्रति श्रद्धा होती है उनकी स्थिति सात्विक होती है, राजसिक होती है या तामसिक? यह मुझे बताइये।

श्रीकृष्ण : त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु।।

भीष्म०-41/2

मनुष्यों की स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन प्रकार की होती है। इस बारे में तुम मेरी बात सुनो।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

भीष्म०-41/3

हे भरतवंशी! मनुष्य का सत्त्व अर्थात् मन जैसा कर्म करना चाहता है उसी को उसकी श्रद्धा कहते हैं। व्यक्ति में श्रद्धा का भाव होता है। उसमें जैसी श्रद्धा होती है उसी के जैसा उसका कर्म होता है।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।।

भीष्म०-41/4

सात्त्विक वृत्ति के लोग देवों की पूजा करते हैं, राजसिक लोग यक्षों और राक्षसों की तथा तामसिक व्यक्ति भूत प्रेतों की पूजा करते हैं।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।।

भीष्म०-41/5

जो लोग शास्त्रीय विधि से रहित ढोंग, अहंकार में भरकर और कामनाओं, आसक्तियों और बल के घमण्ड से घोर तप करते हैं।

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान्।।

भीष्म०-41/6

जो शरीर के पंचमहाभूतों को और अन्तःकरण में स्थित मुझको कष्ट देते हैं वे निश्चित रूप से आसुरी स्वभाव के लोग होते हैं।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु।।

भीष्म०-41/7

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों का भोजन, यज्ञ, तप और दान भी उनकी प्रवृत्ति और स्वभाव के अनुसार तीन तरह का होता है।

सात्त्विक भोजन

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।

भीष्म०-41/8

सात्त्विक आहार वह है जिससे आयु, मानसिक शक्ति, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति बढ़ती है। सात्विक भोजन; रसीले, घी आदि चिकने पदार्थों वाले, शरीर में देर तक असर करने वाले और मन को रुचिकर होते हैं।

राजसिक भोजन

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहाराः राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।

भीष्म०-41/9

कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, तीखे, रूखे और जलन पैदा करने वाले पदार्थ राजसिक लोगों को अच्छे लगते हैं। इन्हें खाने से दुःख, चिन्ता और रोग पैदा होते हैं।

तामसिक भोजन

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।

भीष्म०-41/10

अधपका, रसरहित, दुर्गन्ध युक्त, बासी, झूठा और अपवित्र भोजन तामसिक लोगों को अच्छा लगता है।

सात्त्विक यज्ञ : अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।

भीष्म०-41/11

सात्त्विक यज्ञ वह है जो किसी इच्छा के बिना विधिपूर्वक किया जाता है। यज्ञ करना मेरा कर्त्तव्य है ऐसा सोचकर ही सात्त्विक यज्ञ किया जाता है।

राजसिक यज्ञ

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।

भीष्म०-41/12

हे श्रेष्ठ भरतवंशी! राजसिक यज्ञ वह है जो किसी फल को पाने के लिये और पाखण्ड के लिये किया जाता है।

तामसिक यज्ञ

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।

भीष्म०-41/13

शास्त्रविधि से हीन, अन्नदान से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किये जाने वाले यज्ञ को तामस कहते हैं।

शारीरिक तप

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

भीष्म०-41/14

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी पुरुषों का आदर सत्कार, शरीर की शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य पालन और अहिंसा का आचरण करना शारीरिक तप कहलाता है।

वाणी का तप

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

भीष्म०-41/15

किसी का दिल न दु:खाने वाली, सच्ची, अच्छी लगने वाली और हितकारी बात कहना, शास्त्रों का पढ़ना और जप आदि का अभ्यास वाणी का तप होता है।

मानसिक तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

भीष्म०-41/16

मन को प्रसन्न रखना, सौम्यभाव से रहना, मौन-पालन, आत्म संयम और अन्तःकरण के भावों की पवित्रता मानसिक तप कहलाता है।

सात्त्विक तप

श्रद्धया परयातप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।।

भीष्म०-41/17

फल न चाहने वाले एकाग्र मन वाले पुरुषों द्वारा परमश्रद्धा से जो शारीरिक, मानसिक और वाचिक तप किया जाता है वह सात्त्विक होता है।

राजसिक तप

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।

भीष्म०-41/18

तो तपस्या अपने सम्मान, आदर और पूजा के लिये तथा अहंकारपूर्वक की जाती है वह राजसिक होती है। इसका फल अनिश्चित और अस्थिर होता है।

तामसिक तप

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्।।

भीष्म०-41/19

जो तपस्या मूर्खतापूर्वक हठ से की जाती है और जिससे शरीर, वाणी और मन को कष्ट होता है तथा दूसरों को नष्ट करने के लिये की जाती है ऐसी तपस्या तामसिक होती है।

सात्त्विक दान

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।

भीष्म०-41/20

दान देना ही चाहिये इस भावना से जो दान अपना उपकार न करने वाले योग्य व्यक्ति को उचित समय और उचित स्थान पर दिया जाता है वह सात्त्विक दान होता है।

राजसिक दान

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद् दानं राजसं स्मृतम्।।

भीष्म०-41/21

जो दान अपनी इच्छा के बिना भय आदि के कारण या किसी से अपना काम निकालने के उद्देश्य से या किसी फल की इच्छा से दिया जाता है वह राजसिक दान होता है।

तामसिक दान

अदेशकाले यद् दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम्।।

भीष्म०-41/22

जो दान आदर सत्कार के बिना और तिरस्कार के साथ गलत स्थान पर, अनुचित समय पर और कुपात्र को दिया जाता है वह तामसिक दान होता है।

ओ३म् तत् सत्

ओ३म् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।

भीष्म०-41/23

'ओ३म् तत् सत्' ये तीनों शब्द ब्रह्म के ही नाम हैं। उसी ब्रह्म ने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्राह्मणों अर्थात् सभी मनुष्यों, वेदों और यज्ञों को बनाया था।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।।

भीष्म०-41/24

इसलिये जो लोग ब्रह्म की सत्ता में विश्वास रखते हैं वे ओ३म् का उच्चारण करके विधिपूर्वक यज्ञ, दान और तपस्या प्रारम्भ करते हैं।

तदित्यभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।

भीष्म०-41/25

'तत्' (वह) कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब कुछ है, इस भावना से फल की इच्छा न करके नाना प्रकार की यज्ञ, दान और तप आदि क्रियाएं कल्याण की इच्छा वाले मनुष्यों द्वारा की जाती हैं।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।

भीष्म०-41/26

'सत्' परमात्मा के इस नाम का अभिप्राय है कि ब्रह्म श्रेष्ठ है और उसकी सत्ता है इसलिये हे अर्जुन! उत्तम कर्मों में भी सत् शब्द प्रयुक्त होता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।

भीष्म०-41/27

यज्ञ, दान और तप में मनुष्य की जो स्थिति है वह भी सत् कहलाती है। ब्रह्म के लिये किया गया प्रत्येक कर्म निश्चय ही सत् कहा जाता है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह।।

भीष्म०-41/28

हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किये हुए यज्ञ, दान और और तप तथा अन्य सभी कर्मे को असत् कहा जाता है। ऐसे कर्मों का न तो इस लोक में और न परलोक में फल मिलता है। वेद, यज्ञ और ब्रह्म तत्त्व से मिलकर बनी जीवन की सात्त्विक धारा 'ओ३म् तत् सत्' से प्रकट हुई है। जो इस धारा को नहीं मानते उनके लिये इन तीन शब्दों का कोई महत्त्व नहीं। सद्भाव के विपरीत जीवन में जो कुछ है वह असद्भाव है जिसका इस लोक और परलोक में कोई सार नहीं।

अट्ठारहवां अध्याय–मोक्ष संन्यास योग

अर्जुन : **संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।**
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन।।

भीष्म०-41/1

हे महाबाहु! हे इन्द्रियजयी! हे केशिनाशक वासुदेव! मैं संन्यास योग अर्थात् कर्मत्याग और कर्मयोग अर्थात् कर्मफल त्याग का तत्त्व अलग से जानना चाहता हूँ।

श्रीकृष्ण : काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।

भीष्म०-42/2

बुद्धिमान तत्त्वदर्शी लोग संन्यास का लक्षण काम्य कर्मों (स्त्री धन आदि की प्राप्ति) को छोड़ देना बताते हैं तथा त्याग की परिभाषा सब कर्मों के फल का त्याग बतलाते हैं।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।।

भीष्म०-42/3

कुछ विद्वान् कहते हैं कि प्रत्येक कर्म में कुछ न कुछ दोष है अतः कर्म नहीं करने चाहिये। किन्तु कुछ का विचार है कि यज्ञ, दान और तप नहीं छोड़ने चाहिये।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

भीष्म०-42/5

किन्तु मेरा निश्चित मत यही है कि यज्ञ, दान और तप अवश्य करने चाहियें। इन्हें नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि यज्ञ, दान, तप बुद्धिमानों को पवित्र करते हैं।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।

भीष्म०-42/6

हे अर्जुन! यज्ञ, दान और तप अवश्य करने चाहियें। यह मेरा निश्चित मत है किन्तु इन कर्मों के फल की आसक्ति से अपने को दूर रखना चाहिये।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।।

भीष्म०-42/7

प्रत्येक मनुष्य के वर्ण, स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार उसके लिये यज्ञ, दान आदि कुछ कर्म निश्चित हैं। इसी प्रकार शरीर निर्वाह के लिये भी कुछ काम करने होते हैं इसलिये इन्हें छोड़ा ही नहीं जा सकता। फिर भी यदि कोई व्यक्ति

आलस्य के कारण कर्मों को झंझट समझकर छोड़ देता है तो ऐसा त्याग सच्चा त्याग न होकर तामसी त्याग होता है।

दुःखमित्येव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।

भीष्म०-42/8

जो व्यक्ति शरीर को कष्ट न देने के लिये कर्म नहीं करता तो ऐसे राजसिक त्याग का कोई लाभ नहीं होता।

कार्यमित्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।।

भीष्म०-42/9

हे अर्जुन! जो हमारे लिये नियत कर्म है उसे करना ही चाहिये, किन्तु उसके फल में आसक्ति या लगाव रखना ही नहीं चाहिये। यही सात्त्विक त्याग है।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।।

भीष्म०-42/11

कोई व्यक्ति कितना भी चाहे वह सब कर्मों को नहीं छोड़ सकता, अतः कर्मफल छोड़ने वाला व्यक्ति ही सच्चा त्यागी कहलाता है।

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।

भीष्म०-42/14

कोई भी काम करने के लिये पांच बातें होती हैं। पहली कर्त्ता या कर्म करने वाला, दूसरी अधिष्ठान या शरीर अर्थात् जिससे कर्म किया जाता है। तीसरी करण जिसकी सहायता से कर्म किया जाये या कार्य का साधन अथवा उपाय। चौथी वह चेष्टा या क्रिया जो कर्म का स्वरूप है और पांचवीं बात दैवी शक्ति या भाग्य है जो कर्म को प्रभावित करता ही है।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।।

भीष्म०-42/16

जो व्यक्ति केवल अपने को कर्त्ता मानता है वह अशुद्ध बुद्धि होने के कारण मूर्ख मनुष्य असलियत नहीं समझता। वह अहंकारी होता है।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते।।

भीष्म०-42/17

जिसके मन में कर्म करते हुए अहंकार का भाव नहीं आता और जो व्यक्ति उस कर्म के फल में अपनी बुद्धि को लिप्त नहीं होने देता, वही ठीक कर्त्ता है। ऐसा व्यक्ति इन सब लोकों को मारकर भी वास्तव में किसी को नहीं मारता और न ही पाप से बंधता है।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः।।

भीष्म०-42/18

किसी कर्म के दो अंग होते हैं कर्मचोदना अर्थात् मन में कर्म करने की प्रेरणा और कर्मसंग्रह अर्थात् कर्म करना। कर्म की प्रेरणा के तीन भाग होते हैं एक कर्म के सम्बन्ध में विचार करने वाला व्यक्ति (परिज्ञाता), दूसरा जो विचार करता है (ज्ञान) और तीसरा वह जिस लक्ष्य या उद्देश्य से विचार करता है (ज्ञेय)। इन तीन अंगों से कर्म किया जाता है उसके भी तीन अंग हैं : एक तो करने वाला (कर्त्ता), दूसरे कर्म करने में सहायता देने वाले साधन (करण) और तीसरा जो कुछ किया जाता है उसका प्रत्यक्ष रूप (कर्म)।

इनमें ज्ञान, कर्म और कर्त्ता; सत्त्व, रज और तम के अनुसार तीन-तीन तरह के होते हैं।

सात्त्विक ज्ञान

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।

भीष्म०-42/20

सात्त्विक या उत्तम ज्ञान वह है जिसमें कर्म की प्रेरणा या भावना सब प्राणियों में एक अविनाशी ईश्वर की सत्ता मानकर होती है। अलग-अलग प्राणियों में उसे एक ही ईश्वर दिखाई देता है।

राजसिक ज्ञान

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।

भीष्म०-42/21

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सभी प्राणियों में नाना प्रकार के अलग-अलग भाव या स्वरूप देखता है। ऐसा ज्ञान राजसिक होता है।

तामसिक ज्ञान

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत् तामसमुदाहृतम्।।

भीष्म०-42/22

जो व्यक्ति पंचभूतों के कार्य अर्थात् पंचभूतों से बने अपने शरीर को ही सब कुछ समझता है और उसमें आसक्त रहता है ऐसा ज्ञान तामस होता है क्योंकि ऐसा समझना बिना कारण के और तत्त्व-विवेक के बिना होता है और तुच्छ होता है।

सात्त्विक कर्म

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत् सात्विकमुच्यते।।

भीष्म०-42/23

जो नियत अर्थात् आवश्यक है, जो संगरहित भाव से किया जाता है। जिसमें राग-द्वेष नहीं होता और जो फल की आसक्ति के बिना किया जाता है। वह सात्त्विक कर्म होता है।

राजसिक कर्म

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद् राजसमुदाहृतम्।।

भीष्म०-42/24

जो काम किसी इच्छा से और अहंकारपूर्वक किया जाता है और जिसे करने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है वह राजसिक कर्म होता है।

तामसिक कर्म

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत् तामसमुच्यते।।

भीष्म०-42/25

जो कर्म; परिणाम, हानि और हिंसा तथा अपनी सामर्थ्य का विचार किये बिना मोह से किया जाता है वह तामसिक कहलाता है।

सात्त्विक कर्त्ता

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।

भीष्म०-42/26

जिसमें संग नहीं है। अहंकार नहीं है। जो धैर्य और उत्साह से भरा है। सफलता और असफलता का जिस पर कोई प्रभाव नहीं होता। ऐसा कर्त्ता सात्त्विक होता है।

राजसिक कर्त्ता

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।।

भीष्म०-42/27

आसक्ति या राग युक्त, कर्मफल को चाहने वाला, लोभी, हिंसक, गलत काम करने वाला और हर्ष तथा शोक से भरा हुआ राजसिक कर्ता होता है।

तामसिक कर्ता

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।।

भीष्म०-42/28

काम की उपेक्षा करने वाला, ओछा, ढीठ, दुष्ट, बुरे आचरण वाला, आलसी, काम में ढील देने वाला और रोने-धोने वाला तामसिक कर्ता होता है।

सात्त्विक बुद्धि

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।

भीष्म०-42/30

जो बुद्धि यह जानती है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। भय और अभय को, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को तथा बन्धन और मोक्ष को समझने वाली बुद्धि सात्त्विक होती है।

राजसिक बुद्धि

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।

भीष्म०-42/31

हे अर्जुन! जो बुद्धि धर्म और अधर्म को तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को भलीभांति नहीं समझती ऐसी राजसी बुद्धि या समझ होती है।

तामसिक बुद्धि

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।

भीष्म०-42/32

हे अर्जुन! तामसिक बुद्धि अधर्म के काम को अज्ञान के कारण धर्म समझ लेती है और हर बात को उलटे ढंग से सोचती है।

सात्त्विक धृति

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।

भीष्म०-42/33

धृति का अर्थ है धैर्य। इस गुण के कारण मनुष्य हाथ में लिये हुए काम को दृढ़ चित्त रहकर पूरा करता है। मन, प्राण और इन्द्रियों को एकाग्रता से साध कर जो उन्हें डांवाडोल नहीं होने देती, वह सात्त्विक धृति कहलाती है।

राजसिक धृति

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।।

भीष्म०-42/34

जो धर्म, अर्थ और काम की बातें अपनाकर फल की आसक्ति से प्रवृत्त होती है वह रजोगुणी धृति है।

तामसिक धृति

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।।

भीष्म०–42/35

जिसमें निद्रा, भय, शोक, दुःख और मद न छूट पाते हों, दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष की ऐसी धृति तामसिक होती है।

सात्विक सुख

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।

भीष्म०–42/37

जो पहले विष और पीछे अमृत जैसा लगे वह सात्त्विक सुख होता है। यह सुख परमात्मा में लगी बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होता है।

राजसिक सुख

विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्।।

भीष्म०–42/38

जिसमें इन्द्रियां विषयों का भोग करती हुई पहले सुख मानती हैं और बाद में दुःख उठाती हैं वह राजसिक सुख होता है।

तामसिक सुख

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्य प्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।

भीष्म०–42/39

जिसमें पहले भी और पीछे भी केवल मोह या घबराहट ही हाथ लगे वह तामसिक सुख है। ऐसा सुख; निद्रा, आलस्य और प्रमाद से होता है।

ब्राह्मण के कर्त्तव्य

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।

भीष्म०–42/42

शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और ईश्वर में विश्वास ये ब्राह्मणत्व के लक्षण हैं।

क्षत्रिय के कर्त्तव्य

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

भीष्म०-42/43

शूरवीरता, तेजस्विता, धैर्य, युद्ध में दक्षता और मैदान छोड़कर न भागना, दान देना और राज्य शक्ति ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।

वैश्य और शूद्र के कर्त्तव्य

कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।

भीष्म०-42/44

खेती, गोपालन और वाणिज्य वैश्यों के स्वाभाविक काम हैं। शूद्र का स्वाभाविक कर्म सेवा करना है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

भीष्म०-42/46

जिस परमेश्वर ने यह संसार रचा है और जिसने प्राणियों को उत्पन्न किया है उसी एक तत्त्व की उपासना मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों से करता है और उन कर्मों से एक समान सफलता पाता है।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृत्ताः।।

भीष्म०-42/48

अपने स्वाभाविक कर्म में कुछ कमी भी जान पड़े तो उसे छोड़ना नहीं चाहिये। क्योंकि जैसे आग में धुआं भी होता है वैसे ही प्रत्येक काम में कोई न कोई दोष होता है।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।।

भीष्म०-42/49

जब कर्म करने वाला व्यक्ति अनासक्त बुद्धि, जितेन्द्रिय और इच्छारहित हो जाता है तब वह कर्म न करने की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। ऐसी सिद्धि कर्म संन्यास योग से मिलती है।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।

भीष्म०-42/50

इस सिद्धि को पाकर ब्रह्मप्राप्ति होने पर जो दशा होती है और जो ज्ञान की चरम निष्ठा है, हे अर्जुन! उसे तू संक्षेप से सुन।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।

भीष्म०-42/51

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यान योगपरो नित्यं वैराग्यमुपाश्रितः।।

भीष्म०-42/52

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

भीष्म०-42/53

निर्मल बुद्धि से युक्त होकर धैर्य के साथ आत्म संयम करके, शब्दादि पांचों विषयों को दूर हटाकर, राग-द्वेष से मुक्त होकर, एकान्त सेवन, अल्पाहार, शरीर, वाणी और मन पर नियन्त्रण, वैराग्य की भावना में सदा मग्न और ध्यान मग्न रहने से व्यक्ति ब्रह्म जैसा ही हो जाता है। वह अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और परिग्रह (संग्रह) की वृत्ति को छोड़कर मोह ममता से रहित होकर शान्त बन ब्रह्म को पा लेता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

भीष्म०-42/54

ब्रह्मभूत व्यक्ति अपने आत्मा के आनन्द में डूबा हुआ किसी बात का शोक नहीं करता और न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह सब प्राणियों के प्रति एक जैसी भावना रखता हुआ ईश्वर की परम भक्ति में लगा रहता है।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।।

भीष्म०-42/57

हे अर्जुन! बुद्धियोग (कर्मयोग) को अपना कर और अपने मन से सब कर्मों के फल को मेरे अर्पण करके अपने चित्त में सदा मेरा ध्यान कर।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि।
अथ चेत् त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।।

भीष्म०-42/58

ईश्वर का सदा स्मरण करता हुआ तू मेरी कृपा से अपनी सभी कठिनाइयों को पार कर लेगा। यदि तू अहंकार के कारण मेरी बात पर ध्यान नहीं देगा और इसका पालन नहीं करेगा तो नष्ट हो जायेगा।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।

भीष्म०-42/59

यदि तुम अहंकार के कारण अपने स्वाभाविक कर्म युद्ध से बचना चाहते हो तो तुम्हारा ऐसा सोचना गलत होगा, क्योंकि प्रकृति (स्वभाव) तुमको युद्ध में लगाकर ही छोड़ेगी।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत्।।

भीष्म०-42/60

अपने स्वाभाविक कर्म से बचकर तुम मोहवश कर्म नहीं करना चाहते हो। किन्तु यह नहीं हो सकता। तुम्हें विवश होकर अपना कर्म करना ही पड़ेगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

भीष्म०-42/61

हे अर्जुन! ईश्वर सबके हृदय में है। वह अपनी मायाशक्ति से प्राणियों को ऐसे घुमाता है जैसे वे चाक पर चढ़े हुए घूम रहे हों।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्यसि शाश्वतम्।।

भीष्म०-42/62

हे अर्जुन! इसलिये तुम सब प्रकार से उसी ईश्वर की शरण में जाओ। उनकी कृपा से तुम्हें स्थायी शान्ति तथा परमधाम प्राप्त होगा।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।

भीष्म०-42/63

मैंने तुम्हें अत्यन्त गूढ़ ज्ञान बता दिया। इस पर पूरी तरह विचार करके तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

भीष्म०-42/65

अपना मन मुझमें लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरे लिये भजन करो, मुझे ही प्रणाम करो तो तुम मेरे पास आ जाओगे। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। तुम मेरे प्रिय हो।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

भीष्म०-42/66

सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं सब पापों से तुम्हें छुड़ा दूंगा। शोक मत करो।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।।

भीष्म०-42/72

हे अर्जुन! क्या तुमने मेरा यह उपदेश एकाग्र मन से सुना? और इसे सुनकर क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न मोह दूर हुआ?

अर्जुन : **नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।**
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

भीष्म०-42/73

हे कृष्ण! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे अपने स्वरूप का ठीक स्मरण हो आया है। अब मेरे मन में कोई सन्देह शेष नहीं रह गया है और मैं आपके वचन का पालन करूँगा।

31
भीष्म-वध

गीता का उपदेश सुनकर अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो गया। युद्ध आरम्भ होने ही वाला था कि युधिष्ठिर के मन में श्रद्धा का भाव जाग उठा। उन्होंने सोचा कि भीष्म पितामह और गुरु द्रोणाचार्य की अनुमति और आशीर्वाद के बिना युद्ध करना ठीक नहीं। वे रथ से उतर कर पैदल ही कवच और शस्त्र छोड़कर नंगे पैर कौरव सेना की ओर चले और भीष्म के पास पहुँच कर उन्हें प्रणाम करके युद्ध के लिये उनकी अनुमति और आशीर्वाद मांगा। भीष्म उनके इस आचरण से द्रवित हो गये और आत्मग्लानि का अनुभव करते हुए उन्होंने कौरवों के पक्ष में अपनी स्थिति का समाधान इस प्रकार किया 'हे युधिष्ठिर! पुरुष, अर्थ का दास होता है, किन्तु अर्थ (पैसा) किसी का दास नहीं। कौरवों ने मुझे अर्थ के द्वारा बांध लिया है। मुझे तो उनके लिये युद्ध करना ही है। तुम और क्या चाहते हो? युधिष्ठिर ने कहा 'पितामह, आप अवश्य कौरवों की ओर से ही लड़ें, परन्तु यदि आप मेरा हित सोचते हों तो कृपया बतायें कि आप जैसे अपराजेय वीर को हम कैसे जीत सकते हैं? भीष्म ने कुछ सोचकर स्पष्ट कहा कि 'जब मैं युद्ध में उतरूँगा तो कोई पुरुष मुझे नहीं जीत सकेगा। युधिष्ठिर ने इस वाक्य का अर्थ समझ लिया और इसी कारण शिखण्डी को भीष्म के सामने खड़ा किया गया।

युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अपने मामा मद्र के राजा शल्य से भी अनुमति और आशीर्वाद प्राप्त किया। इसी बीच कृष्ण ने भी कर्ण के पास जाकर उससे पाण्डवों के पक्ष में आने का एक बार फिर अनुरोध किया और कहा 'हे कर्ण, मैंने सुना है कि भीष्म के जीते जी तुम युद्ध नहीं करोगे। इसलिये जब तक भीष्म नहीं मारे जाते तब तक तुम हमारे पक्ष में आ जाओ फिर दुर्योधन के पक्ष में चले जाना। पर कर्ण ने स्पष्ट कहा 'मैं दुर्योधन के अहित में कुछ नहीं करूँगा।'

भीष्म ने पाण्डवों के साथ दस दिन तक युद्ध किया। पहले दिन के युद्ध में विराट के दो पुत्र उत्तर और श्वेत; शल्य और भीष्म द्वारा मारे गये। पहले दिन के युद्ध में अपने पक्ष की हानि देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठे, पर कृष्ण ने उन्हें धैर्य धारण करने को कहा।

दूसरे दिन भीष्म और अर्जुन तथा द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के बीच भयंकर युद्ध हुआ। तीसरे दिन पाण्डव सेना के पराक्रम से कौरव सेना में भगदड़ मच गई। तब दुर्योधन ने भीष्म को उलाहना देते हुए कहा कि आपकी छिपी हुई सहानुभूति पाण्डवों की ओर है। इस आक्षेप को दूर करने के लिये भीष्म ने ऐसा अद्‌भुत पराक्रम दिखाया कि कृष्ण अपनी प्रतिज्ञा भूलकर भीष्म को मारने के लिये रथ-चक्र लेकर दौड़े। उस दिन कौरव सेना की हार हुई।

चौथे दिन भीष्म और अर्जुन के बीच द्वैरथ युद्ध हुआ। अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न और घटोत्कच ने पराक्रम दिखाया। किन्तु भीम ने हाथी सेना को नष्ट करके और भीष्म से युद्ध करके अपने बल का परिचय दिया। चौथे दिन युद्ध का झुकाव कौरवों के विरुद्ध रहा।

पांचवें दिन दुर्योधन बहुत घबराया हुआ था। इस दिन भीष्म और भीम, भीष्म और अर्जुन, विराट और भीष्म, अश्वत्थामा और अर्जुन, दुर्योधन और भीम तथा अभिमन्यु और लक्ष्मण (दुर्योधन के पुत्र) ने डटकर युद्ध किया। भूरिश्रवा ने सात्यकि के दस पुत्रों को मार डाला।

छठे दिन धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य तथा भीम और दुर्योधन के बीच घमासान युद्ध हुआ पर दुर्योधन हार गया। सातवें दिन विराट ने द्रोणाचार्य को ललकारा। शिखण्डी और अश्वत्थामा, सात्यकि और अलम्बुष, धृष्टद्युम्न और दुर्योधन, भीम और कृतवर्मा के बीच भी संग्राम हुआ। नकुल और सहदेव ने शल्य को हरा दिया। युधिष्ठिर ने राजा श्रुतायु को पराजित किया। भूरिश्रवा से धृष्टकेतु तथा अभिमन्यु से चित्रसेन हार गये।

आठवें दिन घटोत्कच ने दुर्योधन और द्रोण आदि के साथ युद्ध किया। उसकी माया से मोहित होकर कौरव सेना भागने लगी। आठवें दिन की भयानक स्थिति से चिन्तित होकर दुर्योधन ने भीष्म से कहा 'पितामह या तो आप पाण्डवों को मारिये या कर्ण को युद्ध के लिये आज्ञा दीजिये। भीष्म ने दुर्योधन को समझाया और स्वयं भीषण युद्ध करने की प्रतिज्ञा की।

अगले दिन शुरू में पाण्डव सेना का पक्ष प्रबल रहा। यह देख भीष्म ने अपना पूरा पराक्रम दिखाया। इससे पाण्डव सेना में भगदड़ मच गई। कृष्ण इसे सहन नहीं कर सके। वे रथ से कूद कर भीष्म की ओर दौड़े। उन्हें सन्देह था कि अर्जुन पूरे मन से नहीं लड़ रहा है। अर्जुन ने कृष्ण को रोककर उन्हें उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराया और आश्वासन दिया कि मैं अपने बल का पूरा प्रयोग करके भीष्म को हराऊँगा।

रात में पाण्डवों ने सलाह की। दसवें दिन युद्ध प्रारम्भ होने पर अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके भीष्म पर आक्रमण कराया। शिखण्डी की आड़ लेकर अर्जुन ने अपने बाणों से भीष्म को बींध कर रथ से गिरा दिया। भीष्म युद्धभूमि में शर-शय्या पर लेटे हुए प्राण त्याग के लिये उत्तरायण की प्रतीक्षा करने लगे।

संजय : **महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव।**
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः।।

भीष्म०-13/8

भीष्म पितामह वीरता में इन्द्र के समान, स्थिरता में हिमालय जैसे, गम्भीरता में समुद्र के समान और सहनशीलता में पृथ्वी के समान थे।

धृतराष्ट्र : **यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे।**
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहितो युधि।।

भीष्म०-14/26

जिन दुर्जय भीष्म में सत्य, मेधा और नीति ये तीन बड़ी शक्तियां थीं वे युद्ध में कैसे मारे गये?

कृष्ण का क्रोध

ततस्तु कृष्णः समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम्।
सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम्।।

भीष्म०-59/65

जब महाबाहु कृष्ण ने युद्धक्षेत्र में भीष्म का पराक्रम और उनसे लड़ने में अर्जुन की शिथिलता देखी।

अमृष्यमाणः स ततो महात्मा यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता।
उवाच शैनेयमभिप्रशंसन् दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान्।।

भीष्म०-59/83

कौरवों को भी चारों ओर से आक्रमण करता देख श्रीकृष्ण यह परिस्थिति सहन नहीं कर सके। सम्पूर्ण यदुकुल का भरण-पोषण करने वाले श्रीकृष्ण ने वीर सात्यकि से कहा।

न मे रथी सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित्।
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य।।

भीष्म०-59/85

हे सात्वत वीर! आज कौरव सेना का कोई भी रथी क्रोध में भरे हुए मेरे हाथ से बच नहीं सकता। मैं अपना भयंकर सुदर्शन चक्र लेकर महान् व्रतधारी भीष्म के प्राण हर लूंगा।

संकम्पयन् गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम्।
मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम्।।

भीष्म०-59/89

अपने चरणों से पृथ्वी को कंपाते हुए श्रीकृष्ण युद्ध के मद से अन्धे और घमण्ड से युक्त भीष्म की ओर वैसे ही बढ़े जैसे शेर हाथी को मारने के लिये बढ़ता है।

उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं गोविन्दमाजावविमूढचेताः।
एह्येहि देवेश जगन्निवास नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे।।

भीष्म०-59/96

प्रसह्य मां पातय लोकनाथ।
रथोत्तमात् सर्वशरण्य संख्ये।।

भीष्म०-59/97

युद्ध में मोह से रहित भीष्म अनन्त सामर्थ्य से युक्त श्रीकृष्ण से बोले हे देवेश, जगन्निवास! हाथ में चक्र लिये हुए माधव! आपको प्रणाम करता हूँ। आप आइये, आइये और इस रणस्थल में मुझे रथ से गिराकर मार डालिये। आप तो सबकी शरण हैं।

त्वया हतस्यापि ममाद्य कृष्ण श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके।
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात्।।

भीष्म०-59/98

श्रीकृष्ण! आज आपके हाथ से मारे जाने पर भी मेरा इस लोक में और

परलोक में कल्याण ही होगा। अन्धक और वृष्णिकुल के स्वामी वीर श्रीकृष्ण! आपके इस आक्रमण से तीनों लोकों में मेरा गौरव बढ़ गया है।

रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान् पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम्।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः।।
भीष्म०-59/99

मोटी, लम्बी और शक्तिशाली भुजाओं वाले श्रीकृष्ण को तेजी से बढ़ते देख अर्जुन रथ से कूद पड़ा। उसने दौड़कर अपनी विशाल भुजाओं से यदुकुल के श्रेष्ठ वीर श्रीकृष्ण की दोनों भुजाएँ पकड़ लीं।

निगृह्यमाणश्च तदाऽऽदिदेवो भृशं सरोषः किल चात्मयोगी।
आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम्।।
भीष्म०-59/100

आदिदेव आत्मयोगी श्रीकृष्ण बहुत रोष में भरे हुए थे। वे अर्जुन के पकड़ने पर भी नहीं रुके और अर्जुन को उसी तरह खींच कर बढ़ते रहे जैसे आंधी अकेले वृक्ष को गिरा डालती है।

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम्।
बलान्निजग्राह हरिं किरीटी पदेऽथ राजन् दशमे कथञ्चित्।।
भीष्म०-59/101

राजन्! किरीटधारी अर्जुन ने भीष्म की ओर तेजी से बढ़ते हुए श्रीकृष्ण के चरण जोर से पकड़ लिये और उन्हें दसवें कदम पर पहुँचते-पहुँचते जैसे-तैसे रोका।

अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति गतिर्भवान् केशव पाण्डवानाम्।।
भीष्म०-59/102

श्रीकृष्ण के रुक जाने पर सोने का सुन्दर हार पहने हुए अर्जुन ने प्रसन्न होकर उनके चरणों में प्रणाम कर कहा : केशव! आप अपना क्रोध रोकिये। आप ही हम पाण्डवों के एकमात्र आश्रय हैं।

न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाहमिन्द्रानुज सम्प्रयुक्तः।।
भीष्म०-59/103

केशव! मैं अपने पुत्रों और भाइयों की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कर्त्तव्य का पालन करूँगा। अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ूंगा। उपेन्द्र! आपकी आज्ञा से मैं समस्त कौरवों का अन्त कर डालूंगा।

ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह।।

भीष्म०-59/104

अर्जुन की यह प्रतिज्ञा और कर्त्तव्य पूरा करने का निश्चय सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये। वे अर्जुन का प्रिय करने के लिये हाथ में चक्र लिये रथ पर फिर सवार हो गये।

दुर्योधन की चिन्ता

ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम्।।

भीष्म०-97/3

आठवें दिन के युद्ध के बाद दुर्योधन ने सूतपुत्र कर्ण, बलशाली शकुनि और अपने सभी मन्त्रियों से कहा।

द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे।
न पार्थान् प्रतिबाधन्ते न जाने तच्च कारणम्।।

भीष्म०-97/4

द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा ये सब युद्ध में पाण्डवों का भलीभांति मुकाबला नहीं करते। पता नहीं इसका क्या कारण है।

कर्ण

मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव।।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात्।।

भीष्म०-97/7

कर्ण ने कहा! भरतवंशी श्रेष्ठ राजा! आप शोक मत कीजिये। मैं आपका प्रिय करूँगा परन्तु शान्तनु पुत्र भीष्म शीघ्र ही युद्ध से हट जाये।

पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै।
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान् महारथान्।।

भीष्म०-97/10

भीष्म सदा ही पाण्डवों पर दया करते हैं। अतः वे इन महारथियों को युद्ध में नहीं जीत सकते।

दुर्योधनः एवमुक्त्वा ततो राजन् कर्णमाह जनेश्वरः।
अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदां वरम्।।

भीष्म०-97/16

दु:शासन से भीष्म के पास चलने के लिये तैयार होने को कहकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा मैं मनुष्यों में श्रेष्ठ भीष्म को युद्ध से हटने के लिये सहमत करके तुम्हारे पाास अभी आता हूँ।

सम्प्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम्।
अवतीर्य हयाच्चापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वरः।।

भीष्म०-97/34

भीष्म के निवास पर पहुँच कर दुर्योधन घोड़े से उतरा।

उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं वाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः।
त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन।।

भीष्म०-97/36

आंखों में आंसू भरकर, हाथ जोड़कर गद्गद् कण्ठ से दुर्योधन ने भीष्म से कहा, शत्रु विनाशक! हम आपका सहारा लेकर युद्ध में-

उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान्।।

भीष्म०-97/37

इन्द्र सहित देवताओं और दानवों को भी जीत सकते हैं।

दयया यदि वा राजन् द्वेष्यभावान्मम प्रभो।
मन्दभाग्यतया वापि मम रक्षसि पाण्डवान्।।

भीष्म०-97/41

अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम्।
स जेष्यति रणे पार्थान् ससुहृद्गणबान्धवान्।।

भीष्म०-97/42

शक्तिशाली राजन्! यदि पाण्डवों के प्रति दया के कारण या मेरे दुर्भाग्यवश मुझसे द्वेष करने के कारण आप पाण्डवों की रक्षा करते हैं तो समर भूमि में शोभा पाने वाले कर्ण को लड़ने की आज्ञा दे दीजिये। वह बन्धु-बान्धवों सहित पाण्डवों को हरा देगा।

संजय

अब्रवीत् तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि।।

भीष्म०-98/4

घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम्।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया।।

भीष्म०-98/5

भीष्म ने आपके पुत्र से शान्ति के साथ कहा दुर्योधन! तुम मुझे वाग्बाणों से क्यों दुःखी कर रहे हो? मैं शत्रुओं पर विजय पाने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ, तुम्हारा प्रिय करने के लिये युद्ध में अपने प्राण भी होम करने को तैयार हूँ।

को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा।
यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शंखचक्रगदाधरः।।

भीष्म०-98/14

युद्ध में वेगशाली अर्जुन पर कौन विजय पा सकता है जिसके रक्षक शंख-चक्र-गदा धारण करने वाले संसार के रक्षक श्री कृष्ण हैं।

अहं तु सोमकान् सर्वान् पञ्चालांश्च समागतान्।
निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम्।।

भीष्म०-98/19

हे पुरुष सिंह! मैं शिखण्डी को छोड़कर सारे सोमकों और पांचालों को मार डालूंगा।

पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि।
वरदानात् पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी।।

भीष्म०-98/21

शिखण्डी पहले राजभवन में स्त्री के रूप में पैदा हुआ था। बाद में वरदान से पुरुष बन गया अतः मैं इसे स्त्री ही समझता हूँ।

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह।
सृंजयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन्।।

भीष्म०-107/10

नवें दिन के युद्ध के बाद रात होने पर पाण्डव; वृष्णियों और संजय के साथ सलाह करने बैठे।

युधिष्ठिर : जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम्।
जीवितस्याद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम्।।

भीष्म०-107/23

युधिष्ठिर ने कहा मैं जीवन को सब कुछ मानता हूँ किन्तु आज भीष्म के पराक्रम के कारण हमारा जीवन संकट में पड़ गया है। अब मेरे जीवन के जो दिन शेष हैं उनमें मैं उत्तम धर्म का पालन करूँगा।

यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव।
स्वधर्मस्याविरोधेन हितं व्याहर केशव।।

भीष्म०-107/24

केशव! यदि भाइयों सहित मुझ पर आपकी कृपा है तो आप मुझे अपने धर्म के अनुकूल कोई हितकारी सलाह दीजिये।

श्रीकृष्ण : हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम्।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः।।

भीष्म०-107/29

श्रीकृष्ण ने कहा यदि अर्जुन युद्ध में भीष्म को नहीं मारना चाहता है तो मैं कौरवों के देखते-देखते भीष्म को ललकार कर मार डालूंगा।

युधिष्ठिर : न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात्।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव।।

भीष्म०-107/44

हे कृष्ण! मैं अपने बड़प्पन का प्रभाव डालकर आपको झूठा नहीं बनाना चाहता। आप युद्ध किये बिना ही पहले की तरह हमारी सहायता कीजिये।

समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे।
मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन।।

भीष्म०-107/45

मेरी भीष्म जी के साथ यह शर्त हो चुकी है कि वे युद्ध में हमारे हित के लिये सलाह तो देंगे किन्तु हमारी ओर से लड़ेंगे नहीं।

तस्माद् देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः।
भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन।।

भीष्म०-107/47

इसलिये माधव! हम सब आपको साथ लेकर भीष्म जी के पास चलें और उनसे उन्हीं के वध का उपाय पूछें।

एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम् ।
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान्।।

भीष्म०-107/56

वे वीर पाण्डव आपस में सलाह करके श्रीकृष्ण के साथ भीष्म के पास गये।

तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः।
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम्।।

भीष्म०-107/60

उनसे वृद्ध भीष्म पितामह ने पूछा मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ?

उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः।
कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि।।

भीष्म०-107/62

राजा युधिष्ठिर ने दुःखी हृदय से स्नेह के साथ भीष्म पितामह से कहा हे सर्वज्ञ! हम कैसे जीत सकते हैं और हमें राज्य कैसे मिल सकता है?

भीष्म : न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे।
जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।।

भीष्म०-107/70

युधिष्ठिर, तुम सब कुछ जानते हो। मेरे जीते जी युद्ध में तुम्हारी जीत नहीं हो सकती। मैं तुमसे यह सत्य बात कह रहा हूँ।

निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः।
क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम्।।

भीष्म०-107/71

पाण्डवो! मुझे हरा देने पर तुम युद्ध जीत जाओगे। इसलिये यदि युद्ध में विजय चाहते हो तो तुम जल्दी मुझ पर प्रहार करो।

संजय : दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम्।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परंतप।।

भीष्म०-115/10

युद्ध में दस दिन तक पाण्डव सेना का विनाश करते-करते भीष्म पितामह अपने जीवन से ही ऊब गये।

भीष्म : युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः।।

भीष्म०-115/13

बुद्धिमान और सभी शास्त्रों के जानकार युधिष्ठिर मेरी बात सुनो। यह बात धर्मयुक्त है और स्वर्ग प्रदान करने वाली है।

निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनानेन भारत।
घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून् प्राणिनो रणे।।

भीष्म०-115/14

तात भरतनन्दन युधिष्ठिर! मैं इस देह से ऊब गया हूँ, क्योंकि युद्ध में अनेक प्राणियों को मारते हुए ही मेरा समय बीता है।

तस्मात् पार्थं पुरोधाय पञ्चालान् सृंजयांस्तथा।
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम्।।

भीष्म०-115/15

इसलिये यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अर्जुन को तथा पांचालों और सृंजयों को आगे करके मुझे मारने का प्रयत्न करो।

संजय : एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः।।

भीष्म०-119/1

पाण्डवों ने शिखण्डी को आगे करके भीष्म को घेरकर बुरी तरह घायल कर दिया।

स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा।।

भीष्म०-119/4

न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु।

अनेक शस्त्रास्त्रों के प्रहारों से भीष्म का कवच टूट गया। उनके मर्मस्थलों पर बाण लगने लगे किन्तु भीष्म विचलित नहीं हुए।

ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाभ्यधावत।। भीष्म०-119/13
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत्।।

अर्जुन ने क्रोध में भरकर भीष्म पर हमला किया। अर्जुन के आगे शिखण्डी था। अर्जुन ने भीष्म का धनुष तोड़ दिया।

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयोवेगवत्तरम्।
तदप्यस्य शितैर्बाणै स्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः।।

भीष्म०-119/25

भीष्म ने और भी अच्छा धनुष उठा लिया। किन्तु अर्जुन ने तीन पैने बाणों से इस धनुष को भी काट डाला।

एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः।
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परंतपः।।

भीष्म०-119/26

भीष्म अपना धनुष कट जाने पर दूसरा धनुष ले लेते किन्तु क्रुद्ध अर्जुन उनका प्रत्येक धनुष काट देते।

स छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन्।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम्।।

भीष्म०-119/27

धनुष कट जाने से क्रोधित भीष्म मुंह के किनारे चाटने लगे। उन्होंने शक्ति उठाई। यह शक्ति पर्वतों को भी तोड़ देने वाली थी।

तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव।।

भीष्म०-119/28

समादत्त शितान् भल्लान् पञ्च पाण्डवनन्दनः।
तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः।।

भीष्म०-119/29

संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम्।
सा पपात तथा च्छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना।।

भीष्म०-119/30

भीष्म ने वह शक्ति अर्जुन के रथ पर चलाई। वज्र जैसी भयंकर शक्ति को आता देख क्रुद्ध अर्जुन ने भीष्म की भुजाओं से छूटी शक्ति के पांच तीखे बाणों से पांच टुकड़े कर दिये और वह शक्ति जमीन पर गिर पड़ी।

भीष्म

छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः।। भीष्म०-119/
अचिन्तयद् रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः।
शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान्।।

भीष्म०-119/32

यद्येषां न भवेद् गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः।

उस शक्ति को कटकर गिरता देख क्रोध में भरे भीष्म सोचने लगे कि मैं एक धनुष से ही सारे पाण्डवों को मार सकता हूँ यदि श्रीकृष्ण इनकी रक्षा न करें।

कारणद्वयमास्थाय नाहं योत्स्यामि पाण्डवान्।। भीष्म०-119/33
अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः।

मैं दो कारणों से पाण्डवों के साथ नहीं लड़ूंगा। पाण्डु की सन्तान होने के कारण मैं पाण्डवों को नहीं मार सकता, दूसरे शिखण्डी पहले स्त्री था।

पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहम्।। भीष्म०-119/34
स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा।
तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवात्मनः।।

भीष्म०-119/35

जब मैंने पिता जी का विवाह माता सत्यवती से कराया था तब उन्होंने खुश होकर मुझे ये दो वर दिये थे कि मैं जब चाहूँ तब मेरी मृत्यु हो और युद्ध में मुझे कोई मार न सके। आज इस परिस्थिति में मुझे अपनी इच्छा से मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिये। मैं समझता हूँ कि मेरी मृत्यु का समय आ गया है।

ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नात्यवर्तत।। भीष्म०-119/42
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः।।

तब शन्तनु के पुत्र भीष्म ने अर्जुन को जीतने का प्रयत्न नहीं किया यद्यपि उनका शरीर कवच आदि तोड़ देने वाले अर्जुन के तीखे बाणों से छलनी हो रहा था।

संजय : एवं भूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः।
शिताग्रैः फाल्गुनेनाजौ प्राक्शिराः प्रापतद् रथात्।। भीष्म०-119/87
किंचिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम्।

इस तरह आपके ताऊ जी युद्ध क्षेत्र में अर्जुन के तीखे बाणों से बुरी तरह घायल हो गये और वे आपके पुत्रों के देखते-देखते रथ से नीचे गिर पड़े। भीष्म का सिर पूर्व दिशा की ओर था और दिन छिपने में थोड़ी ही देर थी।

हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानां च भारत।। भीष्म०-119/88
पतमाने रथाद् भीष्मे बभूव सुमहास्वनः।

भारत! रथ से भीष्म के गिरते ही पृथ्वी पर खड़े राजा और आकाश में खड़े देवता हाहाकार करने लगे।

सम्पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम्।। भीष्म०-119/89
सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन् हृदयानि नः।

महात्मा भीष्म पितामह को रथ से गिरता देख हम सब लोगों के हृदय भी उनके साथ ही गिर पड़े।

स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन्।। भीष्म०-119/90
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम्।
धरणीं न स पस्पर्श शरसंघैः समावृतः।।
भीष्म०-119/91

महाबाहु भीष्म सभी धनुर्धरों में सर्वश्रेष्ठ थे। वे कटी हुई इन्द्र की ध्वजा की तरह पृथ्वी को गुंजाते हुए ग्रिर पड़े। उनका शरीर बाणों से बिंधा होने के कारण पृथ्वी पर नहीं गिरा।

शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम्।
रथात् प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत्।।
भीष्म०-119/92

रथ से गिरकर महान धनुर्धर श्रेष्ठ पुरुष भीष्म बाणों की शय्या पर लेटे हुए थे। तभी उनके मन में दिव्य भाव आया।

अभ्यवर्षच्च पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी।
पतन् स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम्।।

भीष्म०-119/93

तभी आकाश से वर्षा होने लगी और पृथ्वी कांपने लगी। रथ से गिरते हुए भीष्म ने देखा कि अभी सूर्य दक्षिणायन में है।

संज्ञां चोपलभद् वीरः कालं संचिन्त्य भारत।
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः।।

भीष्म०-119/94

भरतश्रेष्ठ! समय का विचार करके भीष्म ने अपना होश-हवास बनाये रखा। उन्हें आकाश में चारों ओर से यह दिव्य वाणी सुनाई दी।

कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतांवरः।
कालकर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने।।

भीष्म०-119/95

महात्मा गंगा पुत्र भीष्म सभी शस्त्रधारी योद्धाओं में बढ़-चढ़कर हैं। वे मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी तथा मृत्यु पर भी नियन्त्रण रखते हैं। फिर इन्होंने दक्षिणायन में मरना क्यों स्वीकार किया?

स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत्।
धारयामास च प्राणान् पतितोऽपि महीतले।। भीष्म०-119/96
उत्तरायणमन्विच्छन् भीष्मः कुरुपितामहः। भीष्म०-119/97

देवताओं की बात सुनकर गंगापुत्र भीष्म ने कहा 'मैं अभी जीवित हूँ।" भीष्म पृथ्वी पर गिरकर भी सूर्य के उत्तरायण की प्रतीक्षा करते हुए अपने प्राणों को रोके रहे।

तस्मिन् हते महासत्त्वे भरतानां पितामहे।। भीष्म०-119/110
न किंचित् प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ।

भरत श्रेष्ठ! उस महान् शक्तिशाली भरतवंशियों के पितामह के मारे जाने पर आपके पुत्रों को कुछ नहीं सूझ पड़ रहा था।

सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये निहते विभौ।। भीष्म०-119/118
संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः।

शक्तिशाली भीष्म के मारे जाने पर दोनों पक्षों के वीर हथियार छोड़कर चिन्ता में डूब गये।

क्षत्रं चान्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चान्येऽभ्यपूजयन्।
ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्महाव्रतम्।।

भीष्म०-119/120

कुछ लोग क्षात्रधर्म की निन्दा करने लगे। कुछ भीष्म की सराहना करने लगे। ऋषियों और पितरों ने भी भीष्म की प्रशंसा की।

महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान्।
जपञ्शान्तनवो धीमान् कालाकाङ्क्षी स्थितोऽभवत्।।

भीष्म०-119/122

बुद्धिमान शन्तनु पुत्र भीष्म महान् उपनिषदों के योग का सहारा लेकर प्रणव का जप करते हुए उत्तरायण की प्रतीक्षा में शरशय्या पर लेटे रहे।

व्युपरम्य ततो युद्धाद् योधाः शतसहस्रशः।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवामराः।।

भीष्म०-120/30

लाखों योद्धा लड़ना छोड़कर भीष्म के पास वैसे ही आये जैसे देवता, प्रजापति के पास जाते हैं।

ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम्।
अभिवाद्यावतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह।।

भीष्म०-120/31

शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म के पास कौरव पाण्डव सभी आ गये। इन लोगों ने आकर पितामह को प्रणाम किया।

अथ पाण्डून् कुरूँश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान्।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा।।

भीष्म०-120/32

अपने सामने हाथ जोड़े खड़े कौरवों और पाण्डवों को देखकर भीष्म बोले।

भीष्मः **अभिमन्त्र्याथ तानेवं शिरसा लम्बतामब्रवीत्।**
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम्।।

भीष्म०-120/34

इन सबका स्वागत करके भीष्म पितामह लटकते हुए सिर से बोले : मेरा सिर लटक रहा है। मुझे आप तकिया दीजिये।

ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत् तानि पितामहः।।

भीष्म०-120/35

यह सुनते ही अनेक राजा बढ़िया कोमल तकिये ले आये किन्तु भीष्म पितामह ने उन्हें नहीं लिया।

अथाब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान् नृपान्।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः।।

भीष्म०-120/36

पुरुष सिंह भीष्म ने हंसकर राजाओं से कहा ये तकिये वीरों की शय्या के योग्य नहीं हैं।

ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम्।
धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम्।।

भीष्म०-120/37

फिर भीष्म ने सब लोकों के महारथी नरश्रेष्ठ दीर्घबाहु पाण्डुपुत्र अर्जुन को देखकर कहा।

धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते।
दीयतामुपधानं वै यद् युक्तमिह मन्यसे।।

भीष्म०-120/38

महाबाहु प्रिय अर्जुन! मेरा सिर लटक रहा है। तुम्हें जैसा तकिया ठीक लगे वैसा तकिया मुझे दो।

संजय : समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत्।।

भीष्म०-120/39

पितामह को प्रणाम करके और धनुष चढ़ाकर आंसू भरे नेत्रों से भीष्म को देखकर अर्जुन बोला–

आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह।।

भीष्म०-120/40

सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पितामह! आज्ञा दीजिये, मैं सेवक हूँ, क्या करूँ।

भीष्म : **शयनस्यानुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे।**
त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्।।

भीष्म०-120/42

वीर कुन्तीकुमार! इस शय्या के अनुरूप मुझे कोई तकिया दो। तुम्हीं ऐसा तकिया दे सकते हो क्योंकि सभी धनुर्धरों में तुम श्रेष्ठ हो।

गृह्यानुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान् संनतपर्वणः।
अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम्।। भीष्म०-120/44
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः।

अर्जुन ने गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर उसे अभिमन्त्रित किया और झुकी हुई गांठों वाले तीन बाण धनुष पर चढ़ाये। फिर भीष्म की अनुमति लेकर उन तीरों से भीष्म का सिर ऊँचा कर दिया।

अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना।। भीष्म०-120/45
अतुष्यद् भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित्।

सव्यसाची अर्जुन ने भीष्म का अभिप्राय समझ कर जब उन्हें ठीक तकिया लगा दिया तब धर्म अर्थ का तत्त्व जानने वाले भीष्म पितामह बहुत सन्तोष अनुभव करने लगे।

भीष्म : **परिखा खन्यतामत्र ममावसदने नृपाः।**
उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः।।

भीष्म०-120/54

भीष्म पितामह ने राजाओं से कहा कि मेरे चारों ओर खाई खोद दो। मैं सैकड़ों बाणों से घायल अवस्था में सूर्य की पूजा करूँगा।

उपारमध्वं संग्रामाद् वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः।

हे राजाओ! आप लोग वैर छोड़कर लड़ना बन्द कर दो।

संजय : **उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः।।**
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः।

भीष्म०-120/55

शरीर से बाण निकालने में कुशल वैद्य भीष्म जी के पास आये। ये लोग सभी प्रकार के उपकरण लेकर आये। इन्हें अच्छी तरह सिखाया गया था।

तान् दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव।। भीष्म०-120/56
धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः।
एवंगते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्ति किम्।।
भीष्म०-120/57

गंगापुत्र इन चिकित्सकों को देखकर दुर्योधन से बोले इन्हें धन देकर और इनका सत्कार कर विदा कर दो। इस अवस्था में मुझे इन चिकित्सकों से क्या काम है?

क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे।। भीष्म०-120/58
एभिरेव शरैश्चाहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः।

जिस वीरगति की क्षत्रिय धर्म में प्रशंसा की गई है वह मुझे मिली है। राजाओ! शरशय्या पर लेटे हुए मेरा यह धर्म नहीं है कि अब मैं अपनी चिकित्सा कराऊं। इन्हीं बाणों के साथ मेरा शरीर भस्म कर देना।

सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः।
उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे।।
भीष्म०-120/62

तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिः प्रदक्षिणम्।
विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः।।
भीष्म०-120/63

वीराः स्वशिविराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः।
निवेशायाभ्युपागच्छन् सायाह्ने रुधिरोक्षिताः।।
भीष्म०-120/63

सभी कौरव और पाण्डव महारथी, सुन्दर बाण शय्या पर लेटे हुए महात्मा भीष्म के पास गये उन्हें प्रणाम किया और उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की। भीष्म पितामह की सभी प्रकार से रक्षा करने का प्रबन्ध करके ये वीर अपने-अपने शिविर को चल पड़े। इन सबके मन खिन्न थे। वे भीष्म जी के बारे में ही सोच रहे थे। शाम होने पर खून में लथपथ ये वीर चले गये।

संजय : व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन् पितामहम्।।
भीष्म०-121/1

महाराज! रात बीतने पर सारे राजा कौरव पाण्डवों सहित भीष्म के पास गये।

कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः।
अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्त्रशः।।

भीष्म०-121/3

हजारों कन्याओं ने वहाँ आकर भीष्म पितामह के शरीर पर चन्दन का चूरा, खीलें और मालाएँ बिखेरीं।

स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः।
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम्।।

भीष्म०-121/4

स्त्रियां, बूढ़े, बच्चे तथा जनसाधारण भीष्म जी के दर्शनों लिये वहाँ आये मानो सारी प्रजा अन्धकारनाशक सूर्य की उपासना के लिये आई हो।

तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनर्तकाः।
शिल्पिनश्च तथाऽऽजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम्।।

भीष्म०-121/5

बाजे बजाने वाले, नट, नर्तक और सैकड़ों कारीगर भीष्म पितमह के पास आये।

भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ।
अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा।।

भीष्म०-121/10

शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसम्पातमूर्छितः।
पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान् प्रत्यभाषत।।

भीष्म०-121/11

भरतश्रेष्ठ! भीष्म पितामह घायल शरीर के दर्द को धैर्य के साथ सहन कर रहे थे। बाणों के घावों से व्याकुल वे सांप की तरह लम्बा श्वास भर रहे थे। बाणों की जलन से उनका सारा शरीर जल रहा था। वे शस्त्रों के प्रहार के कारण बेहोश से थे। उन्होंने राजाओं को देखकर कहा : पानी।

ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रु समन्ततः।
भक्ष्यानुच्चावचान् राजन् वारिकुम्भांश्च शीतलान्।।

भीष्म०-121/12

राजन्! यह सुनते ही वे क्षत्रिय भोजन के अच्छे से अच्छे पदार्थ और ठण्डे जल के घड़े लेकर आये।

उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत्।
नाद्यातीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः।।

भीष्म०-121/13

अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतोऽह्यहम्।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः।।

भीष्म०-121/14

राजाओं द्वारा लाये गये पानाी को देखकर भीष्म ने कहा : अब मैं मनुष्य लोक का कोई भी भोग अपने उपयोग में नहीं ला सकता हूँ। मैं इन सबको छोड़ चुका हूँ। मैं यद्यपि शरशय्या पर सो रहा हूँ किन्तु मनुष्य लोक से ऊपर उठ चुका हूँ और सूर्य-चन्द्र के उत्तर पथ पर आने की प्रतीक्षा में यहाँ रुका हुआ हूँ।

एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन् वाक्येन पार्थिवान्।
अर्जुनं दृष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत।।

भीष्म०-121/15

भारत! ऐसा कहकर भीष्म ने राजाओं की अवहेलना कर कहा अब मैं अर्जुन को देखना चाहता हूँ।

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम्।
अतिष्ठत् प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमि चाब्रवीत्।।

भीष्म०-121/16

महाबाहु अर्जुन ने पितामह के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विनयपूर्वक बोले मुझे क्या आज्ञा है? मैं क्या करूँ?

तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितम्।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम्।।

भीष्म०-121/17

राजन्! अर्जुन को अपने सामने हाथ जोड़े खड़ा देखकर धर्मात्मा भीष्म ने प्रसन्न होकर अर्जुन से कहा।

भीष्म : दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः।
मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति।।

भीष्म०-121/18

अर्जुन! तुम्हारे बाणों से मेरा सारा शरीर बिंधा हुआ है। यह जल सा रहा है। मेरे मर्मस्थानों में दर्द हो रहा है और मुंह सूखा जा रहा है।

वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छापो ममार्जुन।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि।।

भीष्म०-121/19

महाधनुर्धर अर्जुन! दर्द से भरे मेरे शरीर को तुम पानी लाकर दो। तुम ही मुझे विधिपूर्वक जल प्रदान कर सकते हो।

संजय : अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान्।
अधिज्यं बलवत् कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद् धनुः।।

भीष्म०-121/20

'बहुत अच्छा' कह कर शक्तिशाली अर्जुन रथ पर सवार हो गये। उन्होंने गाण्डीव पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और वे धनुष को खींचने लगे।

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।। भीष्म०-121/22
संधाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः।। भीष्म०-121/23
अविध्यत् पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे।

फिर महारथी अर्जुन ने सभी शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ लेटे हुए भीष्म पितामह की रथ में बैठकर परिक्रमा की। उन्होंने गाण्डीव पर तेजस्वी बाण चढ़ाकर उसे अभिमन्त्रित किया। और सब लोगों के देखते-देखते उस बाण को पर्जन्यास्त्र से संयुक्त करके भीष्म के दाहिनी ओर पृथ्वी में चलाया।

उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा।। भीष्म०-121/24
शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च।
अतर्पयत् ततः पार्थः शीतया जलधारया।। भीष्म०-121/25
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम्।

बाण चलाते ही ठण्डे, अमृत जैसे दिव्य गन्ध और रस वाले साफ पानी की धारा पृथ्वी से निकलने लगी। अर्जुन ने दिव्य जल की इस धारा से दिव्य कर्म और पराक्रम वाले कौरव श्रेष्ठ भीष्म की प्यास बुझाई।

तृप्तः शान्तनवश्चापि राजन् बीभत्सुमब्रवीत्।।

भीष्म०-121/29

राजन्! पानी से तृप्त होकर भीष्म ने अर्जुन से कहा।

भीष्म : न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं मयोच्यमानं विदुरेण चैव।
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः संजयेनापि चोक्तम्।।

भीष्म०-121/36

मैंने, विदुर ने, द्रोणाचार्य ने, परशुराम ने, श्रीकृष्ण ने और संजय ने भी दुर्योधन को युद्ध न करने की सलाह बार-बार दी थी किन्तु उसने हमारी बात नहीं सुनी।

परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्योधनो न च तच्छ्रद्दधाति।
स शेष्यते वै निहतश्चिराय शास्त्रातिगो भीमबलाभिभूतः।।

भीष्म०-121/37

दुर्योधन की मति मारी गई है। वह बेहोश सा हो गया है। इसलिये वह हमारी बात पर विश्वास नहीं करता। वह शास्त्रों की मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है। वह भीम से पराजित होकर रणभूमि में बहुत देर के लिये सो जायेगा।

एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्योधनो दीनमना बभूव।
तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन् भव वीतमन्युः।।

भीष्म०-121/38

भीष्म जी की यह बात सुनकर कौरवराज दुर्योधन मन ही मन दुःखी होने लगा। तब भीष्म जी ने उसे देखकर कहा राजन्। मेरी बात पर ध्यान दो और गुस्सा छोड़ दो।

दृष्टं दुर्योधनैतत् ते यथा पार्थेन धीमता।
जलस्य धारा जनिता शीतस्यामृतगन्धिनः।।

भीष्म०-121/39

दुर्योधन! बुद्धिमान अर्जुन ने जिस प्रकार अमृत जैसी सुगन्ध से युक्त शीतल जल की धारा प्रकट की है उसे तुमने स्वयं देख लिया है।

अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथंचन।
अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः।।

भीष्म०-121/43

जिस महामनस्वी अर्जुन के ये अमानुषिक कर्म तुम देख रहे हो उसे युद्ध में जीत पाना असम्भव है।

यावत् कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम।
तावत् पार्थेन शूरेण संधिस्ते तात युज्यताम्।।

भीष्म०-121/44

तात! महाबाहु श्रीकृष्ण जब तक अपने लोगों के प्रेम के वश में हैं तब तक शूरवीर अर्जुन के साथ तुम्हारी सन्धि हो जाये तो ठीक है।

एतत् तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयानघ।
एतत् क्षेममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च।।

भीष्म०-121/51

हे निष्पाप! मैंने तुमसे जो बातें कही है वे तुम्हें अच्छी लगें। मैं तुम्हारे और कौरव कुल के लिये सन्धि को ही कल्याणकारी मानता हूँ।

त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्याप्तमेतद् यत् कृतं फाल्गुनेन।
भीष्मस्यान्तादस्तु वः सौहृदं च जीवन्तु शेषाः साधु राजन् प्रसीद।।

भीष्म०-121/52

राजन्! तुम क्रोध छोड़कर पाण्डवों से सन्धि कर लो। अर्जुन ने जो कुछ किया वह काफी है। मुझ भीष्म का अन्त होने से तुम्हारे बीच मित्रता हो जाये और जो लोग मरने से बचे हैं वे अच्छी तरह जीयें। राजन् तुम प्रसन्न होओ।

राज्यस्यार्धं दीयतां पाण्डवानामिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु।
मा मित्रध्रुक् पार्थिवानां जघन्यः पापां कीर्त्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र।।

भीष्म०-121/53

तुम पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ चले जायें। कौरवराज! ऐसा करके तुम मित्र द्रोही नहीं कहलाओगे। तुम्हें पापपूर्ण और नीचता भरा अपयश नहीं मिलेगा।

ममावसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां संगच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः।
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन्।।

भीष्म०-121/54

राजन्! मेरी मृत्यु से प्रजा में शान्ति हो जाये। राजा एक दूसरे से प्रसन्नता पूर्वक मिलें पिता पुत्र से, मामा भांजे से और भाई-भाई से मिले।

न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यत्यबुद्ध्या।
तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे सत्यामेतां भारतीमीरयामि।।

भीष्म०–121/55

दुर्योधन! यदि तुम मूर्खता के कारण मेरी इस समयोचित सलाह को नहीं मानोगे तो अन्त में पछताओगे। इस युद्ध में तुम सबका अन्त हो जायेगा। यह मैं सत्य कह रहा हूँ।

एतद् वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा।
तूष्णीमासीच्छल्यसंतप्तमर्मा योज्यात्मानं वेदनां संनियम्य।।

भीष्म०–121/56

भीष्मए मित्रता और स्नेह के कारण राजाओं के बीच दुर्योधन से यह बात कहकर चुप हो गये। बाणों के घावों से उनके मर्मस्थलों में भयंकर वेदना हो रही थी। उन्होंने इस वेदना को किसी तरह नियंत्रण में रखकर अपना मन परमात्मा के चिन्तन में लगा दिया।

संजय : धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम्।
नारोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम्।।

भीष्म०–121/57

राजन्! जैसे मरणासन्न व्यक्ति को दवा अच्छी नहीं लगती है वैसे ही तुम्हारे पुत्र को भीष्म जी की धर्म और अर्थ से युक्त हितकारी और निर्दोष यह बात अच्छी नहीं लगी।

श्लोकानुक्रमणिका

आ

आ

उ

ऊ

ऋ

ए

ब

139847

डॉ० सुभाष विद्यालंकार

पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय, हरद्वार मण्डी धनौरा (मुरादाबाद) के सुशिक्षित और सम्पन्न परिवार में 15 जनवरी, 1929 को जन्म।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् पत्रकारिता, कानून, उच्च शिक्षा, जनसम्पर्क, प्रशासन, प्रकाशन और समाज सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका।

भारत सरकार के राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान और दिल्ली संस्कृत अकादमी की बहुआयामी गतिविधियों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध।

भारत सरकार की 'इण्डियन इन्फोर्मेशन सर्विस' में 27 वर्षों से अधिक काम करने के उपरान्त राजनीतिक उत्पीड़न के कारण निदेशक, जनसम्पर्क पद से त्यागपत्र देकर सर्वोच्च न्यायालय में कई वर्षों तक वकालत का व्यवसाय।

अन्तरराष्ट्रीय और अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलनों, विश्वविद्यालयों तथा सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर आयोजित विचार गोष्ठियों में सम्बोधन।

इंग्लैण्ड के कैम्ब्रिज, ऑक्सफ़ोर्ड और लन्दन विश्वविद्यालयों तथा अमेरिका के येल, न्यूयार्क और जार्जटाउन विश्वविद्यालयों के प्राच्य-शास्त्र अध्ययन विभागों की सरस्वती यात्राएँ।

'एनसाइक्लोपीडिया आफ हिन्दूइज़्म' में वेदाङ्ग से सम्बद्ध लेखों का प्रकाशन।

अधिकांश भारत की यात्रा के अतिरिक्त हिमालय में अनेक बार पर्वतारोहण।

ब्रिटेन और उत्तरी अमेरिका के अतिरिक्त यूरोप, दक्षिणी अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की यात्राएँ।

योग, अध्यात्म और संस्कृत साहित्य के अध्ययन में विशेष रुचि।

लेखक की अन्य कृतियाँ

- रामायण सूक्ति सुधा
- कालिदास सूक्ति सुधा
- योग शब्द कोश
- महाभारत सूक्ति सुधा

प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)
29/5, शक्ति नगर, दिल्ली-110007